रवीन्द्रनाथ ठाकुर



आँख की किरकिरी

125 वीं
रवीन्द्र जन्म
जयन्ती



आँख की किरकिरी

- भारतीय साहित्य के अकेले अग्रदूत हैं रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जिन्हें विश्व का सर्वोच्च सम्मान नोबल पुरस्कार मिला और जिनकी रचनाओं के अनुवाद भारतीय और प्रमुख विदेशी भाषाओं में हुए।
- 'आंख की किरकिरी' रवि बाबू का एक ऐसा उपन्यास है, जो मानव मन की अनेक गुत्थियों को बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से खोलता चला जाता है। महेन्द्र, बिहारी, आशा और विनोदिनी सरीखे पात्र जिन्दा समाज की जटिलताओं के सशक्त प्रतीक हैं। यह उपन्यास रिश्तों के गहरेपन और मोह से उपजी मनोवैज्ञानिक स्थितियों को सहज ढंग से प्रस्तुत करता है।

□

आँख की किरकिरी

रवीन्द्रनाथ ठाकुर



हिन्द पॉकेट बुक्स



यदि तुम भूलों को रोकने के लिए द्वार बन्द कर दोगे, तो सत्य भी बाहर रह जाएगा।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भारत की सर्वप्रथम पॉकिट बुक्स

विश्वभारती के तत्वावधान में सम्पादित सम्पूर्ण, असंक्षिप्त, प्रामाणिक संस्करण

आंख की किरकिरी

(उपन्यास)

मूल अनुवाद: धन्यकुमार जैन

प्रथम सरस्वती सीरीज़ संस्करण: १९८६

प्रकाशक:
हिन्द पॉकिट बुक्स (प्रा०) लिमिटेड
जी०टी० रोड, शाहदरा,
दिल्ली-११००३२

मुद्रक:
आई.बी.सी. प्रेस,
दिल्ली-११००३२

ANKH KI KIRKIRI
(Novel)
RABINDRA NATH TAGORE

श्रद्धांजलि

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की १२५वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर विश्वभारती विश्वविद्यालय ने उनकी रचनाओं के प्रामाणिक हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन पर विशेष ध्यान दिया है, जिससे हमारे देश के लाखों हिन्दी पाठक रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समृद्ध साहित्य को अपने और भी निकट पा सकें।

यह कोई नया साहित्यिक प्रयास नहीं। दुर्भाग्य से, पिछले वर्षों में रवीन्द्रनाथ की रचनाओं के विकृत तथा अप्रामाणिक अनुवादों के चलते भारतीय साहित्य तथा प्रकाशन जगत् दोनों को ही भारी क्षति उठानी पड़ी है। इसीलिए विश्वभारती ने, जिसके पास रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का सर्वाधिकार सुरक्षित है, पूरी तत्परता से उन भ्रष्ट प्रकाशकों के अनैतिक कार्यों के विरुद्ध कठोर कार्रवाई किये जाने का प्रस्ताव रखा है। इस दिशा में सक्रिय क़दम उठाते हुए रवीन्द्रनाथ के उपन्यासों, कविताओं, गीतों, कहानियों तथा अन्य साहित्यिक कृतियों को सुयोग्य अनुवादकों द्वारा हिन्दी में अनूदित कराने की योजना बनाई गई। साथ ही, यह बात भी सोची गई कि इन रचनाओं के सजिल्द और पेपर बैक, दोनों ही संस्करण पाठकों को सस्ते मूल्य पर सुलभ हों।

हमें इस बात की प्रसन्नता है कि हिन्द पॉकिट बुक्स व सरस्वती विहार ने विश्वभारती के सहयोग से इस दिशा में पहल की है और इस राष्ट्रीय मांग के अनुरूप, एक सराहनीय कार्य सम्पन्न किया है। प्रस्तुत ग्रंथ उसीका परिणाम है। मुझे पूरा विश्वास है कि पाठकों द्वारा इस योजना का भरपूर स्वागत होगा।

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का अनुवाद समस्त भारतीय भाषाओं में और विशेषकर अधिकांश भारतीय जन समुदाय की मातृभाषा हिन्दी में एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। न केवल साहित्यिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए,बल्कि राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को मजबूत करने के लिए, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द के संवर्धन हेतु भी यह अभीष्ट है।

विश्वभारती
शान्तिनिकेतन (पश्चिमी बंगाल)

—निमाई साधन बसु
उपाचार्य

जीवन-वृत

मानवीय सभ्यता के इतिहास में कुछ ऐसी प्रतिभाएं भी होती हैं, जिन्हें देशकाल की सीमाएं बांध नहीं पातीं। ऐसी प्रतिभाओं का परिचय चिरन्तन विश्व की व्यापकता में ही मिलता है, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ऐसी ही एक प्रतिभा थे। वे केवल भारत के ही नहीं सारे संसार के कवि हैं, विश्व-मानव के कवि, कविनां कवितम:, लेकिन वे केवल कवि ही नहीं, कथाकार, उपन्यासकार, नाटककार, निबंधकार और चित्रकार भी हैं।

७ मई सन् १८६१ को कलकत्ता के विख्यात ठाकुर परिवार में रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर था। बचपन में उनकी पढ़ाई घर में शुरू हुई। बाद में कुछ समय के लिए लन्दन यूनिवर्सिटी कॉलेज में उन्होंने अध्ययन किया। बारह-तेरह वर्ष की अवस्था से ही रवीन्द्रनाथ ने कविता लिखनी शुरू की। प्रारम्भिक रचनाओं में 'बनफुल' तथा 'कवि-काहिनी' (१८७९) उल्लेखनीय हैं। उनके काव्य की मूलधारा की शुरूआत 'संध्या संगीत' (१८८२) से होती है। रवीन्द्रनाथ ने यह अवश्य कहा कि वे 'जन्म रोमांटिक' हैं, परन्तु उन्होंने यह कहना कभी नहीं भूला कि वे इस पृथ्वी को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहते। वे बाकी सबके साथ ही जीना चाहते हैं:

मरिते चाहिना आमि सुन्दर भुवने,
मानवेर माझे आमि बांचिबारे चाइ।

'कड़ि ओ कोमल' (१८८६), 'प्रभात संगीत' (१८८३), 'छबि ओगान' (१८८४), 'मानसी' (१८९०) में उनकी प्रारम्भिक कवि दृष्टि का क्रम विकास स्पष्ट है। 'सोनार तरी' (१८९४) काव्य ग्रंथ में विश्व-जीवन की आनन्द चेतना का पहला स्वर फूटता है। 'चित्रा' (१८९६) में यह परिणति प्राप्त करती है। इसी समय 'नैवेद्य' (१९०१) काव्य-संग्रह में भक्ति के लिए कवि की व्याकुलता प्रकट हुई। यह व्याकुलता 'गीतांजलि' (१९१०) में अनाविल भक्तिरस से अभिषिक्त हो उठती है। सन् १९१३ में भारत की विदेशी सरकार ने उन्हें नाइट (सर) की उपाधि प्रदान की, परन्तु सन् १९२० में पंजाब के जलियांवाला बाग के निर्मम हत्याकांड से मर्माहत होकर उन्होंने नाइट उपाधि वापिस कर दी। शिक्षा के क्षेत्र में उनके योगदान को शान्तिनिकेतन के माध्यम से जाना जाता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति के आधार पर विश्वभारती विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। लक्ष्य था, एक ऐसे विश्वविद्यालय का निर्माण, जहाँ विश्व एक नीड़ के समान बस सके।

इस बीच सन् १९१६ में उनका 'बलाका' काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ। भावैश्वर्य और शिल्पनैपुण्य से परिपुष्ट इस काव्य-संग्रह में विश्व के विवर्तन अथवा गति की रहस्यकथा प्रकट हुई है। इसके उपरांत प्रकाशित काव्य-ग्रंथों में 'पलातका' (१९१८), 'पूरबी' (१९२५), 'प्रवाहिनी' (१९२५), 'शिशु भोलानाथ' (१९३२), 'महुआ' (१९२९), 'वनवाणी' (१९३१), 'परिशेष' (१९३२), 'पुनश्च' (१९३२), 'वीथिका' (१९३४), 'पत्रपुट' (१९३६) आदि उल्लेखनीय हैं। 'पूरबी' (१९२५) में जीवन की अपराह्नवेला में जो शेष रागिणी बज उठी थी 'आरोग्य' (१९४१) तथा 'शेषलेखा' (१९४१) में मृत्यु के पदशब्द के साथ उसी की आवाज हमें सुनाई पड़ती है। मृत्युपथ यात्री की विचित्र अभिज्ञता से युक्त ये कविताएं संसार की श्रेष्ठ कविताओं में हैं। अवसन्न चेतना की गोधुलि-बेला में कालिन्दी के काले स्रोत में कवि अपनी देह को अपनी अनुभूतियों तथा विचित्र वेदना के साथ बहते देखता है। इसी विचित्र वेदना के भीतर ही उनकी प्रार्थना वाणी उच्चारित हुई है। मानो जीवन-मृत्यु के संधि-क्षण में खड़े कवि अपने जीवन की चरम उपलब्धि-सीमा के साथ असीम की एकात्मा को भूल नहीं पाए हैं:

हे पूषन, तुमने अपनी किरणें समेट ली थीं। अब उसको फिर से फैलाओ, जिससे मैं तुम्हारे कल्याणतम रूप को देख सकूं और एक ब्रह्म की उपलब्धि कर सकूं।

पद्य की तरह गद्य की भी रचना रवीन्द्रनाथ ने बचपन से ही शुरू कर दी थी। उनके निबंध उनके शिल्पकार्य के ही उदाहरण हैं, जिनमें विचारों की गंभीरता के साथ भावावेग की दीप्ति भी स्पष्ट है। उनका श्रेष्ठ गद्य ग्रंथ 'जीवनस्मृति' (१९१२-१३) है। यह इतिहास नहीं स्मृति के पट पर कवि के द्वारा अंकित जीवन के कुछ चित्र हैं। सन् १८८८ में रवीन्द्रनाथ ने आधुनिक बंगला साहित्य में छोटी कहानी की सृष्टि करके एक नई महत्वपूर्ण विधा को प्रतिष्ठित किया। सन् १८८४ में उनका पहला उपन्यास 'करूणा' प्रकाशित हुआ। रवीन्द्रनाथ के प्रसिद्ध उपन्यासों में 'चोखेर बाली' (१९०३), 'नौका डूबी' (१९०६), 'गोरा' (१९०९) आदि उल्लेखनीय हैं। नाटक के क्षेत्र में 'बाल्मीकि प्रतिभा' (१८८१), 'मायेर खेला' (१८८८) उनके प्रारम्भिक गीतिनाट्य हैं। स्वर के धागे में हृदयावेग को पिरो देना ही इन नाटकों का उद्देश्य रहा है। 'राजा ओ रानी' (१८८९), 'विसर्जन' (१८९०) तथा 'चित्रागंदा' (१८९२) में उनकी नाट्य प्रतिभा अपनी पूरी शक्ति के साथ प्रकट हुई है। उनका सांकेतिक नाटक 'रक्तकरबी' (१९२६) उनकी श्रेष्ठ कृतियों में एक है। काव्य, स्वर, नाट्य तथा नृत्य के चतुरंग प्रवाह से युक्त उनके नृत्य नाटक 'नटीर पूजा' (१९२६), 'श्यामा' (१९३९) आदि उनकी बहुमुखी प्रतिभा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मानव जीवन में ऋतु-क्रम का प्रभाव तथा प्रतिक्रिया दिखाने के लिये

उन्होंने 'शारदोत्सव' (१९०८), 'राजा' (१९१०), 'अचलायतन' (१९१२), 'फाल्गुनी' (१९१६) आदि नाटक लिखे।

जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने चित्र बनाना शुरू किया। इनमें युग का संशय, मोह, क्लांति, निराशा का स्वर आदिम भावावेग के साथ प्रकट हुआ। परन्तु यह उनके जीवन की अंतिम बात नहीं थी। नये युग के नए जीवनबोध को उन्होंने सहर्ष ग्रहण किया, किन्तु क्षणकाल के लिए भी उनका मन संशयान्वित नहीं हुआ। काव्यरचना के पहले दिन से अंतिम दिन तक परिचित उपनिषद् का मंत्र ही उनका पाथेय बना रहा, इसीलिए तो आधुनिक युगबोध की बात करने वालों के सम्मुख उन्होंने नि: संकोच होकर कहा, 'मैंने जीर्ण जगत में जन्म ग्रहण नहीं किया।' हालांकि नये का आह्वान करने में उन्होंने कभी संकोच नहीं किया।

७ अगस्त १९४१ में उनकी मृत्यु हुई। मृत्यु से कुछ दिन पहले चिकित्सा के लिए उन्हें शान्तिनिकेतन से कलकत्ता स्थानान्तरित किया गया था। शान्तिनिकेतन से चलते हुए उनके नातिन ने उन्हें कहा था, 'दादाजी, आपको मालूम है, हमारे यहां नया पावर हाउस बन रहा है।' इसके उत्तर में उन्होंने कहा था, 'हां पुराना आलोक चला जायेगा, नये का आगमन होगा।'

साहित्य अकादेमी
नई दिल्ली - ११०००१
दीपावली, ८६

इन्द्रनाथ चौधुरी

विनोदिनी की मां हरिमती ने महेन्द्र की मां राजलक्ष्मी के घर जाकर धरना दे दिया। दोनों एक ही गांव की लड़की हैं और बचपन में एक साथ खेली हैं।

राजलक्ष्मी ने महेन्द्र पर दबाव डालते हुए कहा, "बेटा महेन्द्र इस गरीब की लड़की का उद्धार करना ही है। सुना है, लड़की देखने में बड़ी सुन्दर है और मेम ने उसे पढ़ाया लिखाया है। तुम लोगों की आजकल की पसन्द से उसका पूरा मेल बैठ जाएगा।"

महेन्द्र ने कहा, "मां, आजकल के लड़के तो मेरे सिवा और भी बहुत– से हैं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "बेटा, यही तो तेरे में दोष है। तेरे आगे ब्याह की बात छेड़ना ही मुश्किल है।"

महेन्द्र ने कहा, मां, इस बात को छोड़कर और भी तो बहुत–सी बातें हैं। संसार में बातों की तो कहीं कोई कमी नहीं। इसलिए मेरा यह दोष ऐसा कोई खतरनाक नहीं"।

महेन्द्र के बचपन से ही पिता नहीं हैं और इसीलिए मां के साथ उसका व्यवहार साधारण पुत्रों जैसा नहीं है। महेन्द्र की उम्र लगभग बाईस साल की हो चुकी और अब वह एम० ए० पास करके डाक्टरी पढ़ रहा है, किन्तु फिर भी मां के साथ उसका प्रतिदिन का बाल–हठ, रूठना-मचलना और अपनी जिद पर अड़ जाना ज्यों का त्यों जारी है।

अब की बार मां ने जब विनोदिनी के लिए महेन्द्र पर काफी दबाव डाला, तो उससे कतराते नहीं बना। उसने कहा "अच्छा, लड़की को एक बार देख लूं।" और जब देखने का दिन आया, तो बोला, "देखके क्या करना है? मुझे तो तुम्हे सुखी करने के लिए ब्याह करना है, भले बुरे का विचार करना ही बेकार है"। उसकी बात में कुछ नाराज़गी थी, किन्तु फिर भी मां ने सोचा कि शुभ दृष्टि के समय उनकी पसन्द के साथ जब पुत्र की पसन्द का निर्णयात्मक मेल होगा, तब महेन्द्र का यह 'तीव्र' स्वर 'कोमल' में बदल जाएगा।

राजलक्ष्मी ने निश्चिन्त मन से ब्याह का दिन तय करवा लिया और ब्याह का दिन ज्यों-ज्यों नज़दीक आने लगा, त्यों-त्यों महेन्द्र का मन बेचैन होने लगा और

अन्त में जब दो-चार दिन बाकी रह गए, तब वह कह बैठा, "नहीं मां यह मुझसे हर्गिज़ नहीं होगा।"

महेन्द्र का परम मित्र था बिहारी। वह महेन्द्र को 'भाई साहब' और उसकी मां को मां कहता था। मां उसे 'स्टीम बोट' के पीछे बंधे 'लद्द-बोट' की तरह महेन्द्र के एक बहुत जरूरी भारवाही असबाब के समान समझती थीं और उसी लिहाज से उसे ममता भी देती थीं। राजलक्ष्मी ने उसे बुलाकर कहा, "बेटा अब यह काम तो तुम्हीं को करना होगा, नहीं तो गरीब की लड़की-"

बिहारी ने हाथ जोड़कर कहा, "मां यह काम मुझसे नहीं होने का। तुम्हारे मनाने से, महेन्द्र को जो मिठाई नहीं भाई, उसे मैं बराबर खाकर निबटाता रहा हूँ, पर लड़की के विषय में ऐसा हर्गिज़ नहीं हो सकता।"

विनोदिनी के पिता खास धनी नहीं थे, किन्तु फिर भी उन्होनें अपनी इकलौती पुत्री को घर पर मिशनरी मेम रखकर बड़े जतन से पढ़ाया-लिखाया था और दस्तकारी का काम सिखाया था। लड़की की उम्र बराबर बढ़ती ही जाती थी, फिर भी उन्हें कुछ होश न था। अन्त में पिता की मृत्यु के बाद, उसकी विधवा मां उसके लिए लड़का तलाश करते-करते हैरान हैं, कहीं कोई दिखाई ही नहीं देता कि जिसके हाथ लड़की सौंपकर वे निश्चिन्त हो सकें। एक तो रुपये -पैसे से हाथ खाली, उसपर लड़की उम्र में बड़ी। अन्त में राजलक्ष्मी ने अपनी जन्मभूमि बारासत के एक गांव के रिश्ते से भतीजे के साथ विनोदिनी का ब्याह करा दिया।

ब्याह के थोड़े दिन बाद ही विनोदिनी विधवा हो गई। महेन्द्र ने फीकी हंसी हंसते हुए कहा, "मेरी तकदीर अच्छी थी, जो ब्याह नहीं किया, नहीं तो स्त्री के विधवा होने पर मैं एक घड़ी भी संसार में नहीं टिक सकता था।"

लगभग तीन साल बाद और एक दिन मां-बेटे में बात हो रही थी। मां ने कहा, "बेटा लोग तो मेरी ही निन्दा करते हैं"।

महेन्द्र बोला, "क्यों मां, लोगों का तुमने कौन-सा सत्यानाश किया है?"

मां ने कहा, "लोग कहते हैं, मैं तेरा इस डर से ब्याह नहीं कर रही हूं कि बहू आने पर लड़का पराया हो जाएगा।"

महेन्द्रने कहा, "डर तो होना ही चाहिए। तुम्हारी जगह अगर मैं मां होता, तो लड़के का ब्याह मन से हर्गिज़ नहीं कर सकता था। लोकनिन्दा को मैं खुशी-खुशी सिर-माथे ले लेता"।

राजलक्ष्मी ने मन-ही-मन पुलकित होकर अपनी हाल ही में आई हुई विधवा देवरानी को सम्बोधित करते हुए कहा, "सुन लिया, मझली बहू, महेन्द्र की बात तो सुनो। बहू आकर कहीं मां से बढ़ न जाए, इस डर से बेटा ब्याह नहीं करना चाहता। ऐसी तीन लोक से न्यारी बात सुनी है कभी?"

चाची ने महेन्द्र से कहा, "यह बात तो,बेटा, तुम्हारी बेजा ही है। जिस समय की जो बात हो उसीमें शोभा है। अब मां का आंचल छोड़कर बहू के साथ घर-गृहस्थी करने का समय है। अब दुध-मुंहे बच्चे की तरह रहना थोड़े ही शोभा देता है। यह तो उलटी शरम की बात है।"

किन्तु राजक्ष्मी को बात विशेष मधुर नहीं मालूम हुई और इस प्रसंग में उन्होंने जो कुछ कहा वह सरल हो सकता है, किन्तु शहद भरा हर्गिज़ नहीं। वे बोलीं, "मेरा लड़का अगर और किसीके लड़के से अपनी मां को ज्यादा प्यार करता हो तो तुम्हारे लिए उसमें शरम की कौन-सी बात है, मझली बहू, तुम्हारे लड़का होता तो लड़के का मरम समझतीं।"

मझलीं बहू ने कहा, "तुम्हींने ब्याह की बात छेड़ी थी, इसी से बात उठी, नहीं तो मुझे बीच में बोलने का हक ही क्या था?"

राजलक्ष्मी ने कहा "मेरा लड़का अगर बहू नहीं लाना चाहता, तो तुम्हारी छाती में कांटा क्यों चुभता है? मेरा तो ऐसे ही अच्छा है। अब तक अगर मैं लड़के को पाल-पोसकर इतना बड़ा कर सकी हूं तो आगे भी उसकी देखभाल कर सकूंगी, इसमें और किसी की ज़रूरत नहीं पड़ेगी।"

मझली बहू आंसू पोंछती हुई चुपचाप वहां से चली गई। महेन्द्र के मन को इससे बड़ी चोट पहुंची।

कालेज से जल्दी घर आकर वह सीधा अपनी चाची के पास पहुंच गया। चाची ने उससे जो कुछ कहा था, उसमें स्नेह के सिवा और कोई बात नहीं थी इस बात को वह जानता है और यह भी उसे मालूम है कि उसकी चाची के एक माता-पिताहीन बहनौत है और महेन्द्र के साथ उसका ब्याह कराके यह सन्तानहीन विधवा किसी सूत्र से अपनी बहन की लड़की को सुखी देखना चाहती है। यद्यपि ब्याह करना उसे स्वीकार नहीं, फिर भी चाची की इस भीतरी इच्छा को वह स्वाभाविक और बहुत ही करुणाजनक समझता है।

महेन्द्र जब चाची के कमरे में गया, तब दिन ढलने में बहुत ज्यादा देर नहीं थी। उसकी चाची अन्नपूर्णा अपने कमरे में खिड़की की छड़ों पर सिर टेके रूखा खेद भरा मुंह बनाए बैठी थीं। बगल के कमरे में उनकी थाली ज्यों की त्यों ढकी हुई पड़ी थी, अब तक उन्होंने खाया-पीया कुछ भी नहीं। चाची को देखकर उसकी आंखें भर आई। उसने उनके पास जाकर स्नेह भरे स्वर में पुकारा "चाची।"

अन्नपूर्णा ने हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "आ, महेन्द्र बैठ।" महेन्द्र ने कहा, "बड़ी भूख लगी है, चाची, तुम्हारा प्रसाद खाना चाहता हूं।"

अन्नपूर्णा महेन्द्र का कौशल समझ गई और उमड़ते हुए आंसुओं को किसी कदर रोक उन्होंने खुद खाया और महेन्द्र को भी खिला दिया। महेन्द्र का हृदय

उस समय दर्द से भीगा हुआ था। चाची को तसल्ली देने के लिए भोजन करने के बाद सहसा वह मन की तरंग में कह बैठा, "चाची तुम्हारी वो जो एक बहनौत थी न, जिसका तुमने जिक्र किया था, उसे एक बार दिखाओगी नहीं मुझे?"

अन्नपूर्णा ने हसते हुए कहा, "अब ब्याह करने को मन चला है क्या तेरा?"

महेन्द्र ने तुरत जवाब दिया, "नहीं, अपने लिए नहीं चाची मैंने बिहारी को राज़ी कर लिया है। तुम लड़की देखने का कोई दिन तय करा दो।"

अन्नपूर्णा ने कहा "आहा, उसके ऐसे भाग्य कहां। बिहारी जैसा वर उसके भाग्य में कहां बदा है।"

चाची के कमरे में से निकलते ही दरवाज़े के बाहर मां से भेंट हो गई महेन्द्र की।

राजलक्ष्मी ने पूछा, "क्यों महेन, अब तक तुम लोगों में क्या सलाह हो रही थी?"

महेन्द्र ने कहा. "सलाह कुछ भी नहीं पान लेने आया था।" मां ने कहा, "तेरे पान तो मेरे कमरे में लगे रखे हैं।" महेन्द्र कुछ उत्तर न देकर चला गया।

राजलक्ष्मी ने अन्नपूर्णा के कमरे में जाकर उसकी रोने से फूली हुई आंखें देखते ही बहुत-सी बातों की कल्पना कर ली और चट से फुफकारती हुई बोल उठीं, "कहिए, मझली देवीजी, लड़के से सब भिड़ा चुकी या कुछ बाकी है?" इतना कहकर राजलक्ष्मी उत्तर की प्रतीक्षा किए बगैर ही बड़ी तेजी से वहां से चल दीं।

२

लड़की देखने जाने की बात महेन्द्र तो लगभग भूल ही गया था, किन्तु अन्नपूर्णा नहीं भूलीं। उन्होंने श्यामबाजार लड़की के अभिभावक ताऊ को चिट्ठी लिख दी और उसमें उन्होंने लड़की देखने का दिन भी तय कर दिया।

महेन्द्र ने जब सुना कि चाची ने लड़की देखने जाने का दिन भी तय कर दिया है, तब उसने चाची से जाकर कहा, "इतनी जल्दी क्यों कर डाली, चाची? मैंने तो अभी बिहारी से कहा भी नहीं।

अन्नपूर्णा ने कहा, "यह क्या बात, महेन्द्र? यह कैसे हो सकता है? अब अगर देखने नहीं गए, तो वे क्या समझेंगे अपने मन में?"

महेन्द्र ने बिहारी को बुलाकर उससे सब बात कह दी, फिर बोला, "चलो तो सही, पसन्द नहीं आई, तो कोई जबरदस्ती तो लाद नहीं देगा।"

बिहारी ने कहा, "सो मैं नहीं कह सकता। चाची की बहनौत को देखने के बाद पसन्द नहीं' कहना मेरे मुंह से नहीं निकलने का।"

महेन्द्र ज़रा लज्जित होकर बोला, "तो क्या करना है?" बिहारी ने कहा "जबकि मेरे नाम से तुम उन्हें आशा दे चुके हो, तो मुझे ब्याह करना ही है। देखने

जाने का पाखण्ड करना कोई मानी नहीं रखता।"

अन्त में अन्नपूर्णा ने खुद बिहारी को बुलाकर कहा, "यह कैसे हो सकता है, बेटा? लड़की बिना देखे ब्याह करोगे। नहीं, यह हरगिज़ नहीं होगा। लड़की पसन्द न आई, तो मैं तुम्हें हरगिज़ ब्याह न करने दूंगी, यह मेरा प्रण रहा।"

तय किया दिन भी आ गया। महेन्द्र ने कालेज से लौटकर मां से कहा, "मां मेरा वो रेशमी कोट और ढाके की धोती तो निकाल दो।"

मां ने कहा, "क्यों, कहां जाना है?"

महेन्द्र ने कहा, "जरुरत है, तुम निकाल दो न, पीछे सब बता दूंगा।" दोनों मित्र लड़की देखने चल दिए।

लड़की के ताऊ श्यामबाजार रहते हैं, नाम है अनुकूलचन्द्र। खाते पीते खुश है और अपनी कमाई से उन्होंने कलकत्ते में बगीचा समेत तिमंजिला मकान भी बनवा लिया है, जो मुहल्ले में अपना सिर ऊंचा किए शान से खड़ा है।

गरीब भाई की मृत्यु के बाद माता-पिताहीन भतीजी को वो अपने घर ले आए है। लड़की की मौसी अन्नपूर्णा ने कहा था, 'मेरे पास ही रहने दो।' इसमें खर्च में कमी ज़रुर होती, किन्तु साथ ही इज्जत में जो कमी पड़ती। इसलिए वे राजी नहीं हुए। यहां तक कि मिलने-जुलने के लिए भी लड़की को वे मौसी के घर नहीं जाने देते। अपनी मान- मर्यादा के विषय में वे इतने कड़े हैं।

लड़की जब सयानी हुई तो ब्याह की चिन्ता का समय आ गया। चिंता के साथ खर्च भी चाहिए। दहेज की बात छिड़ते ही तरफदारी करने वाले भी उलटे हो उठते हैं, कहते हैं, मेरे अपनी लड़कियां भी तो हैं, मैं अकेला कहां तक क्या कर सकता हूं। इस तरह दिन बीतते जा रहे थे। इतने में खूब सज-धजकर कपड़ों में सुगन्ध लगाकर रंगभूमि में मित्र के साथ प्रवेश किया महेन्द्र ने।

चैत का महीना है, दिन के आख़ीर में सूर्य अस्त होना चाहता है। दूसरी मंजिल का खुला बरामदा है, चित्र–विचित्र चिकनी चीनी टाइलों का फर्श है और उसके एक किनारे दोनों मेहमानों के लिए चांदी की तश्तरियों में फल और मिठाइयां सजी हुई हैं और बर्फ-जल से भरे चांदी के गिलासों पर बर्फ के टुकड़े शोभा पा रहे हैं। महेन्द्र बिहारी के संग संकोच के साथ जलपान करने बैठा। आसपास के दरवाज़ो और खिड़कियों की ओट से थोड़ी-बहुत दबी हंसी और कानाफूसी और कभी-कभी गहनों की हल्की खनक भी सुनाई पड़ रही थी।

जलपान हो चुकने के बाद अनुकूल बाबू ने भीतर की ओर देखते हुए कहा 'चुन्नी, ज़रा पान तो ले आ।"

कुछ देर बाद बड़े संकोच के साथ पीछे का एक दरवाजा खुल गया और उसमें से एक बालिका न जाने कहां से अपने समूचे शरीर में दुनिया भर की लज्जा लपेटकर हाथ में पानदान लिए अनुकूल बाबू के पास आ खड़ी हुई। अनुकूलचन्द्र

ने कहा, "इतनी शरमाती क्यों हों, बेटी पानदान रख दो इन लोगों के सामने।"

बालिका ने झुककर कांपते हुए हाथ से पानदान अतिथियों के आसन के पास ज़मीन पर रख दिया। बरामदे के पश्चिम की ओर से सूर्यास्त की सुनहली आभा ने आकर बालिका के लाज भरे चेहरे को और भी लाल कर दिया। ठीक इसी मौके से महेन्द्र ने उस कांपती हुई बालिका के करुण चेहरे को एक बार अच्छी तरह देख लिया।

बालिका उसी समय चली जा रही थी किन्तु अनुकूल बाबू ने उसे टोकते हुए कहा, 'जरा ठहर जा, चुन्नी! बिहारी बाबू, यह मेरे छोटे भाई अपूर्व की लड़की है। बाप बेचारा असमय में चल बसा। अब मेरे सिवा संसार में इसका कोई भी नहीं।" इतना कहकर उन्होंने एक गहरी सांस ली और चुप हो गए।

महेन्द्र के हृदय पर दया ने आघात किया। अनाथ लड़की की ओर फिर उसने एक बार आंख उठाकर अर्थपूर्ण दृष्टि से देख लिया।

ग़ीलेमन से महेन्द्र ने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है?"

अनुकूलचन्द्र ने बालिका को उत्साहित करते हुए कहा, "बता दो, बेटी अपना नाम बता दो।"

बालिका ने आदेश—पालन के अभ्यस्त स्वर में कहा, "मेरा नाम आशालता।"

आशा! महेन्द्र को ऐसा लगा कि नाम बहुत ही करुण और गला अत्यन्त कोमल है। 'अनाथा आशा।'

दोनों मित्र नीचे उतरकर गाड़ी पर सवार हुए और गाड़ी चल दी।

महेन्द्र बोला, "बिहारी, इस लड़की को तुम मत छोड़ना।"

बिहारी ने उसकी बात का स्पष्ट उत्तर न देकर कहा, "लड़की को देखकर मुझे उसकी मौसी का ख्याल आ जाता है। मैं समझता हूं, यह भी उन्हीं जैसी सती-लक्ष्मी होगी।"

महेन्द्र ने कहा, "तुम्हारे कन्धे पर जो बोझ लादा जा रहा है, शायद अब तुम्हें उसका भार उतना असह्य नहीं मालूम होगा।"

बिहारी ने कहा, "नहीं, मालूम होता है, सह सकूंगा।"

महेन्द्र ने कहा, "जरूरत क्या है इतना कष्ट उठाने की। न हो तो तुम्हारा बोझ मैं ही अपने कन्धे पर लिए लेता हूं। क्या कहते हो?"

बिहारी ने गम्भीरता के साथ एक बार महेन्द्र के मुंह की ओर देखा और फिर कहा, "महेन्द्र भइया, सच कह रहे हो? अब भी ठीक—ठीक बता दो। तुम ब्याह करो तो चाची बहुत खुश होंगी और फिर तो लड़की हमेशा उनके पास ही बनी रहेगी।"

महेन्द्र ने कहा, "तुम पागल हुए हो? ऐसा होता तो बहुत पहले ही हो जाता।"

बिहारी ने ज़्यादा आपत्ति नहीं की और वह अपने घर चला गया। महेन्द्र भी सीधा रास्ता छोड़कर इधर-उधर घूमता हुआ बहुत देर बाद धीरे-धीरे घर पहुँचा।

महेन्द्र की माँ उस समय पूड़ी उतारने में व्यस्त थीं और चाची अब तक श्यामबाज़ार से घर नहीं लौटी थीं।

महेन्द्र अकेला वीरान छत पर जाकर चटाई बिछाकर पड़ा रहा। उस समय शुक्ला—सप्तमी का आधा चांद चुपचाप अपना अनोखा जादुइ मंत्र बिखेर रहा था।

मां ने आकर जब खबर दी कि खाना तैयार है, तो उसने कहा, "अब आज मैं खाऊंगा नहीं- मैं खा आया हूं।"

मां ने पूछा, "कहां खा आया?"

महेन्द्र ने कहा, "बहुत बातें हैं, बाद में बताऊंगा।"

पुत्र के इस नये व्यवहार पर अभिमानिनी माता ने कुछ भी नहीं कहा, और वे वापस जाने को हुईं। तब महेन्द्र ने तुरन्त अपने को संभाल कर गर्मी के साथ कहा "मां मेरी थाली यहीं ले आओ।"

मां ने कहा, "भूख न हो तो क्या ज़रुरत है?"

इस बात पर मां— बेटे, में कुछ देर तक रूठने—मनाने का सिलसिला चलता रहा, और अन्त में महेन्द्र को दुबारा खाने बैठना पड़ा।

३

महेन्द्र को रात—भर ठीक से नींद नहीं आई। वह सवेरे ही उठकर सीधा बिहारी के घर पहुंचा और बोला, "भाई बिहारी, रात—भर मैं अपने कर्तव्य के विषय में विचार करता रहा। चाची की भीतरी यह इच्छा है कि मैं ही उनकी बहनौत से ब्याह करूं। मुझे लगता है कि आशा से मैंने अगर ब्याह नहीं किया, तो चाची के मन में जिन्दगी —भर के लिए एक खेद रह जाएगा।"

बिहारी ने कहा, "सो तो है ही।"

ज्योंही महेन्द्र ने ब्याह के विषय में अपनी लगाम ढीली की कि फिर उसके लिए धैर्य रखना कठिन हो उठा। वह सोचने लगा कि 'अब और ज़्यादा बातचीत न होकर जल्दी से काम पूरा हो जाए तो अच्छा।'

महेन्द्र ने मां से जाकर कहा, "अच्छा मां, अब मैं तुम्हारी बात माने लेता हूं मुझे ब्याह करना मंजूर है।"

मां तुरन्त रहस्य को समझ गई और मन ही मन बोलीं, 'अच्छा, अब समझी,

उस दिन मंझली बहू क्यों अचानक अपनी बहनौत को देखने गई थी और महेन्द्र क्यों सज-धज के श्यामबाज़ार गया था।'

उन्होंने कहा, "अच्छी बात है, अब मैं तेरे लिए बहुत अच्छी लड़की तलाश कराती हूं।"

महेन्द्र ने आशा का जिक्र करते हुए कहा, "लड़की तो वो भी बड़ी अच्छी है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "उससे ब्याह नहीं हो सकता, बेटा, मैं तुझसे पहले से कहे देती हूं। उसके तीन कुल में कोई भी नहीं है। उसके साथ ब्याह करने से हमें रिश्तेदारी का क्या सुख मिलेगा?"

महेन्द्र ने कहा, "रिश्तेदारी का सुख न होने पर भी मैं दुखी नहीं होऊंगा, किन्तु मां, लड़की मुझे बहुत पसन्द आई है।"

लड़के की ज़िद देखकर राजलक्ष्मी का मन और भी ज्यादा कठोर हो उठा। उन्होंने अन्नपूर्णा से जाकर कहा, "क्यों, देवीजी, बिना मां बाप की कुलच्छनी लड़की से बेटे का ब्याह कराके तुम मेरे लड़के को मुझसे छीन लेना चाहती हो? इतनी बड़ी शैतानी।"

अन्नपूर्णा रो पड़ी "महेन्द्र के साथ ब्याह की तो कोई बात ही नहीं हुई। उसने अपनी मर्जी से तुमसे क्या कहा है, सो भी मुझे नहीं मालूम।"

किन्तु महेन्द्र की मां ने इस बात पर कतई विश्वास नहीं किया, तब फिर अन्नपूर्णा ने बिहारी को बुलाकर उससे कहा, "बेटा तुम्हारे लिए ही तो सब बात तय हुई थी, फिर क्यों तुमने सब उलट–पुलट दिया?" कहते–कहते उनकी आंखे भर आईं। बोलीं– "नहीं बेटा फिर तुम्हें राज़ी होना पड़ेगा। तुमने उद्धार नहीं किया तो मेरे लिए बड़ी लज्जा की बात होगी। लड़की बड़ी सुशील है, तुम्हारे योग्य है।"

बिहारी ने कहा, "चाचीजी, यह मैं जानता हूं, मुझे कुछ कहने की ज़रुरत नहीं। जो तुम्हारी बहनौत हो, वह कहीं अयोग्य हो सकती है। भला उसके लिए मैं नाहीं कर सकता हूं। लेकिन महेन्द्र!"

अन्नपूर्णा ने कहा, "नहीं, बेटा, महेन्द्र से उसका ब्याह किसी भी तरह नहीं होने वाला। मैं तुमसे सच कहती हूं, तुम्हारे साथ उसका ब्याह होने से ही मैं सबसे ज्यादा निश्चिन्त हो सकूंगी। महेन्द्र के साथ ब्याह हो, यह मैं नहीं चाहती।"

बिहारी ने कहा, "चाची, तुम्हारी ही अगर इच्छा नहीं, तो फिर मुझे क्या इनकार है।"

इसके बाद बिहारी सीधा राजलक्ष्मी के पास पहुंचा और बोला "मां, चाची की बहनौत के साथ मेरी सगाई पक्की हो गई है। यहां मेरे कुटुम्ब की कोई स्त्री तो है नहीं, इसलिए हया–शरम सब छोड़कर मुझे खुद ही खबर देने आना पड़ा।"

राजलक्ष्मी ने कहा, ''कहता क्या है, बिहारी। आज मैं बहुत खुश हुई तेरी बात सुनकर। बड़ी सुशील है वह/तेरे ही लायक है। किसी के कहने–सुनने में आकर सगाई छोड़ न देना।''

बिहारी बोला, ''मैं क्यों छोड़ने लगा। महेन भइया ने खुद पसन्द करके मेरी सगाई पक्की की है।''

इन सब रुकावटों से महेन दूना उत्तेजित हो उठा। वह मां और चाची से रूठकर एक दीन–हीन छात्रावास में जाकर रहने लगा।

राजलक्ष्मी रोती हुई अन्नपूर्णा के कमरे में पहुंचीं। बोलीं, ''मझली बहू, मेरे लड़के ने तो नाराज होकर घर छोड़ दिया मालूम होता है, उसे बचाओ।''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''जीजी, थोड़ा धीरज रखो, दो–चार दिन बाद अपने–आप गुस्सा जाता रहेगा।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''तुम उसे जानतीं नहीं। उसकी इच्छा के अनुसार कोई काम न हो तो, वो जो जी में आता है, कर डालता है। तुम्हारी बहनौत के साथ जैसे भी बने उसका''

अन्नपूर्णा बीच में ही बोल उठीं, ''सो कैसे हो सकता है, जीजी, बिहारी के साथ बात तय हो चुकी है।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''इससे क्या हुआ! फिर से तय सही।'' और फिर, तुरन्त उन्होंने बिहारी को बुलवाया और उससे कहा, ''बेटा, तुम्हारे लिए और भी अच्छी लड़की तलाश करवाती हूं। तुम इस लड़की को छोड़ दो, यह तुम्हारे लायक नहीं।''

बिहारी ने कहा, ''नहीं, मां, ऐसा नहीं हो सकता। बात बिलकुल पक्की जो हो चुकी है।''

तब फिर राजलक्ष्मी ने अन्नपूर्णा से जाकर कहा, ''तुम्हें मेरे कष्ट की सौगन्ध है, मझली बहू, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम बिहारी को समझा दो, तो सब ठीक हो जाएगा।''

अन्नपूर्णा ने बिहारी से कहा, ''बेटा बिहारी, मेरे मुंह से बात निकलना नहीं चाहती पर क्या करूं मैं? आशा तुम्हारे हाथ पड़ती तो मैं बिलकुल निश्चिन्त हो जाती, पर तुम्हें तो सब मालूम है।''

बिहारी ने कहा, ''मैं समझ गया, चाची! तुम जैसी आज्ञा दोगी वही होगा, पर अब फिर कभी तुम मुझसे और किसी के साथ ब्याह करने का अनुरोध न करना।'' इतना कहकर बिहारी चला गया। अन्नपूर्णा की आंखों में आंसू भर आए, किन्तु महेन्द्र के बुरे की आशंका से उन्होंने तुरन्त आंखें पोंछ डालीं। उन्होंने बार–बार अपने मन को समझाया कि 'जो कुछ हुआ सो अच्छा ही हुआ।'

इस तरह, राजलक्ष्मी, अन्नपूर्णा और महेन्द्र इन तीनों में कठोर बिल्कुल सूना

ात-प्रतिघात चलते-चलते ब्याह का दिन भीं आ गया।

बत्तियां उज्जवल हो उठीं, शहनाई मधुर होकर बजने लगी और मिष्ठान्न में ठास की ज़रा भी कमी नहीं रही।

आशा ने सुसज्जित और सुन्दर देह और शंकित, लज्जित, मुग्ध चेहरे से अपने ये घर में प्रवेश किया। उसके इस नये घर में कहीं कोई कांटा भी हो सकता है, इस बात का उसका कांपता, कोमल हृदय कल्पना भी नहीं कर सकता था बल्कि ह तो इस बात को सोचकर मारे आनन्द के फूली नहीं समा रही कि आज वह संसार में अपनी एकमात्र मां का दर्जा रखने वाली अन्नपूर्णा के पास आ रही है और इस भरोसे से आज उसके मन का सारा भय-शंका दूर हो गयी।

ब्याह के कुछ दिन बाद राजलक्ष्मी ने एक दिन महेन्द्र को बुलाकर कहा, "सुन, अब बहू को कुछ दिन के लिए उसके ताऊ के घर भेज दो तो अच्छा है।"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों, मां क्या बात है?"

मां ने कहा, "अब परीक्षा के दिन आ रहे हैं। पढ़ाई में बाधा पड़ सकती है।"

महेन्द्र ने कहा,"मैं क्या बच्चा हूं, मां, अपना भला–बुरा,नफा–नुकसान मैं खुद नहीं समझ सकता?"

मां ने कहा, "सब कुछ ठीक है, पर एक ही साल की तो बात है, बेटा।"

महेन्द्र ने कहा, "उसके मां–बाप कोई होते, तो उनके पास भेजने में मुझे कोई आपत्ति नहीं थी, पर ताऊ के घर में मैं उसे नहीं रखना चाहता।"

राजलक्ष्मी मन ही मन कह उठीं, 'अरे, बाप रे। अभी से यह हाल। खुद ही घर का मालिक बन बैठा, बहू के बारे में सास कोई चीज़ ही नहीं। कल तो ब्याह हुआ और आज इतना दरद। ब्याह तो किसी दिन हमारा भी हुआ था, पर तब ऐसी बेहयाई नहीं थी।'

मां को गम्भीर देखकर महेन्द्र ने ज़ोर के साथ कहा, "तुम कुछ चिन्ता मत करो मां, परीक्षा में ज़रा भी बाधा नहीं पड़ेगी।"

४

सहसा राजलक्ष्मी ने अत्यधिक उत्साह से बहू को घर–गृहस्थी का काम–काज सिखाना शुरु कर दिया। भण्डारघर, रसोईघर और पूजाघर का काम करते–करते आशा का दिन पूरा हो जाता और रात को सास के साथ एक बिस्तर पर सोना पड़ता। इस तरह राजलक्ष्मी स्वंय बहू की आत्मीय से दूरी के अभाव की पूर्ति करने लगीं।

जब कोई तेज अभिभावक ईख का सारा रस खब चबा–चबाकर चूसता रहता है, तब मरे भरोसे का लालची बालक का गुस्सा जैसे लगातार असह्य रूप से बढ़ने

लगता है, ठीक वैसी ही हालत हो गई महेन्द्र की। स्वयं उसकी आंखों के सामने उसकी नवयौवना नई दुल्हन का सारा मीठा रस केवल घर–गृहस्थी के पोषण यन्त्र में निचुड़ता रहे, भला यह भी कभी सहा जा सकता है।

महेन्द्र ने अन्नपूर्णा से कहा, ''चाची! मां, बहू को जिस तरह काम-धन्धे के कोल्हू में पेर रही हैं, मुझसे तो देखा नहीं जाता।''

अन्नपूर्णा जानती थीं कि राजलक्ष्मी बहुत ज्यादती कर रही हैं, किन्तु फिर भी उन्होंने कहा, ''क्यो महेन्द्र, इसमें क्या बात है? बहू को घर का काम–काज सिखाना तो अच्छा ही है। आजकल की बहू-बेटियों का उपन्यास पढ़ना, कारपेट बुनना, शौक ही शौक में समय बरबाद करना क्या अच्छी बात है?''

महेन्द्र उत्तेजित होकर बोला, ''आजकल की लड़कियां तो आजकल की सी ही होंगी, चाहे वह अच्छी बात हो या बुरी। मेरी स्त्री अगर मेरे ही समान उपन्यास पढ़कर रस ले सके, तो मैं तो उसमें कोई बुराई या हंसी की बात नहीं देखता।''

अन्नपूर्णा के कमरे में पुत्र की आवाज सुनते ही राजलक्ष्मी हाथ का सब काम छोड़–छाड़कर दौड़ी चली आई और तेज गले से बोलीं, ''क्या बात है? तुम दोनों में क्या सलाह हो रही है?''

महेन्द्र उत्तेजित तो था ही, बोल उठा, ''सलाह कुछ नहीं हो रही। सुनो मां, बहू को मैं दासी की तरह दिन–रात काम–धन्धे में झोंकना नहीं चाहता।''

मां ने अपनी भड़की हुई आग का दमन करते हुए अत्यन्त तीखे, परन्तु कठोर स्वर में कहा, ''तो 'उनका' क्या करना चाहते हो?''

महेन्द्र ने कहा, ''मैं उसे पढ़ना–लिखना सिखाऊंगा।''

राजलक्ष्मी कुछ जवाब न देकर तेजी से चली गई और क्षण–भर बाद ही बहू का हाथ पकड़कर उसे महेन्द्र के सामने खड़ा करती हुई बोलीं ''यह लो अपनी धरोहर सिखाओ जितना सिखाना हो पढ़ना–लिखना।''

इतना कहकर वे अन्नपूर्णा की तरफ लपकीं और गले में आंचल डालकर हाथ जोड़कर बोलीं, ''माफ करना, मझली मालकिनजी, मुझे माफ करना। तुम्हारी बहनौत की इतनी मान-मर्यादा, मैं समझ नहीं पाई थी 'इनके' कोमल हाथों में मैंने हल्दी के दाग लगा दिए हैं, अब लो, तुम इन्हें धो–पोंछकर मेम साब बनाके महेन्द्र के हाथ सौंप दो, ताकि ये कुरसी–टेबल पर बैठकर पढ़ाई–लिखाई कर सकें, दासीपन मैं ही करुंगी।''

इतना कहकर राजलक्ष्मी सीधी अपने कमरे में चली गई और जोर से किवाड़ बन्द करके भीतर से हुड़का लगा लिया।

अन्नपूर्णा मारे रंज के जहां की तहां धरती पर बैठ गई और आशा इस एकाएक 'गार्हस्थिक क्रान्ति' का मतलब न समझकर लज्जा, भय, दुःख से कांप उठी

उसका चेहरा सफेद–फक पड़ गया। महेन्द्र मारे गुस्से के मन–ही–मन कहने लगा, 'बस, अब नहीं, अपनी स्त्री का भार अपने हाथ में लेना ही पड़ेगा, नहीं तो अन्याय होगा।'

इच्छा के साथ दायित्व की अकल का मेल होते ही हवा के साथ आग लग गई, फिर कहां गया कालेज, कहां रही परीक्षा, कहां गई मित्रता और कहां रहा सामाजिक बन्धन। स्त्री की उन्नति करना ही महेन्द्र का एकमात्र लक्ष्य बन गया और उसी क्षण उसने सख्त मुट्ठी से स्त्री का हाथ थाम लिया और उसे अपने कमरे में ले गया। काम–काज या लोक–लाज की उसने बिल्कुल ही परवाह नहीं की।

अभिमानिनी राजलक्ष्मी ने मन–ही मन कहा, 'अब तो महेन्द्र बहू को लेकर मेरे दरवाजे पर सिर पटकता रहे, तो भी मैं उसकी तरफ नहीं देखने की। देखूं वो अपनी मां के बिना बहू को लेकर कैसे ज़िन्दगी बिताता है।'

दिन बीत गया, रात भी बीत गई, दूसरा दिन आया, तीसरा दिन आया, किन्तु राजलक्ष्मी के दरवाजे के आगे किसी अनुतप्त के पैरों की आहट नहीं सुनाई दी।

राजलक्ष्मी ने तय किया कि महेन्द्र क्षमा मांगने आएगा, तो वे उसे क्षमा कर देंगी, नहीं तो बेचारे को बड़ी चोट पहुंचेगी।

क्षमा की प्रार्थना भी नहीं आई तब फिर राजलक्ष्मी ने तय किया कि वे खुद ही जाकर बेटे को क्षमा कर आएगी। लड़का रूठ गया है तो क्या मां को भी रूठे रहना चाहिए।

दूसरी मंजिल के ऊपर छत के एक कोने में महेन्द्र का सोने का कमरा है और वही उसका पढ़ने का कमरा है। इधर कई दिनों से मां ने उसके कपड़े–लत्ते नहीं संभाले और न घर–द्वार की सफाई ही की। कई दिन से मातृ–स्नेह के आदी कर्तव्य-पालन न कर सकने से उनका हृदय दूध के भार से बेचैन स्तन के समान भीतर ही भीतर व्यथित और पीड़ित हो उठा था। उस दिन दोपहर को वे सोचने लगीं, 'अब तो महेन्द्र कालेज चला गया होगा आते ही वह तुरंत समझ जाएगा कि कमरे में आज मां का हाथ पड़ा है।'

राजलक्ष्मी जीना तय करके ऊपर पहुंचीं। महेन्द्र के कमरे का एक किवाड़ खुला हुआ था। उसके सामने पहुंचते ही मानो सहसा उनके कांटा चुभ गया, वे ठिठककर खड़ी हो गई। देखा कि फर्श के बिस्तर पर महेन्द्र सो रहा है और दरवाजे की ओर पीठ किए हुए बहू धीरे-धीरे उसके पतवे पर हाथ फेर रही है। दोपहर के तेज प्रकाश में खुले कमरे में दाम्पत्य-लीला का यह अभिनय देखकर राजलक्ष्मी मारे लज्जा और धिक्कार के सिकुड़कर चुपचाप नीचे उतर आई।

५

कुछ दिन पानी न पड़ने से खेत की फसल जैसे पीली हो जाती है और फिर पानी

पड़ते ही बिना देर किए जल्दी–जल्दी बढ़कर वह लम्बे समय की उदासीनता दूर कर देती है और कमजोर झुकाव का त्याग–कर बिना किसी संकोच के निशंक होकर अपने अधिकार को उन्नत और उज्ज्वल कर देती है। आशा का भी ठीक वैसा ही हाल हुआ। जहां उसका रक्त का निकट–सम्बन्ध था, वहां उसने कभी आत्मीयता का दावा नहीं किया, किन्तु आज पराये घर आकर उसे जब बिना प्रार्थना के निकटतम सम्बन्ध और बिना शक अधिकार प्राप्त हुआ और पति ने जब उस बिना प्रयत्न प्रतिपालिता अनाथा के माथे पर अपने हाथ से लक्ष्मी का मुकुट पहना दिया, तब उसने अपना गौरव–पद ग्रहण करने में क्षण–भर की भी देर नहीं की। उसने नववधू–सुलभ लज्जा–भय सब दूर करके सौभाग्यवती स्त्री की महिमा से मण्डित होकर पति के चरणों में बिना किसी संकोच के क्षण में अपने सिंहासन पर अधिकर जमा लिया।

राजलक्ष्मी उस दिन दोपहर को उस सिंहासन पर इस नयी आई 'पराये घर की लड़की' को पुरानी आदत की तरह साहस के साथ बैठी देखकर न सहे जा सकने वाले आश्चर्य से नीचे उतर आई और फिर अपने मन की जलन से अन्नपूर्णा को जलाने पहुंची। बोलीं,''अजी ओ देवीजी, जरा देखो जाकर, तुम्हारी नवाबज़ादी नवाब के घर से कैसा शऊर–कायदा सीखकर आई हैं। आज अगर घर के बड़े–बूढ़े कोई होते, तो''

अन्नपूर्णा ने भय से बेचैन होकर कहा, ''जीजी, बहू तुम्हारी है, तुम उसे चाहे जैसे रखो, डांटों–डपटो, सिखाओ–गुनाओ, तुम्हें पूरा हक है। उसके बारे में मुझसे क्यों कहा करती हो?''

राजलक्ष्मी धनुष की टंकार की तरह बज उठीं, बोलीं ''मेरी बहू तुम जैसी मन्त्रानी के रहते मुझे कौन पूछता है।''

इसपर अन्नपूर्णा बड़ी तेजी से उठकर अपने पैरों की आहट से जीने को कंपाती हुई सीधी ऊपर पहुँची महेन्द्र के कमरे में, और जाते ही आशा से बोली ,''इस तरह मेरा सिर नीचा कराएगी, कलमुंही। लाज–शर्म नहीं, समय नहीं असमय नहीं, बूढ़ी सास के ऊपर सारे घर काम–काज छोड़कर तू यहां आराम कर रही है। मेरी फूटी तकदीर कि मैं तुझे इस घर में लाई।'' कहते–कहते उनकी आंखों से झर–झर आंसू झरने लगे और आशा भी सिर झुकाए दोनों हाथों से साड़ी के पल्ले को नोचती हुई चुपचाप दीवार के सहारे खड़ी–खड़ी रोने लगी।

महेन्द्र ने कहा, ''चाची, तुम बहू को क्यों झूठमूठ डांट रही हो? मैंने ही तो इसे रोक रखा है।''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''सो यह क्या तुमने कोई अच्छा काम किया है, बेटा? अभी

यह लड़की है, अनाथा है, मां से कभी कुछ सीखा नहीं, भलाई-बुराई का अभी इसे क्या ज्ञान है? तुम इसे यह क्या सिखा रहे हो?"

महेन्द्र ने कहा, "यह देखो, इसके लिए किताब, स्लेट, कापी सब ले आया हूं मैं इसे लिखना-पढ़ना सिखाऊंगा। इसपर चाहे कोई मेरी बुराई करे, चाहे नाराज़ हो।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "पढ़ाई–लिखाई क्या सारा दिन ही हुआ करती है? शाम के एक–आध घण्टे पढ़ा दिया, बस, काफी है।"

महेन्द्र ने कहा, "पढ़ना –लिखना इतना आसान नहीं, चाची, इसमें समय लगता है, काफी परिश्रम करना पड़ता है।"

अन्नपूर्णा झुंझला उठीं और तुरन्त कमरे से बाहर निकलकर नीचे चली आई। आशा ने भी धीरे–धीरे उनका पीछा करना चाहा, किन्तु महेन्द्र द्वार रोककर खड़ा हो गया। आशा की करुण भीगी आंखो में डूबी हुई प्रार्थना का भी उसपर कोई असर नहीं पड़ा, बोला, "ठहरो, सोकर जो समय नष्ट किया है, उसकी पूर्ति कर लेने दो।"

संसार में ऐसे गम्भीर स्वभाव के आदर योग्य बेवकूफों का होना कोई असम्भव नहीं, जो यह समझ बैठे हों कि महेन्द्र ने सचमुच नींद के आवेश में पढ़ाई का समय नष्ट किया है. लिहाजा, विशेष रुप से उनकी जानकारी के लिए इतना कह देना जरुरी है कि महेन्द्र के शिक्षण में जैसी पढ़ाई होती है, उसको कोई भी स्कूल इन्स्पेक्टर कभी भी मान्य नहीं कर सकता।

आशा ने अपने पति पर विश्वास किया था और वास्तव में ऐसा सोचा था कि पढ़ना–लिखना सीखना उसके लिए कई कारणों से सहज नहीं हो सकता, फिर भी पति की आज्ञा होने से उसका कर्तव्य है कि वह पढ़ने–लिखने में पूरी तरह ध्यान दे। इसके लिए वह पूरी कोशिश से अपने हलचल भरे दुखी मन को संयत करती, शयन–गृह में फर्श पर बिछे हुए गद्दे के एक किनारे बड़ी गम्भीर होकर बैठती और किताब–कापी पर बिलकुल झुककर सिर हिलाती हुई पाठ याद करने में जुट जाती। कमरे के दूसरी तरफ एक छोटी–सी टेबल पर डाक्टरी किताब खोलकर मास्टर साहब कुर्सी पर बैठे रहते और बीच–बीच में कनखियों से छात्रा की निगरानी करते रहते कि ठीक से मन लगाकर पढ़ रही है या नहीं। देखते–देखते अचानक डाक्टरी किताब बन्द हो जाती और महेन्द्र के मुंह से निकल जाता, "चुन्नी।" आशा चकित होकर मुंह उठाकर देखने लगती। महेन्द्र कहता, "किताब लेकर इधर तो आओ, जरा देखूं, कहां पढ़ रही हो।"

परीक्षक की बुलाहट सुनकर आशा किताब हाथ में लिए हुए डरती–डरती महेन्द्र की कुर्सी के पास पहुंचती। महेन्द्र एक हाथ से उसकी कमर घेरकर दृढ़ता

से उसे बन्दिनी बना लेता और दूसरे हाथ में किताब लेकर पूछता, "आज कितन पढ़ा बताना ज़रा।" आशा जितनी पंक्तियों पर आंखे फेर सकती थी, उतना बत देती। महेन्द्र टूटे स्वर में कहता, "अरे तुमने इतना पढ़ डाला। मैंने कितना पढ़ा है देखोगी?" और फिर अपनी पढ़ाई का हिसाब देते हुए जो कुछ दिखाता, उसमें किसी एक अध्याय के शीर्षक के सिवा और कुछ न होता। आशा आश्चर्य से आंखे फाड़कर कहती, तो इतनी देर से क्या कर रहे थे? महेन्द्र उसकी ठोड़ी पकड़कर कहता, 'कोई आदमी है, उसीकी बात सोच रहा था, लेकिन जिसकी बात मैं सोच रहा था, वह निर्दय 'चारुपाठ' में दीमक की कहानी' के मज़े ले रहा था" आशा इस निराधार आरोप के खिलाफ सही उत्तर दे सकती थी, किन्तु कोई उपाय जो नहीं, केवल लज्जा की खातिर ही प्रेम की प्रतियोगिता में चुपचाप उसे हार मान लेनी पड़ती।

मान लो, घर में किसी दिन महेन्द्र उपस्थित नहीं है और उस मौके से आशा पढ़ने में मन लगाने की कोशिश कर रही है। इतने में महेन्द्र न मालूम कहां से आकर पीछे से उसकी आंखे मीच लेता है और किताब छीनकर कहता है, "निर्दय कहीं की। मैं जब घर नहीं रहता तब तुम मुझे याद न करके पाठ याद किया करती हो, क्यों?"

आशा कहती, "तुम मुझे मूर्ख ही बनाए रखोगे क्या?"

महेन्द्र कहता, "तुम्हारी कृपा से मेरी पढाई भी ऐसी क्या दौड़ लगा रही है, जो तुम्हें डाह हो रहा है?"

बात सहसा आशा के मन में चुभ जाती और वह उसी क्षण जाने को तैयार होकर कहती, "मैंने तुम्हारी पढ़ाई में कब बाधा डाली है?"

महेन्द्र उसका हाथ पकड़कर कहता, "तुम इसको क्या समझो। मुझे भूलकर तुम जितनी आसानी से पाठ याद कर सकती हो, तुम्हें भूल कर मैं तो उतनी आसानी से पढ़ाई नहीं कर सकता।"

यह बहुत बड़ा दोषारोपण है। इसके बाद तो आदत की तरह ही सर्दी की हलकी वर्षा की तरह आशा की आंखे आंसू बरसाने लगतीं और कुछ ही देर में उसका वा आंसू बरसाना लाड़–प्यार के सूर्यलोक में विलीन हो जाता, रह जाती केवल एक गीली चमचमाहट।

शिक्षक स्वयं ही यदि शिक्षा का सबसे बड़ा अन्तराय हो उठे, तो अबला छात्र की मजाल क्या कि वह विद्या के जंगल में स्वंय मार्ग निकालकर चले। किन कभी–कभी मौसीकी तीखी फटकार की याद आती, तो आशा का दिल बेचैन उठता। वह समझ जाती कि पढ़ाई का तो एक बहाना है। सास को देखती तो म शरम के गड़गड़ जाती, किन्तु सास उससे कभी किसी काम के लिए नहीं कहत कोई उपदेश नहीं देतीं, और बिना आज्ञा के वह सास के काम में सहायता दे जाती भी, तो सास बेहद चंचल होकर कहने लगतीं, "अरे कर क्या रही हो।

जाओ, अपने कमरे में जाओ, तुम्हारी पढ़ाई मारी जाएगी।"

अन्त में अन्नपूर्णा को आशा से कहना ही पड़ा, तेरी जो कुछ पढ़ाई हो रही है, सो तो सब मुझे मालूम है। अब तू क्या महेन्द्र को भी डाक्टरी पास नहीं करने देगी?"

सुनकर आशा ने अपने मन को खूब कड़ा कर लिया और महेन्द्र से जाकर बोली, "तुम्हारी परीक्षा की पढ़ाई नहीं हो रही है आज से मैं नीचे मौसी के कमरे में रहूंगी।"

महेन्द्र ने कहा, "तो चलो, चाची के कमरे में ही चले चलें, पर उन्हें फिर आकर हमारे कमरे में रहना पड़ेगा।"

आशा ने इतने बड़े उदार गम्भीर प्रस्ताव को मज़ाक में उड़ता देख मारे गुस्से के रूठकर अपना मुंह फेर लिया। महेन्द्र ने कहा, "इससे तो बल्कि तुम खुद मुझे दिन–रात अपनी आंखों ही आंखों में रखकर पहरा दो तो अच्छा हो, फिर देखना कि मैं परीक्षा की पढ़ाई करता हूं या नहीं।"

यह बात सहज ही में तय हो गई। आंखों ही आंखों में रखकर कैसे पहरा दिया जाने लगा, इसका विस्तार से वर्णन करना अनावश्यक है। केवल इतना कह देना ही काफी होगा कि उस साल महेन्द्र परीक्षा में फेल हो गया और साथ-साथ 'चरुपाठ' में विस्तार से वर्णन रहने पर भी 'बुहुभुज' के विषय में आशा का अज्ञान भी दूर नहीं हुआ।

महेन्द्र के फेल होने की खबर से राजलक्ष्मी गर्मियों के अचानक अग्निकाण्ड की तरह एकाएक ऐसी जल उठीं कि उसकी लपटों के आसपास का कोई बच न सका। सबसे ज्यादा गर्जन और झुलसन सहना पड़ा अन्नपूर्णा को। उनका खाना, पीना, सोना सब छूट गया।

६

एक दिन नयी वर्षा की बादलों भरी बरसाती शाम के समय महेन्द्र एक महकता हुआ महीन दुपट्टा ओढ़े और गले में जूही का गजरा डाले बड़े आनन्द से अपने सोने के कमरे में पहुंचा। सहसा आशा को चकित कर देने के विचार से उसने जूतों की आवाज़ तक न होने दी। कमरे में झांककर उसने देखा कि पूरब की खुली हुई खिड़की में से जोर की हवा वर्षा की बौछार के साथ कमरे में प्रवेश कर रही है, हवा से बत्ती बुझ गई है और आशा नीचे के बिस्तर पर पड़ी सिसक–सिसककर रो रही है। महेन्द्र ने जल्दी से उसके पास जाकर पूछा, "क्या हुआ, आशा?"

बालिका दूने जोर से रो उठी। बहुत देर बाद महेन्द्र को अपने प्रश्न का क्रमशः उत्तर मिला, "मौसी से अब सहा नहीं जाता, सो वे अपने फुफेरे भाई के यहां चली गई हैं।"

महेन्द्र ने कहा, "चाची जहां गई हैं, हम लोग भी वहीं जाएंगे। देखें, मां फिर किनके साथ लड़ती–झगड़ती हैं।"

इसके बाद महेन्द्र ने बड़े जोर का शोरगुल मचाते हुए सामान बांधना और कुली–मजूरों को बुलाना शुरू कर दिया।

राजलक्ष्मी सब समझ गई। उन्होनें धीरे–धीरे महेन्द्र के पास आकर शान्त स्वर में पछा, "कहां जा रहा है तू?"

महेन्द्र ने पहले तो कुछ जवाब ही नहीं दिया, फिर दो–तीन बार पूछे जाने के बाद बोला, "चाची के पास जा रहा हूं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुम लोगों को कहीं नहीं जाना होगा मैं ही जाकर तेरी चाची को यहां लिवाए लाती हूं।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी उसी क्षण पालकी में बैठकर अन्नपूर्णा को लिवाने चली गई और वहां अन्नपूर्णा के सामने जाकर गले में आंचल डालकर हाथ जोड़कर बोलीं, "प्रसन्न होइए, मझली बहू। क्षमा कीजिए।"

अन्नपूर्णा इस नाटकीय भाव को देखकर मारे शर्म के गड़–गड़ गई और अत्यंन्त चंचल होकर जिठनी के पांवों की धूल माथे से लगाते हुई बोलीं, "जीजी, क्यों मुझे इस तरह अपराधिनी बनाकर लज्जा देती हो? तुम मुझे जो आज्ञा दोगी, वही करूगी मैं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुम चली आई हो, इसलिए बेटा और बहू दोनों घर छोड़कर चले जा रहे हैं।" कहते-कहते वे अभिमान. क्रोध और धिक्कार के मारे रो उठीं।

देवरानी-जिठानी दोनों घर लौट आईं। बाहर वर्षा हो रही है। अन्नपूर्णा जब महेन्द्र के कमरे में पहुंचीं, तब आशा का रोना थम चुका था और महेन्द्र तरह-तरह ही हंसी की बात छेड़कर उसे हंसाने की कोशिश कर रहा था।

अन्नपूर्णा ने कहा, "चुन्नी, तू मुझे घर में भी नहीं रहने देगी और, और कहीं जाऊं तो वहां भी पीछा नहीं छोड़ेगी। मुझे क्या कहीं भी जरा शान्ति लेने देगी तू?"

आशा अचानक तीर से घायल हिरनी की तरह चकित हो उठी। महेन्द्र सहसा झुंझलाकर बोल उठा, "क्यों चाची, चुन्नी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा?"

अन्नपूर्णा ने कहा, 'बहू–बेटी का इतना बेहयापन मुझसे नहीं देखा गया, तभी तो मैं यहाँ से चली गई थी। फिर सास को रुलाकर क्यों मुझे पकड़वा मंगाया कलमुंही ने?"

जीवन के कविता जैसे अध्याय में मां और चाची ऐसी 'बाधा' बन सकती हैं, महेन्द्र को यह नहीं मालूम था।

दूसरे दिन राजलक्ष्मी ने बिहारी को बुलाकर कहा, "बेटा, एक बार महेन्द्र से कहो, मैं बहुत दिनों से मायके नहीं गई, अब मैं बारासात जाना चाहती हूं।"

बिहारी ने कहा, "बहुत दिनों से जब कि नहीं ही गई, तो अब न जाओ तो क्या है? अच्छा, मैं महेन भइया से कहूंगा, पर वे शायद ही राजी हों।"

बिहारी की बात का उत्तर देते हुए महेन्द्र ने कहा, "सो तो ठीक है, जन्मभूमि देखने को किसका जी नही चाहता। पर मां का वहां ज्यादा दिन न रहना ही अच्छा है, बरसात के दिनों में वह जगह अच्छी नहीं है।"

महेन्द्र ने सहज ही में राय दे दी, इससे बिहारी कुछ नाराज हुआ, बोला, "मां अकेली जाएंगी,वहां कौन उनकी सेवा–टहल करेगा? भाभी को भी साथ भेज दो न।" इतना कह कर वह जरा हंस दिया।

बिहारी की इस भीतरी व्यंग्य की मार से महेन्द्र सिकुड़ गया।उसने कहा, "सो क्या मैं नहीं भेज सकता तुम समझते हो?"

किन्तु बात इससे और आगे नहीं बढ़ सकी।

इसी तरह बिहारी आशा का मन विमुख कर दिया करता और यह जानकर कि आशा उसपर नाराज हो रही है, मानो वह एक प्रकार का सूखा आनन्द अनुभव करता रहता।

राजलक्ष्मी की बारासात जाने की बात इतनी जल्दी और इतनी आसानी से मंजूर हो जाएगी, इस बात की उन्हें कतई आशा नहीं थी। वे मन ही मन कहने लगीं, 'अन्नपूर्णा के घर छोड़ने और मेरे घर छोड़ने में कितना फरक है। वह ठहरी टोना–मन्त्र जाननेवाली 'डाइन' और मैं केवल 'मां'। मेरा जाना ही अच्छा है।'

अन्नपूर्णा भीतरी बात को समझ गई। उन्होंने महेन्द्र से कहा, "जीजी चली जाएंगी, तो मैं भी यहां नहीं रह सकूंगी।"

महेन्द्र ने मां से कहा, "सुनती हो, मां, तुम जाओगी तो चाची भी चली जाएगी तब फिर घर का काम कैसे चलेगा?"

राजलक्ष्मी बैर के ज़हर से टूटकर बोल उठीं, 'तुम जाओगी, मझली बहू। ऐसा भी कभी हो सकता है। तुम जाओगी तो काम कैसे चलेगा? तुम्हारा रहना तो बहुत जरूरी है।"

राजलक्ष्मी के लिए देरी सहन करना मुश्किल हो उठा। दूसरे दिन दोपहर के पहले ही उन्होंने देश जाने की पूरी तैयारिया कर डालीं। महेन्द्र खुद ही उन्हें देश पहुंचा आएगा, इस विषय में बिहारी या और किसी को कोई सन्देह न था, किन्तु समय पर देखा गया कि महेन्द्र ने मां के साथ एक गुमाश्ता और एक दरबान को भेजने की व्यवस्था की है।

बिहारी ने आकर कहा, "महेन भइया, अभी तक तुम तैयार भी नहीं हुए?'

महेन्द्र ने लज्जित होकर कहा, "मुझे कालेज की"

बिहारी बोला, "अच्छा, तुम रहने दो, मां को मै पहुंचा आऊगां।"

महेन्द्र मन ही मन क्रुद्ध हो उठा। उसने एकान्त में आशा से कहा, "सचमुच बिहारी अब बहुत ज्यादती करने लगा है। वह दिखाना चाहता है, मानो उसे मां की चिन्ता मुझसे बहुत ज्यादा है।"

अन्नपूर्णा को रहना पड़ा, किन्तु लज्जा रंज और अलगाव से काफ़ी सिकुड़ कर दूर ही दूर रहने लगीं। चाची का इस तरह दूर-दूर रहना महेन्द्र को अच्छा नहीं लगा। वह रूठा-रूठा रहने लगा और आशा भी कुछ रूठी-सी और कुछ अनमनी-सी रहने लगी।

७

राजलक्ष्मी अपनी जन्मभूमि में पहुंच गई। तय था कि बिहारी उन्हें पहुंचाकर लौट आएगा, किन्तु वहां की हालत देखकर वह लौट न सका।

राजलक्ष्मी के मायके में सिर्फ दो-एक बहुत बूढ़ी विधवा जीवित थीं। चारों ओर घना जंगल और बांस के झाड़ थे, तालाब का पानी हरा हो चुका था और दिन-दोपहर को सियार बोला करते थे, जिससे राजलक्ष्मी का मन व्याकुल हो उठता था।

बिहारी ने कहा, "मां, है तो यह जन्मभूमि ही, पर इसे 'स्वर्गादपि गरीयसी' हरगिज़ नहीं कहा जा सकता। चलो, अब कलकत्ते चलो। यहां तुम्हें अकेले छोड़ जाना अधर्म है, मुझसे यह हरगिज़ न होगा।"

राजलक्ष्मी का भी जी उकता गया था। इतने में विनोदिनी आ गई। उससे राजलक्ष्मी को सहारा मिल गया और विनोदिनी को भी आश्रय मिल गया।

विनोदिनी का परिचय शुरू में ही दिया जा चुका है। किसी समय महेन्द्र और उसके अभाव में बिहारी के साथ उसके ब्याह की बात चली थी। विधि के विधान से जिसके साथ उसका शुभ विवाह हुआ था, उस आदमी के अंदर सारी इंद्रियों में ताप—तिल्ली ही थी सबसे प्रबल और उसके बोझ के कारण ही वह अधिक दिन तक जीवन धारण न कर सका।

उसकी मृत्यु के बाद विनोदिनी, जंगल में एकमात्र बाग़ की बेल की तरह, इस आनन्द से खाली गांव में मरी हुई सी जिन्दगी के दिन काट रही थी। आज उस अनाथा ने आकर बड़ी भक्ति से अपनी फफुआ सास राजलक्ष्मी के पांव लगे और उसकी सेवा में आत्मसमर्पण कर दिया।

सेवा इसीका नाम है। एक क्षण के लिए भी आलस नहीं, कैसा साफ-सुथरा काम है, कैसी उम्दा रसोई बनाती है और बोली कितनी मीठी। राजलक्ष्मी कहतीं, "अबेर हो गई है, बेटी, अब कुछ खा—पी लो, जाओ।"

भला वह कब सुनने लगी। पंखे से हवा करते—करते जब तक सास को सुला

नहीं देती, तब तक उठने का नाम नहीं लेती।

बिहारी दो ही चार दिन में गांव का मुरब्बी—मुखिया बन गया। उसके पास कोई दवा पूछने आता, तो कोई मुकदमे के बारे में सलाह ले जाता, कोई अपने लड़के को किसी बड़े आफिस में नौकरी दिलाने की प्रार्थना करता, तो कोई उससे दरखास्त ही लिखा ले जाता। बूढ़ों की ताश—शतरज—सभा से लेकर बागदियों की ताड़ी—पान—सभा तक सब जगह वह अपना सकौतुक कुतूहल और स्वाभाविक सहृदयता लिए हुए फिरने लगा। कोई उसे गैर नहीं समझता, बल्कि सभी उसका सम्मान करते हैं।

विनोदिनी भी घर के अन्तराल से गलत जगह में पड़े इस कलकत्ते के युवक के निर्वासन—दण्ड को जितना हो सके हलका करने की कोशिश करती रहती। बिहारी हर बार जब गांव में घूम-फिरकर घर आता, तो देखता कि किसीने उसके कमरे को खूब अच्छी तरह झाड़—बुहारकर साफ—सुथरा कर रखा है, एक गिलास में दो—चार तरह के फूलों का गुलदस्ता बनाकर सजा रखा है और उसके बिस्तर के पास ही बंकिम चन्द्र और दीनबन्धु की ग्रन्थावली सजाकर रख दी है। प्रत्येक जिल्द के भीतर 'विनोदिनी' नाम लिखा हुआ है, हस्ताक्षर स्त्रियों जैसे हैं, किन्तु लिखावट पक्की है।

गांव के प्रचलित अतिथि—सत्कार के साथ इस आतिथ्य में ज़रा कुछ विशेषता है। बिहारी जब विनोदिनी का उल्लेख करके प्रशंसा करने लगता, तब राजलक्ष्मी कहतीं, "ऐसी शऊर की लड़की की तुम लोगों ने बिल्कुल ही उपेक्षा कर दी। अरे, मुझे दु:ख तो इसी बात का है।"

बिहारी हंसकर कहता, 'अच्छा नहीं किया, मां, हम लोग ठग गए पर ब्याह न करके ठगाना अच्छा, ब्याह करके ठगे जाने में मुसीबत होती।"

राजलक्ष्मी के कलकत्ते जाने की बात छिड़ती, तो विनोदिनी की आंखों में आंसू भर आते। कहती, "बुआजी, तुम दो दिन के लिए आई ही क्यों थीं? जब तुम्हें मैं जानती न थी, तब तो किसी न किसी तरह दिन कट जाते थे, पर अब तुम्हारे बगैर मुझसे रहा कैसे जाएगा।"

राजलक्ष्मी को आशा थी कि कलकत्ते से उनके पास मान—मनौवल—भरा करुण पत्र आएगा और उसकी वे हर पल प्रतीक्षा कर रहीं थी। उनका महेन जन्म से लेकर अब तक कभी इतने दिन मां को छोड़कर अकेला नहीं रहा और अब तो निश्चय ही इतने दिन की दूरी ने इसे अधीर कर दिया होगा। राजलक्ष्मी अपने रूठे हुए लड़के की तरफ से लाड़ और उलाहने-भरे प्रार्थनापूर्ण पत्र के लिए प्यासी और बेचैन हो रही थी।

महेन्द्र का पत्र आया, किन्तु बिहारी के नाम। उसने लिखा है, "आशा है, मां

बहुत दिनों बाद जन्मभूमि जाकर बहुत प्रसन्न और सुखी होंगी।"

मां ने सोचा, 'बेटा अभी तक रूठा हुआ है, इसीसे लिखता है, प्रसन्न होंगी, सुखी होंगी। अभागिनी मां भला बेटे के बिना कहीं भी प्रसन्न रह सकती है, सुख से रह सकती है।' फिर वे बिहारी से पूछने लगीं, "और आगे क्या लिखा है महेन ने ज़रा पढ़के सुना तो, बेटा।"

बिहारी ने कहा, "आगे कुछ भी नहीं लिखा मां।" और चिट्ठी को उसने मोड़–मरोड़कर एक किताब की जिल्द के भीतर रख–कर धप से उसे एक कोने में फेंक दिया।

बछड़ा जैसे गाय के थन में हुड्ड मार–मारकर ममता का संचार करके दूध उतारता है, महेन्द्र के गुस्से ने ठीक वैसे ही राजलक्ष्मी को चोट पहुंचाकर उनकी रुकी हुई ममता को नष्ट कर दिया। उन्होंने महेन्द्र को क्षमा कर दिया। कहने लगी, "अच्छा है, अच्छा है, महेन बहू को लेकर शान्ति से रह रहा है, रहने दो, जैसे भी रहे, सुखी रहना चाहिए। बहू के बारे में अब मैं कुछ नहीं बोलूंगी। मैं उसे कष्ट थोड़े ही देना चाहती हूं। देखो भला, जो मां उसे घड़ी–भर के लिए कभी भी अपने से अलग नहीं रख सकती थी, वह मां इतनी दूर चली आई, तो क्यों नहीं उसे गुस्सा आएगा?" कहते–कहते राजलक्ष्मी की आंखों में आंसू भर आए।

उस दिन राजलक्ष्मी बिहारी से बार–बार आकर कहने लगीं, "जाओ बेटा, तुम, नहा–धो लो। यहां तुम्हारा रहन–सहन बड़ा अनियमित हो गया है।" सैकड़ों बार अनुरोध किए जाने पर बिहारी को आखिर उठना ही पड़ा।

उसके बाहर आते ही राजलक्ष्मी ने जल्दी से जिल्द में से महेन्द्र की मुड़ी–मुड़ाई चिट्ठी निकाल ली। विनोदिनी के हाथ में चिट्ठी देते हुए उन्होंने कहा, "देखो तो बेटी, महेन ने बिहारी को क्या लिखा है?"

विनोदिनी पढ़कर सुनाने लगी। महेन्द्र ने शुरू में मां के विषय में लिखा था, किन्तु बहुत ही थोड़ा बिहारी ने जितना सुनाया था, उससे ज़्यादा कुछ नहीं।

उसके बाद ही आशा की बातें लिखी हैं। महेन्द्र ने रस–रंग, हास्य–रहस्य और पुलक–आनन्द के नशे में डूब कर चिट्ठी लिखी है। विनोदिनी थोड़ा–सा सुनाकर मारे लज्जा के रुक गई, बोली, "बुआजी, अब आगे सुनके क्या करोगी?" विनोदिनी उस चिट्ठी को लेकर अपनी कोठरी में चली गई और भीतर से किवाड़ बन्द करके बिस्तर पर बैठकर उसे पढ़ने लगी।

बार–बार उसके मन में यही एक बात चक्कर काटने लगी कि महेन्द्र कैसा है, आशा कैसी है, महेन्द्र और आशा का प्रेम कैसा है? चिट्ठी को अपनी छाती के पास दबाकर वह पैर फैलाए दीवार के सहारे बैठी हुई बहुत देर तक सामने के आकाश की ओर देखती रही। बिहारी तलाश करता रह गया, किन्तु महेन्द्र की चिट्ठी उसे नहीं मिली।

उसी दिन दोपहर को अकस्मात् अन्नपूर्णा आ पहुंचीं। बुरी खबर की आशंका से सहसा राजलक्ष्मी की छाती कांप उठी। कुछ पूछने की उन्हें हिम्मत ही न पड़ी। अपना सफेद–फक मुंह लिए वे अन्नपूर्णा के मुंह की तरफ देखती रहीं।

अन्नपूर्णा ने कहा, "जीजी, कलकत्ते में सब राज़ी–खुशी हैं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तो तुम यहां कैसे?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "जीजी, तुम अपनी घर–गृहस्थी आप जाकर सम्हाल लो। मेरा अब घर–गृहस्थी में मन नहीं लगता। मैं काशी जाने के लिए घर से रवाना हो चुकी हूं, इसीसे तुम्हारे पांव लगने आई हूं। जाने अनजाने बहुत कसूर बन पड़े हैं मुझसे, सो सब माफ कर देना, जीजी। और तुम्हारी बहू" कहते–कहते उनकी आंखों से आंसू गिरने लगे, "अभी वह बच्ची है, उसके मां नहीं बाप नहीं वह दोषी, हो या निर्दोष है वो तुम्हारी ही।" कहते–कहते उनका गला रुंध आया आगे कुछ कह न सकीं।

राजलक्ष्मी व्यस्तता के साथ देवरानी के नहाने-खाने की व्यवस्था करने चली गई। बिहारी खबर पाते ही गदाई घोष की चौपाल से भागा–भागा घर आया और चाची के पांव छूकर कहने लगा, "नहीं–नहीं, चाची, यह कैसे हो सकता है। हम लोगों की ममता छोड़ तुम काशी चली जाओगी, यह तो हरगिज़ नहीं हो सकता।"

अन्नपूर्णा ने आंसू रोकते हुए कहा, "अब तू मुझे रोकने की कोशिश न कर, बिहारी मेरे बिना कोई काम नहीं रुकेगा। तुम सब खुश रहो, सुखी रहो, इसके सिवा मुझे और क्या चाहिए?"

बिहारी कुछ देर चुप बैठा रहा और फिर बोला, "महेन्द्र का भाग्य ही खराब है। उसने तुम्हें भी विदा कर दिया।"

अन्नपूर्णा ने चौंककर कहा, "ऐसी बात मुंह से न निकाल, बिहारी! महेन्द्र से मैं ज़रा भी नाराज़ नहीं। मेरे बिना हटे घर की भलाई नहीं होगी, इसीसे मैंने काशी जाना तय किया है।"

बिहारी दूर आकाश की तरफ देखता हुआ चुपचाप बैठा रहा। अन्नपूर्णा ने अपने आंचल से दो सोने के भारी कड़े खोलते हुए कहा, "बेटा ये कड़े तुम अपने पास रखो, जब तुम्हारी बहू आवे तब मेरी तरफ से आशीर्वाद में उसे पहना देना।"

बिहारी कड़ों को माथे से लगाकर अपने उमड़ते हुए आंसुओं को रोकने के लिए बगल के कमरे में चला गया।

विदा होते समय अन्नपूर्णा ने कहा, "बिहारी बेटा, तुम मेरे महेन्द्र की और आशा की सम्हाल करते रहना।"

और फिर राजलक्ष्मी के पास जाकर उनके हाथ में एक कागज़ देती हुई बोली, "ससुरजी की सम्पत्ति में मेरा जो हिस्सा है, उसे मैं इस दानपत्र में महेन्द्र को दिए जाती हूं। मुझे तुम हर महीने सिर्फ पन्द्रह रुपये भिजवा दिया करना"।

इतना कहकर अन्नपूर्णा ने जिठानी के पांव से माथा छुआकर प्रणाम किया और पांवों की धूल माथे से लगाई, फिर काशी के लिए विदा हो गई।

८

आशा को एक तरह का डर-सा बैठ गया। यह क्या हुआ, मां चली गई, मौसी चली गई। उन लोगों का सुख मानो सभीको निकाल बाहर कर रहा है। अब शायद उसकी खुद की भागने की बारी है।इस छोड़ी गई सूनी घर-गृहस्थी में दाम्पत्य की प्रेमलीला उसे कैसी तो गलत-सी मालूम होने लगी।

गृहस्थी कठिन कर्तव्य से प्रेम को फूल की तरह तोड़कर अलग कर लेने से फिर वह केवल अपने रस से अपने-आपको सजीव नहीं रख सकता, धीरे-धीरे वह विमर्ष और विकृत होने लगता है। आशा भी मन ही मन महसूस करने लगी कि उनके बिना ठहरे मिलन में प्रतिक्षण एक तरह की थकान और कमजोरी आती जाती है। उनका मिलन मानो अब रह-रहकर अपने-आप मुरझाता और सूखता जा रहा है। घर-गृहस्थी के दृढ़ और सीधे सहारे के अभाव में उसे खींच-पकड़कर खड़ा रखना अब कठिन हो रहा है। काम-काज के भीतर ही यदि प्रेम की जड़ न पनपे, तो भोग की बढ़ौतरी भी पूर्ण और स्थायी नहीं होती।

अब घर का काम-काज ठीक से नही होता। नौकर-चाकर काम से जी चराते हैं। एक दिन नौकरानी तबीयत खराब होने का बहाना बनाकर घर बैठ रही और रसोइया महाराज शराब पीकर लापता हो गया।

महेन्द्र ने आशा से कहा, "बड़ा अच्छा हुआ आज हम-तुम दोनों रसोई बनाएंगे, बड़ा मज़ा रहेगा।"

महेन्द्र गाड़ी में बैठकर साग-तरकारी लेने न्यू मार्केट पहुंचा, जहां से अंग्रजों के बावर्ची लोग सब्ज़ी खरीदते हैं। कौन-सी चीज कितनी चाहिए और क्या-क्या चाहिए, यह तो उसे कुछ मालूम नहीं था,लिहाजा बहुत-सा बोझ लेकर वह बड़े आनन्द से घर लौटा। आशा का यह हाल है कि वह भी कुछ नहीं जानती कि उन चीजों का कैसे क्या किया जाता है। नतीजा यह हुआ कि जांच-पड़ताल करते-करते ही ढाई-तीन बज गए और तरह-तरह के अनोखे न खाए जा सकने वाले भोजन बना-बनाकर महेन्द्र खूब मज़े लेने लगा, किन्तु आशा महेन्द्र के मज़े में शरीक न हो सकी। उसे अपनी अज्ञानता और असमर्थता पर भीतर ही भीतर बड़ी लज्जा हुई और रंज भी हुआ।

एक दिन शाम को दोनों जने छत वाले बरामदे में बिस्तर बिछाकर बैठे थे। सामने खुली छत है। वर्षा होने के बाद कलकत्ते की दिशाओं में फैली इमारतें चांदनी में चमक रही हैं। बगीचे से ढेर-के-ढेर भीगे हुए मौलसिरी के फूल लाकर आशा सिर झुकाए चुपचाप बैठी माला गूथं रही है और महेन्द्र उसे खींच-तानकर रुकावट डालकर उलटी आलोचना करके व्यर्थ ही लड़ाई मोल लेने की कोशिश कर रहा है। आशा इस अकारण छेड़छाड़ के विरुद्ध विरोध करने के लिए कुछ कहने को बीच-बीच में मुंह खोलना चाहती, तो महेन्द्र चट से किसी एक बनावटी तरीके से आशा का मुंह बन्द करके उसके शासन वाक्य को अंकुर की स्थिति में ही नष्ट कर देता।

इतने में पड़ोसी के घर की पालतू कोयल पिंजड़े में से 'कुहू-कुहू' बोल उठी। उसी समय महेन्द्र और आशा दोनों अपने सिर के ऊपर लटकते पिंजडे की तरफ देखने लगे। उनकी कोयल ने पड़ोस की कोयल की कुहू की आवाज को कभी भी चुपचाप सहन नहीं किया,फिर आज वह जवाब क्यों नहीं देती?

आशा ने बेचैन होकर कहा, "कोयल को आज हो क्या गया?" महेन्द्र ने कहा, "तुम्हारी आवाज़ सुनकर शरमा गई है।"

आशा ने विनती के स्वर में कहा, "नहीं, हंसी नहीं, देखो न ज़रा, क्या हो गया इसे?"

महेन्द्र ने पिंजड़ा उतार लिया। पिंजड़े का दरवाजा खोलकर देखा तो कोयल मरी पड़ी है। अन्नपूर्णा के चले जाने के बाद नौकर छुट्टी लेकर चला गया था, फिर किसीने उसकी खबर ही नहीं ली।

देखते-देखते आशा का चेहरा मैला हो गया। उसकी उंगलियां रुक गई, फूल जहां के तहां पड़े रह गए। महेन्द्र के मन को चोट न पहुंची हो सो बात नहीं, किन्तु असमय में रंग में भंग होने की आशंका से बात को उसने हंसी में उड़ा देने की कोशिश की। बोला, "चलो, अच्छा ही हुआ, मैं डाक्टरी करने जाता और यह 'कुहू-कुहू' करके तुम्हें जलाती रहती।" इतना कहकर उसने आशा को अपनी बाहो में बांध कर पास खींचने की कोशिश की, किन्तु आशा ने धीरे से अपने को छुड़ाकर आंचल में भरे सारे फूल फेंक दिए। बोली, "बस अब बहुत हो चुका। छी-छी। तुम जल्दी जाओ, मां को ले आओ।"

९

ठीक इसी समय नीचे से आवाज़ आई, "महेन भइया, महेन भइया!" महेन्द्र ने जवाब दिया, "अरे कौन, बिहारी! आओ, आओ।" बिहारी की आवाज

सुनकर महेन्द्र का मन मारे खुशी के खिल उठा। ब्याह के बाद बिहारी बीच-बीच में इन लोगों के सुख में रुकावट बनकर आया है, किन्तु आज वह रुकावट ही सुख के लिए अत्यन्त आवश्यक मालूम हुई।

आशा को भी बिहारी के आगमन से आराम मालूम हुआ। माथे का पल्ला सम्हालकर वह जल्दी से उठके जाने लगी। महेन्द्र ने कहा, "जाती हो? और कोई थोड़े ही है, बिहारी है।"

आशा ने कहा, "लालाजी के लिए जलपान का इन्तजाम करने जा रही हूं।"

काम का अवसर मिल जाने से आशा का दुख ज़रा कुछ हलका हो गया। वह सास की खबर जानने के लिए घूंघट खींचकर खड़ी रही। बिहारी से अब तक वह परदा करती आई है, बोलती नहीं।

बिहारी ऊपर के बराण्डे में पांव रखते ही बोल उठा, "बुरा हुआ, मुझसे कसूर हो गया, भाभी। ऐसे कविता जैसे माहौल में आकर कदम रखा कि, खैर, डरने की कोई बात नहीं, तुम बैठो, मैं भाग चला।"

आशा महेन्द्र के मुंह की तरफ देखने लगी। महेन्द्र ने बिहारी से पूछा, "बिहारी, मां की क्या खबर है?"

बिहारी ने कहा, "मां-चाची की बात आज क्यों, भाई साहब? उनके लिए बहुत समय पड़ा है। सच ए नाइट वाज़ नॉट मेड फॉर स्लीप, नॉर फॉर मदर्स एण्ड आण्ट्स (ऐसी रात सोने के लिए नहीं बनी और न मां या चाची के लिए)।" इतना कहकर बिहारी जब लौटने लगा तो महेन्द्र ने उसे ज़बरदस्ती पकड़कर बिठा लिया।

बिहारी ने कहा, "घर का ठाठ तो वर्णन से परे हो रहा है-मां को बुलाने का क्या समय अभी नहीं हुआ?"

महेन्द्र ने कहा, "तुम भी खूब हो। हम लोग तो उनकी राह ही देख रहे हैं।"

बिहारी ने कहा, "यह बात उन्हें चिट्ठी लिखकर जता देने में बहुत कम समय लगेगा, किन्तु उनकी खुशी का ठिकाना न रहेगा। भाभी, इसके लिए तुम्हें महेन भइया को दो मिनट की छुट्टी देनी होगी, मेरी तुमसे इतनी-सी प्रार्थना है।"

आशा गुस्सा होकर चली गई। उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

१०

बिहारी ने खुद सामने बैठकर महेन्द्र से चिट्ठी लिखवा ली और उस चिट्ठी को लेकर दूसरे ही दिन वह राजलक्ष्मी को लिवाने चला गया। राजलक्ष्मी समझ गई कि यह चिट्ठी बिहारी खुद लिखा लाया है, किन्तु फिर भी उनसे रहा नहीं गया। वे

कलकत्ता चली आई और उनके साथ विनोदिनी भी आई।

राजलक्ष्मी ने कलकत्ता आकर अपने घर की जो बुरी हालत देखी, चारों तरफ गन्दा, मैला-कुचैला, सब कुछ उल्टा-पुलटा अव्यवस्थित, तो बहू के प्रति उनका मन और भी मानो टेढ़ा हो उठा।

किन्तु बहू का यह कैसा परिवर्तन! वह तो छाया की तरह सास का पीछा कर रही है। बगैर कहे ही वह सास के हर काम मे सहायता करने चली आती है। इससे कभी-कभी सास चंचल होकर कहने लगती हैं, "ठहरो-ठहरो, तुमसे न होगा। जिस काम को जानती नहीं उसमें क्यों फजूल हाथ डालती हो?"

आजकल दिन में अगर कभी महेन्द्र आशा को बुलाता है, तो आशा आने में संकोच करती है, किन्तु राजलक्ष्मी डांटकर कहतीं, "महेन बुला रहा है, कान से सुनाई नहीं देता क्या? ज़्यादा लाड़–प्यार से यही तो होता है। जाओ, साग–तरकारी पीछे बनाती रहना।"

फिर वही सलेट-पेन्सिल और 'चारुपाठ' का झूठा खेल। वही प्यार की बिना आधार की शिकायतें और परस्पर एक–दूसरे पर दोषारोपण। दोनों में से किस के प्रेम का वजन भारी है, इसपर बिना युक्ति के जोर का तर्क-वितर्क। वर्षा के दिन को रात और चाँदनी रात को दिन बना देना। श्रान्ति और दुख को हाथ की ताकत से ज़बरदस्ती हटा देने की कोशिश करना, और परस्पर ऐसा अभ्यास करना कि मिलन जब कि शिथिल मन को आनन्द नहीं दे रहा तब भी क्षण-भर के लिए मिलन-पाश से अलग होने से डरते हैं। सम्भोग-सुख राख से ढका हुआ है, किन्तु फिर भी अन्य काम में जाने को पांव नहीं उठते। भोग-सुख का यही तो भयानक अभिशाप है कि सुख अधिक दिन नहीं रहता, किन्तु बन्धन छेदा नहीं जा सकने वाला हो उठता है।

ऐसी स्थिति में एक दिन विनोदिनी आकर आशा के गले से लिपट गई और बोली, "बहन, तुम्हारा सुहाग बना रहे, पर मैं दुखिया हूं तो क्या मेरी तरफ तुम्हें एक बार आंख उठाकर देखना भी नहीं चाहिए?"

बचपन ही से माता-पिताहीन आशा को चाचा-चाची के घर पराई-सी बनकर रहना पड़ा था, इसलिए लोगों से मिलने–जुलने, बोलने–चालने में उसे एक तरह का भीतरी संकोच बना रहता था। वह डरती रहती कि शायद कोई उससे हेल मेल न करना चाहे, उपेक्षा से अनादर न कर बैठे। इसीसे विनोदिनी जब अपनी जुड़ी हुई भौंहें, तेज दृष्टि, गोल–मटोल सुन्दर मुंह और सुडौल यौवन लेकर इस घर में आई तब आशा को आगे बढ़कर उससे परिचय करने का साहस नहीं हुआ।

आशा ने देखा कि उसकी सास से विनोदिनी को ज़रा भी किसी तरह का संकोच नहीं। राजलक्ष्मी भी मानो खास तौर से आशा को दिखा–दिखाकर विनोदिनी को

मान देती रहती हैं और समय—असमय में आशा को सुना—सुनाकर विनोदिनी की उच्छ्वसित प्रशंसा करती रहती हैं। आशा ने यह देखा कि विनोदिनी घर—गृहस्थी के सब कामों में निपुण है, प्रभुत्व चलाना मानो उसके लिए बहुत आसान और स्वभाव के अनुसार है। दास-दासियों को काम में लगाने, डांटने—फटकारने और आदेश देने में उसे जरा भी संकोच नहीं। यह सब देख—भालकर आशा विनोदिनी के आगे अपने को बहुत छोटा समझने लगी।

उसी सारे गुणों से भरी-पूरी विनोदिनी ने जब स्वयं आगे आकर आशा से प्रेम की प्रार्थना की तब संकोच की बाधा से टकराकर ही उस बालिका का आनन्द चौगुना होकर उछल पड़ा और उसी क्षण जादूगर के जादू के पेड़ की तरह उन दोनों का प्रेम—बीज एक ही दिन में अंकुरित, पल्लवित और पुष्पित हो उठा।

आशा ने कहा, "आओ बहन, आज से हम—तुम दोनों सहेली हो जाएं। बताओ, अपने इस बहनापे का नाम क्या रखा जाए?"

विनोदिनी हंसती हुई बोली, "क्या रखोगी, तुम्ही बताओ।"

आशा ने 'गंगाजल', 'मौलसिरी' आदि बहुत—से अच्छे—अच्छे नाम बता दिए।

विनोदिनी ने कहा, "ये सब नाम तो अब पुराने पड़ गए हैं, अब इन प्यार के नामों की कोई कदर नहीं।

आशा ने कहा, "तो तुम्हीं बताओ, तुम्हे क्या पसन्द है?"

विनोदिनी ने हंसते हुए कहा, "आंख की किरकिरी।"

सुनने में मीठे नाम पर ही आशा का झुकाव था, किन्तु विनोदिनी की सलाह से उसे 'प्यार की गाली' को ही ग्रहण करना पड़ा। विनोदिनी ने आशा के गले में बांह डालकर कहा, "आंख की किरकिरी।" और फिर हंसते-हंसते वह लोटपोट हो गई।

११

आशा के लिए एक संगिनी की बड़ी ज़रुरत थी। प्रेम का उत्सव भी केवल दो आदमियों से सम्पन्न नहीं होता। सुख भरी बातचीत की मिठाई बांटने के लिए फालतू आदमी की भी ज़रुरत होती है।

भूखे दिल की विनोदिनी भी नववधू के नये प्रेम के इतिहास को उसी तरह कान फैलाकर पीने लगी, जिस तरह शराबी ज्वलामय शराब को हाथ बढ़ाकर पीता है। उसका मस्तिष्क मदहोश हो उठा और शरीर का रक्त जलने लगा।

दोपहर के सन्नाटे में जब मां सो जातीं, नौकर-चाकर नीचे विश्रामशाला में जाकर

आराम करते, महेन्द्र बिहारी की ताड़ना से कुछ देर के लिए कालेज चला जाता, और सूरज की किरणों से तपी हुई नीलाहट के शेष प्रान्त से चीलों का तेज गला किलकौर सी आवाज में थोड़ा बहुत कभी सुनाई देता रहता, तब आशा अपने सूने शयनागार में तकिये पर अपने खुले बाल फैलाकर नीचे के बिस्तर पर लेट जाती और विनोदिनी अपनी छाती के नीचे तकिया दबाकर औंधी पड़कर उसके मुंह से गुनगुन गूंजती हुई प्रेम-कहानी सुनने में लीन हो जाती। सुनते—सुनते उसके कान की लोएं लाल हो उठतीं और सांस ज़ोर-ज़ो से चलने लगती।

विनोदिनी खोद—विनोदकर प्रश्न पर प्रश्न करके छोटी से छोटी बात को बाहर निकाल लेती। एक बात को बार—बार सुनती, घटना समाप्त हो जाने पर कल्पना को उतार लाती। कहती, "अच्छा बहन, अगर ऐसा होता, तो क्या होता, अगर वैसा होता, तो तुम क्या करतीं?" इन सब असम्भावित कल्पनाओं के रास्ते आनन्द की बातों को बढ़ाते चले जाने में आशा को भी एक तरह का अनोखा आनन्द मिलता।

विनोदिनी कहती, "अच्छा, तू एक बात तो बता, 'किरकिरी', तेरा अगर बिहारी बाबू से ब्याह होता तो?"

आशा कहती, "नहीं बहन, ऐसी बात तुम न कहा करो। छी छी मुझे बड़ी शर्म मालूम होती है। हां, तुमसे अगर होता तो बड़ा अच्छा होता। तुम्हारे साथ भी तो ब्याह की बात चली थी।"

विनोदिनी कहती, "मेरे साथ तो बहुतों की बहुत बात चली थी। नहीं हुआ, सो अच्छा ही हुआ मैं जैसी हूं वैसी ही अच्छी हूं।"

तीसरे पहर विनोदिनी अपनी तरफ से चलाकर अपूर्व निपुणता के साथ आशा का जूड़ा बांध देती और सन्ध्या होते ही उसे खूब सजाकर पति—मिलन के लिए भेज देती। विनोदिनी की कल्पना मानो अवगुण्ठित होकर इस सजी—धजी वधू के पीछे—पीछे मुग्ध युवक के मिलन में सूने शयनागार में प्रवेश करती। किसी-किसी दिन तो आशा को वह जाने ही नहीं देती। कहती, "ओफ्, ज़रा बैठो भी तो। तुम्हारे प्रियतम कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं। वे तो जंगल के हिरन नहीं हैं, आंचल के पालतू हिरण हैं।" इस तरह अनेक दलों से वह आशा को रोक रखने की कोशिश करती।

महेन्द्र आशा से बहुत नाराज़ होकर कहता, "तुम्हारी सहेली तो जाने का नाम ही नहीं लेती, बात क्या है? वे देश कब जाएंगी?"

आशा बेचैन होकर कहती, "तुम नहीं जानते, तुम्हारी बातें सुनने का उसे कितना चाव है। वह कितने जतन से मुझे सजाकर तुम्हारे पास भेजती है।"

राजलक्ष्मी आशा को काम नहीं करने देती थीं। विनोदिनी ने बहू का पक्ष लेकर

उसे काम में लगाना शुरु कर दिया। विनोदिनी को ज़रा भी आलस नहीं, वह दिन–भर कुछ न कुछ करती ही रहती और आशा को भी छुट्टी नहीं देना चाहती। विनोदिनी एक के बाद एक काम का ऐसा सिलसिला लगाए रखती कि उसमें से आशा का निकल भागना मुश्किल हो जाता। फिर इस बात की कल्पना करके कि आशा के प्रीतम छत के कोने वाले सूने कमरे में अकेले बैठे मारे गुस्से के फड़फड़ा रहे होंगे, विनोदिनी मन ही मन तीव्र-कठोर हंसी हंसती रहती। आशा बेचैन होकर कहती, "अब मैं जाऊं, बहन किरकिरी वे गुस्सा हो रहे होंगे।"

विनोदिनी चट से कहती, "जरा ठहरो, इसे खतम कर जाओ अब ज्यादा देर नहीं होगी।"

थोड़ी देर बाद आशा फिर फड़फड़ाने लगती, कहती, "नहीं, बहन, अब वे सचमुच ही गुस्सा हो जाएंगे मुझे छोड़ दो, मैं जाऊं।"

विनोदिनी कहती, "होने दो न गुस्सा ज़रा नाराज हो जांएगे,तो क्या है? प्यार के साथ नाराजगी बिना मिले तो प्यार का ज़ायका भी नहीं मिलता। साग-तरकारी में नमक–मिर्च के बिना क्या मज़ा है। प्यार में भी चटपटे मसाले की ज़रुरत पड़ती है, समझी कुछ।"

किन्तु नमक-मिर्च का ज़ायका क्या है, सो तो विनोदिनी ही समझ रही थी, सिर्फ साथ में उसके तरकारी नहीं थी। उसकी नसों में मानो चिनगारियां–सी बरसने लगती हैं। विनोदिनी गहरी सांस ले–लेकर सोचा करती, 'ऐसी सुख की घर-गृहस्थी, ऐसे प्यार के पति। इस घर को तो मैं राजा का राज्य बना देती। ऐसे पति को तो मैं चरणों का दास बना रखती। मेरे रहते क्या इस घर की यह दशा होती? ऐसे आदमी का ऐसा हाल होने देती? मेरी जगह कहां तो एक दुधमुंही बच्ची को, खेल की गुड़िया को मिली है!' और इस भावनाओं के बहाव में सहसा वह आशा के गले से लगकर कहने लगती, "बहन किरकिरी, बताओ न बहन, कल तुमसे उनकी क्या-क्या बातें हुई थीं? मैंने जो तुम्हें सिखाया था, वैसा किया था? सच कहती हूँ, किरकिरी, तुम दोनों के प्यार की बातें सुनती हूं तो मेरी भूख-प्यास सब जाती रहती है।"

१२

महेन्द्र एक दिन नाराज़ होकर अपनी मां से बोला, "यह क्या अच्छी बात है, मां? पराये घर की किसी युवती विधवा को अपने घर लाकर रखने की क्या जरुरत? मेरी तो इसमें कतई मर्जी नहीं कौन जाने कब कौन-सा संकट आ खड़ा हो।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "है तो वो अपने विपिन की बहू। कोई गैर थोड़े ही है। मेरे

पास रहती है, तो क्या हो गया?"

महेन्द्र ने कहा, "नहीं, मां, अच्छा नहीं हो रहा। मेरे ख्याल से उसे यहां रखना उचित नहीं।"

राजलक्ष्मी खूब अच्छी तरह जानती हैं कि महेन्द्र की राय की उपेक्षा करना आसान नहीं। उन्होंने बिहारी को बुलाकर कहा, "बिहारी, तू एक बार महेन को समझा के कह तो सही कि विपिन की बहू के रहने से मुझे कितना आराम है। आखिर बुढ़ापे में मैं अकेली कितना करूंगी? तू तो जानता है, बेटा, वो गैर हो चाहे जो हो, अपनों से तो आज तक मुझे ऐसी सेवा कभी नहीं मिली।"

बिहारी राजलक्ष्मी की बात का कुछ जवाब न देकर सीधा महेन्द्र के पास पहुंचा, बोला, "महेन भइया, विनोदिनी के विषय में कुछ सोच रहे हो क्या?"

महेन्द्र ने हंसते हुए कहा, "सोचते—सोचते तो मुझे रात-भर नींद नहीं आती। अपनी भाभी से पूछ देखो, आजकल विनोदिनी के ध्यान में तो मेरे और सब ध्यान भंग हो रहे हैं।"

बिहारी ने कहा, "क्या कहते हो, दूसरे 'विषवृक्ष' की तैयारी तो नहीं?"

महेन्द्र ने कहा, "बात तो कुछ ऐसी ही है। अब उसे विदा करने के लिए चुन्नी के प्राण फड़फड़ा रहे हैं।" घूंघट के भीतर से फिर आशा की आंखों ने टेढे कटाक्ष से महेन्द्र को डांट दिया।

बिहारी ने कहा, "विदा कर दो तो फिर आने में क्या देर लगती है? विधवा का ब्याह कर दो न, ज़हर के दांत बिलकुल ही उखड़ जाएंगे।"

महेन्द्र बोला, "विषवृक्ष की कुन्द का भी तो ब्याह करा दिया गया था।"

बिहारी ने कहा, "खैर, इस उपमा को अभी रहने दो। विनोदिनी के विषय में मैं कभी-कभी सोचता हूं। तुम्हारे यहां तो वह हमेशा नहीं रह सकती और फिर देश में जैसा जंगल देख आया हूं, वहां भी तो सारी उम्र उसे वनवास में नहीं भेजा जा सकता इतना कठोर दण्ड सहा कैसे जाएगा।"

विनोदिनी अब तक महेन्द्र के सामने नहीं निकली थी, किन्तु बिहारी ने उसे देखा है। देखते ही समझ गया कि यह नारी जंगल में डाल रखने लायक नहीं, किन्तु एक ही आग की लौ घर के दीये में और तरह से जलती है और घर में आग दूसरी तरह से लगाती है, यह बात भी महेन्द्र ने सोची हो सो बात नहीं। महेन्द्र ने इस बात पर बिहारी की खिल्ली उड़ाई। बिहारी ने भी उसका जवाब दिया, किन्तु उसका मन समझ गया कि यह नारी खिलवाड़ की चीज नहीं और न इसकी उपेक्षा ही की जा सकती है।

राजलक्ष्मी ने विनोदिनी को होशियार कर दिया। उन्होंने कहा, "देखो बेटी, बहू से तुम जो इतना हेल मेल रखती हो, उसे अपने पास उलझाए रहती हो, ऐसा न

किया करो। तुम गांव की रहने वाली हो, आजकल का चाल—चलन तुम्हें नहीं मालूम। आखिर तुम खुद समझदार हो, सोच-समझकर चलना ही ठीक है।"

इसके बाद से विनोदिनी बड़े दिखावे के साथ आशा को अपने से दूर—दूर रखने लगी। कहती, "बहन, मैं इस घर की कौन हूं। मुझ जैसी गरीब को तो अपनी आबरू बचाकर चलना चाहिए, नहीं तो किस दिन क्या हो जाए, कौन कह सकता है।"

आशा बहुत रोई—धोई, बहुत गिड़गिड़ाई, मनाने की काफी कोशिश की, किन्तु दृढ़ प्रतिज्ञा किये हुए विनोदिनी टस से मस न हुई। मन में भरी बातों से आशा कण्ठ तक भर उठी, किन्तु विनोदिनी ने एक न सुनी।

इधर महेन्द्र का बांहों का घेरा धीरे—धीरे शिथिल होता आ रहा था और उसकी मुग्ध दृष्टि भी मानो थकान से घिरी, आ रही थी। पहले उसे जो अनियम और उच्छृंखलता कौतुकजनक मालूम होती थी, अब वह धीरे—धीरे उसे पीड़ा पहुंचाने लगी। आशा की सांसारिक अपटुता पर उसे क्षण-क्षण में गुस्सा आने लगा, किन्तु मुंह खोलकर कुछ कहता नहीं। उसके कुछ न कहने पर भी आशा भीतर ही भीतर महसूस करती रहती है कि निर्वाच्छिन्न मिलन में प्रेम की मर्यादा हलकी होती आ रही है। महेन्द्र के लाड़-प्यार में अब कुछ बेसुरापन आने लगा है कुछ तो झूठी ज़्यादती होती है और कुछ आत्म-प्रवंचना।

प्यार की तपी सुहाग—शय्या पर पड़े—पड़े बहुत दिन बाद अब महेन्द्र की ज़रा आंख खुली धीरे—धीरे उसने अपने काम—काज और पढ़ने—लिखने में ध्यान देते हुए मानो ज़रा सजग होकर करवट बदली। अपनी डाक्टरी किताबों का उसने तरह—तरह के असम्भव स्थानों से उद्धार किया, उनकी धूल झाड़ी और अचकन, पतलून वगैरह को धूप दिखाने की तैयारी करने लगा।

१३

आशा ने जब देखा कि विनोदिनी किसी भी तरह हाथ नहीं आ रही तो उसने एक नई चाल चली। उसने विनोदिनी से कहा, "बहन किरकिरी, तुम मेरे पति के आगे निकलतीं क्यों नहीं? दूर—दूर क्यों भागी—भागी फिरती हो?"

विनोदिनी ने अत्यन्त संक्षेप में,किन्तु तीखेपन के साथ उत्तर दिया, "छी।"

आशा ने कहा, "क्यों? मैंने तो मां से सुना है, तुम कोई गैर नहीं हो।"

विनोदिनी ने गम्भीर मुंह बनाकर कहा, "संसार में अपना—पराया कोई भी नहीं। जो अपना समझता है, वही अपना है और जो गैर समझता है वह अपना होने पर भी गैर है।"

उस दिन रात को आशा अपने पति से ज़िद कर बैठी, "मेरी किरकिरी के साथ तुम्हें बोलना ही होगा।"

महेन्द्र ने हंसते हुए कहा, "तुम्हारा साहस तो कम नहीं मालूम होता?"

आशा ने कहा, "क्यों, इसमें डर की क्या बात है?"

महेन्द्र ने कहा, "तुम अपनी सखी के रूप का जैसा वर्णन किया करती हो, उससे तो वह खतरे से खाली नहीं मालूम होती।"

आशा ने कहा, 'अच्छा मैं सब सम्हाल लूंगी। तुम अपना मज़ाक रहने दो। उससे बोलोगे या नहीं सो बताओ।"

महेन्द्र में विनोदिनी को देखने की कोई इच्छा न हो सो बात नहीं। यहां तक कि आजकल तो उसे देखने के लिए कभी–कभी उससे आग्रह भी होने लगता है, किन्तु इस तरह का अनावश्यक आग्रह उसे स्वंय उचित नहीं जंचता।.

दिल के सम्बन्ध के विषय में महेन्द्र का उचित–अनुचित आदर्श साधारण लोगों की उपेक्षा कुछ कड़ा था। पहले तो वह केवल इस डर से कि कहीं मां के अधिकार में कोई खामी न आ जाए, अपने विवाह का प्रसंग तक सुनने से घबराता था और आजकल आशा के साथ अपने सम्बन्ध की वह यहां तक रक्षा करना चाहता है कि अन्य स्त्री के प्रति मामूली इच्छा को भी अपने मन में स्थान देना अन्याय समझता है।

उसी महेन्द्र का मन आजकल बीच–बीच में जब अनिवार्य बेचैनी और इच्छा के साथ इस अजनबी के पीछे अपने–आप दौड़ने लगता है, तो वह स्वंय अपने आदर्श के सामने मारे संकोच और लज्जा के छोटा हो जाता है। इसका आखिर नतीजा यह हुआ कि उसमें एक तरह की झुंझलाहट पैदा हो गई और उसकी ताड़ना से विनोदिनी को वह घर से विदा कर देने के लिए मां के पीछे पड़ गया।

महेन्द्र ने आशा की बात का जवाब देते हुए कहा, "रहने दो, चुन्नी। तुम्हारी 'आंख की किरकिरी' से बात करने की मुझे न तो फुरसत है, न इच्छा है। पढ़ने के समय में डाक्टरी किताबें पढ़ता हूं और फुरसत के वक्त तुम हो इसमें अब तुम्हारी सखी के लिए गुंजाइश ही कहां है, जो तुम उसे लाना चाहती हो?"

आशा ने कहा, अच्छा अच्छा, मैं तुम्हारी पढ़ाई के समय पर ज़रा भी दखल नहीं जमाऊंगी। मैं अपने ही समय में से थोड़ा–सा 'किरकिरी' को दे दूंगी।'

महेन्द्र ने कहा, "तुम तो दे दोगी, पर मैं जो नहीं देना चाहता।"

आशा जो विनोदिनी को प्यार करती है, महेन्द्र का कहना है कि इससे उसके पति–प्रेम में गलती का ही सबूत मिलता है। महेन्द्र अहंकार के साथ कहता, 'मेरे समान किसी एक में रमा प्रेम तुम्हारा नहीं है।' आशा इस बात को कतई स्वीकार

नहीं करती, इसपर झगड़ती और रोती, क़िन्तु तर्क में जीत नहीं पाती।

महेन्द्र अपने दाम्पत्य-राज्य में विनोदिनी के लिए सूची में अगला स्थान भी नहीं देना चाहता। यह उसके लिए गर्व का विषय हो उठा। किन्तु महेन्द्र का यह गर्व आशा से सहा नहीं जाता, फिर भी आज उसने पराजय स्वीकार करते हुए कहा, "अच्छा तो ठीक है, मेरी ही खातिर तुम मेरी 'किरकिरी' से बोला करो।"

आशा के प्रति अपने प्रेम की दृढ़ता और श्रेष्ठता प्रमाणित करने के बाद महेन्द्र ने अन्त में अनुग्रहपूर्वक विनोदिनी से बोलना स्वीकार कर लिया, किन्तु इतना उसने पहले से कह रखा कि 'इसका मतलब यह नहीं कि तुम जब चाहो तब मुझे परेशान करती रहो।'

दूसरे दिन तड़के ही उठकर आशा दौड़ी–दौड़ी विनोदिनी के कमरे में पहुंची और सोती हुई विनोदिनी से लिपट गई। विनोदिनी ने चौंककर कहा, "यह क्या? आज यह क्या गज़ब हुआ, जो चकोरी आज चांद को छोड़कर बादल के दरबार में?"

आशा ने कहा, "तुम्हारी ये सब काव्य–कविता की बातें मुझे नहीं आतीं, बहन, क्यो फिजूल में घूरे में मोती बखेर रही हो जो तुम्हारी बात का जवाब दे सकता है, उसे जाकर सुनाओ न, तो देखूं।"

विनोदिनी ने कहा, "आखिर वो रस का रसिक है कौन?"

आशा ने कहा, "तुम्हारे देवरजी। नहीं, मज़ाक नहीं, वे तुमसे बोलने के लिए फड़फड़ा रहे हैं।"

विनोदिनी मन ही मन बोली, 'स्त्री के हुक्म से मेरी पुकार हुई है और मुझे ऐसा समझ लिया है कि मैं सुनते ही दौड़ जाऊंगी।' विनोदिनी किसी भी तरह राज़ी नहीं हुई। आशा को इससे पति के आगे नीचा देखना पडा।

महेन्द्र भीतर ही भीतर क्रुद्ध हो उठा। उसके आगे आने में दूसरी तरफ से आपत्ति। उसे औरों की तरह साधारण आदमी समझ लिया।

विनोदिनी ने भी दो दिन पहले क्रोध के साथ मन ही मन कहा था, 'इतने दिनों से मैं इस घर में हूं, महेन्द्र कभी मुझे देखने तक की कोशिश नहीं करता। जब मैं बुआजी के कमरे में रहती हूं तब किसी बहाने से वह मां के पास भी नहीं आता। आखिर इतनी उपेक्षा, इतनी उदासीनता क्यों? मैं क्या मनुष्य नहीं, मैं क्या नारी नहीं?

आशा ने पति के आगे प्रस्ताव रखा, "आंख की किरकिरी को मैं यह कहकर अपने कमरे में ले आऊंगी कि तुम कालेज चले गए हो, इस बीच में तुम बाहर से अचानक आ जाना-बस, फिर वह अपने-आप काबू हो जाएगी।"

महेन्द्र बोला, "आखिर किस कसूर पर बेचारी को ऐसी कड़ी सज़ा देना चाहती हो?"

आशा ने कहा, "नहीं, सचमुच ही मुझे उसपर बड़ा गुस्सा आ रहा है। तुमसे मिलने में भी उसे आपत्ति। उसकी प्रतिज्ञा मैं तोड़ूंगी, तब छोड़ूँगी।"

महेन्द्र ने कहा, "तुम्हारी प्रिय सखी को देखे बिना मैं मरा थोड़े ही जाता हूं। मैं इस तरह चोरी–चोरी नहीं देखना चाहता।"

आशा बड़े विनय के साथ महेन्द्र का हाथ पकड़कर बोली, "तुम्हें मेरे गले की सौगन्ध एक दफे तुम्हें मेरी बात माननी ही पड़ेगी। जैसे भी हो, एक बार उसका घमण्ड चूर करना ही है, फिर तुम्हारी तबीयत आए सो करना।"

महेन्द्र ने कुछ जवाब नहीं दिया। उसे चुप देखकर आशा ने कहा, "तुम्हें मेरे प्यार की कसम मेरे प्यारे हो न? मेरी बात नहीं रखोगे?"

महेन्द्र की भीतरी इच्छा लगातार तेज होती जा रही थी। इसीलिए उसने ज़रूरत से ज़्यादा उदासीनता दिखाते हुए मुश्किल से अपनी सम्मति दे दी।

सर्दियों के मौसम की एक सुनसान दोपहर में विनोदिनी महेन्द्र के सूने कमरे में बैठी आशा को कारपेट कर कढ़ाई का काम सिखा रही थी। इतने में चुपके से दबे पांव विनोदिनी के पीछे दरवाज़े के पास महेन्द्र आकर खड़ा हो गया। आशा कारपेट से निगाह न हटाकर धीरे–धीरे हंसने लगी।

विनोदिनी बोली, "अचानक हंसी की कौन–सी बात याद आ गई?" विनोदिनी पहले से ही सब समझ रही थी। आशा की शरारत और हाव–भाव से ही उसने ताड लिया था कि कौन पीछे आकर चुपचाप खड़ा हुआ हैं। उससे कोई बात छिपी नहीं थी, फिर भी निहायत सरल और निरीह बनकर जान–बूझकर उसने आशा के इस बहुत ही झीने जाल में अपने को फंसा दिया।

महेन्द्र ने भीतर घुसकर कहा, "हंसी का कारण जानने से मैं ही अभागा क्यों वंचित रह जाऊं?"

विनोदिनी चौंककर माथे का पल्ला सम्हालती हुई उठना ही चाहती थी कि आशा ने उसका हाथ पकड़ लिया।

महेन्द्र ने हंसते हुए कहा "या तो आप बैठिए, मैं जाता हूं या फिर आप भी बैठिए, मैं भी बैठता हूं।"

विनोदिनी ने सहज–स्वाभाविक सुर में ही कहा, "सिर्फ आपके अनुरोध से ही बैठती हूं, पर मन ही मन आप मुझे शाप न दीजिएगा।"

महेन्द्र ने कहा, "पर ऐसा शाप तो मैं जरूर दूंगा कि आपमें बहुत देर तक चलने की शक्ति न रहे।"

विनोदिनी ने कहा, "उस शाप से मैं नहीं डरती। कारण, आपकी 'बहुत देर' बहुत ज्यादा देर नहीं होगी। अब तक तो शायद उतनी देर हो भी चुकी होगी।" इतना कहकर उसने फिर उठने की कोशिश की, किन्तु आशा ने उसका फिर हाथ पकड लिया, बोली, "तुम्हें मेरी सौगन्ध है, किरकिरी, बैठो ज़रा।"

आशा ने महेन्द्र से पूछा, "सच–सच बताना, मेरी 'किर्रकिरी तुम्हें कैसी लगी?"

महेन्द्र ने कहा, "बुरी नहीं लगी।"

आशा ने बड़े खिन्न होकर कहा, "तुम्हें तो कोई पसन्द ही नहीं आती।"

महेन्द्र ने कहा, "सिर्फ 'एक'को छोड़कर।"

आशा ने कहा, "अच्छा उससे ज़रा और बातें होने दो अच्छी तरह, फिर देखूंगी पसन्द आती है या नहीं।"

महेन्द्र ने कहा, "अब फिर बातें। तो अब शायद आगे के लिए यह सिलसिला जारी हो गया।"

महेन्द्र मन ही मन समझता था कि विनोदिनी अब बराबर किसी न किसी बहाने उसके सामने आएगी ही। गलत समझता था बेचारा। विनोदिनी उसके आसपास भी नहीं फटकती और न कभी कहीं अचानक जाते-आते में ही दिखाई देती है।

महेन्द्र इस डर से कि कहीं उसकी तरफ से कुछ बेचैनी न प्रगट हो जाए, स्त्री के आगे विनोदिनी का प्रंसग तक नहीं छेड़ सकता। बीच–बीच में विनोदिनी का संग पाने के लिए अपनी स्वाभाविक और साधारण इच्छा को छिपाने और दमन करने में महेन्द्र की बेचैनी लगातार बढ़ती ही जाती है। उसपर विनोदिनी के उपेक्षा–भाव ने उसे और भी उत्तेजित कर दिया।

विनोदिनी से भेंट होने के दूसरे दिन महेन्द्र ने प्रंसगवश हंसी–हंसी में आशा से पूछा था, "अच्छा, तुम्हारा अयोग्य पति तुम्हारी 'आंख की किर्रकिरी' को कैसा लगा?"

आशा बड़ी मुश्किल में पड़ गई। 'किर्रकिरी' ने तो इस विषय में कोई बात ही नहीं कही। इससे अपनी सखी पर उसे बहुत झुंझलाहट भी आई थी। आशा ने पति से कहा, "ठहरो, पहले दो–चार दिन मिलने जुलने तो दो, तब तो कहेगी। कल का मिलाप था ही कितनी देर का और बात ही क्या हुई थी।"

इससे भी महेन्द्र कुछ निराश हुआ और विनोदिनी के सम्बन्ध में अनमनापन दिखाना उसके लिए और भी मुश्किल हो गया।

अचानक महेन्द्र को फोटोग्राफी सीखने का शौक चर्रा उठा। पहले उसने एक बार फोटोग्राफी सीखना शुरु करके छोड़ दिया था। अब फिर कैमरे की मरम्मत कराके फोटो उतारना शुरू कर दिया। घर के नौकर–चाकर तक सबकी तस्वीरें खींचने लगा वह।

आशा ज़िद कर बैठी, "तुम्हें 'किर्रकिरी' की भी तस्वीरें खींचनी होगी।"

महेन्द्र ने बहुत संक्षेप में कह दिया, "अच्छा।"

किन्तु 'किरकिरी' ने उससे भी संक्षेप में कह दिया, "ना।"

आशा को फिर एक करतब करना पड़ा। वह शुरु से ही विनोदिनी से छिपा न रहा। तय हुआ कि दोपहर को उसे वह अपने कमरे में ले आएगी और वहीं किसी तरह सुला लेगी, फिर महेन्द्र चुपके से आकर उसी हालत में उसकी तस्वीर उतार लेगा। उस तरह आशा अपनी जिद्दी सहेली की सारी हेकड़ी धूल में मिला देगी।

आश्चर्य की बात तो यह है कि विनोदिनी कभी दिन में सोती नहीं, किन्तु आशा के कमरे में आकर उस दिन उसकी आंखों में नींद भर आई। बदन पर एक लाल दुशाला डालकर खुली खिड़की की तरफ मुंह करके वह हाथों पर सिर रखकर सो गई।

महेन्द्र ने दबे पांव चुपके से कैमरा निकाल लिया। किस तरफ से फोटो लेने से अच्छा होगा, यह तय करने के लिए पहले तो वह चारों तरफ से बहुत देर तक उसे अच्छी तरह देखता रहा फिर आर्ट के लिहाज से उसे दबे पांव सिरहाने के पास जाकर उसके खुले हुए बालों को ज़रा इधर–उधर कर देना पड़ा पसन्द न आने पर फिर उसमें सुधार कर लेना पड़ा।

अन्त में फोटो उतारने के लिए महेन्द्र ने ज्योंही कैमरे में कांच डाला त्योंही मानो किसी शब्द से विनोदिनी जागकर हिल उठी और एक लम्बी सांस लेकर भड़भडाकर उठ बैठी। आशा जोर से हंस पड़ी। विनोदिनी बहुत नाराज हुई और अपने चमकते हुए नयनों से महेन्द्र पर अग्निबाण बरसाती हुई बोली, "यह आपका बड़ा अन्याय है!"

महेन्द्र ने कहा, "अन्याय है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु चोरी भी की और चोरी का माल भी हाथ न आया 'गुनाह और बेलज़्जत' होने से मेरा तो इहलोक और परलोक दोनों ही बिगड़ गए। लिहाज़ा अन्याय को पूरा कर लेने दीजिए, फिर जो चाहें सो दण्ड दे सकती हैं।"

आशा भी विनोदिनी के पीछे पड़ गई। तस्वीर उतारी गई, किन्तु पहली तस्वीर खराब हो गई। लिहाजा, छायाकार को दूसरे दिन और एक तस्वीर बगैर उतारे चैन नहीं पड़ा। उसके बाद दोनों सखियों को एकसाथ बैठकर सखीत्व की यादगार के लिए और एक फोटो उतरवाने में विनोदिनी 'ना' नहीं कह सकी। बोली, "लेकिन यही आखिरी फोटो है।"

सुनते ही महेन्द्र ने उस प्लेट को बिगाड़ दिया और इस प्रकार कई बार फोटो खींचते-खिचवाते मेल-मिलाप बहुत दूर तक बढ़ गया।

बाहर से हिलाते-डुलाते रहने से राख में दबी आग फिर से धधक उठती है। नव–दम्पति का प्रेमोत्साह इधर जो कुछ थोड़ा–बहुत हलका होता आ रहा था, तीसरे पक्ष की चोट खा–खाकर वह फिर जाग उठा।

आशा में हास्यालाप करने की शक्ति नहीं थी, किन्तु विनोदिनी इस दिशा में उसे काफी खुराक दे सकती थी इसलिए विनोदिनी के अन्तराल में आशा को एक ज़बरदस्त सहारा मिल गया। महेन्द्र को हर वक्त हंसी मजाक की उत्तेजना से ताज़ा बनाए रखने में आशा को अब विशेष मेहनत नहीं करनी पड़ती।

अब उसे अपनी तरफ से कोशिश करने की जरूरत नहीं रही। महेन्द्र और विनोदिनी दोनों जब हंसी–मजाक करते, आशा तब उनकी हंसी में शरीक हो जाती और जी खोलकर हंसती रहती। ताश के खेल में महेन्द्र जब आशा को बुरी तरह धोखा देता, तब वह विनोदिनी को पंच मानकर रुआंसी हो अभियोग लगाया करती और महेन्द्र जब आशा से कोई मज़ाक या गलत बात कर बैठता, तो आशा इसी भरोसे में रहती कि विनोदिनी उसकी तरफ से समुचित उत्तर देकर उसकी बात रख ले। इस तरह इन तीनों की सभा रोज जमने लगी।

किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि विनोदिनी के काम में किसी तरह की कमी आ गई हो। रसोई–पानी, घर का और सब काम–काज, राजलक्ष्मी की सेवा सब कुछ पूरी तरह कर चुकने के बाद तब कहीं वह इस हंसी–मजाक में शामिल होती थी।

महेन्द्र अस्थिर होकर कहता, "नौकर–नौकरानियों से काम न लेकर तुम उन्हें मिट्टी कर दोगी मालूम होता है।"

विनोदिनी कहती, "काम न करके खुद मिट्टी होने की अपेक्षा यह अच्छा है। जाओ, तुम कालेज जाओ।"

महेन्द्र कहता, "आज बादल भरे दिन।"

विनोदिनी कहती, "सो नहीं होगा, गाड़ी तैयार है, तुम्हें जाना ही होगा।"

महेन्द्र कहता, "मैने तो गाड़ी की मनाही कर दी थी।"

"मैंने कह दिया था।" कहती हुई विनोदिनी महेन्द्र के कालेज जाने के कपड़े उठा लाती।

महेन्द्र कहता, "तुम्हें तो राजपूतों के घर जन्म लेना था। युद्ध–यात्रा के समय पति को अपने हाथ से कवच पहनाकर विदा करतीं।"

हंसी–दिल्लगी के लालच में कालेज से छुट्टी ले लेना या पढ़ने से जी चुराना विनोदिनी को कतई बर्दाशत न था, इन सब बातों में वह कभी भी शह नहीं देती।

उसके सख्त शासन से दिन–दोपहर का मनोरंजन बिल्कुल उठ गया। इस तरह सायकाल का अवकाश महेन्द्र के लिए बेहद खूबसूरत और चाव भरा हो उठा। उसका दिन मानो अपनी समाप्ति के लिए प्रतीक्षा–सा करता रहता।

पहले कभी–कभी ठीक समय पर रसोई नहीं बनती थी इस बहाने से महेन्द्र बडे मजे से कालेज जाने से रुक जाता था, किन्तु अब विनोदिनी खुद व्यवस्था करके महेन्द्र के लिए कालेज के समय से बहुत पहले ही रसोई तैयार करा देती है और ज्योंही वह खा चुकता त्योंही उसके पास खबर पहुंचती कि 'गाड़ी तैयार है।' पहले उसके कपड़ो का यह हाल था कि कौन–सा धोबी के यहां गया है और कौन–सा किस आलमारी के किस कोने में पड़ा है, बहुत देर तक इस बात का पता ही न लगता था। अब सब कपड़े बाकायदा तैयार मिलते हैं। किसी में ज़रा सिकुड़न तक देखने को नहीं मिलती। अचकन का कोई बटन टूट गया है, आशा से कुछ करते नहीं बन रहा। विनोदिनी जल्दी से आकर हैरान आशा के हाथ से अचकन छीनकर चट से उसमें बटन टांक देती।

इस तरह महेन्द्र खाने–पीने में, पहनने–ओढ़ने में, काम और आराम में सब जगह ही तरह–तरह से विनोदिनी के हाथ की सेवा का अनुभव करने लगा।

बिहारी का आजकल पहले जैसा आदर नहीं रहा। उसे अब कोई बुलाता ही नहीं। बिहारी ने महेन्द्र को लिख भेजा था कि 'कल रविवार है, दोपहर को आकर मां के हाथ की रसोई खाऊंगा।' महेन्द्र ने देखा कि रविवार बिल्कुल मिट्टी हो जाएगा। उसने चट से लिख भेजा, 'रविवार को एक खास काम से मुझे बाहर जाना है।'

फिर भी बिहारी खाने–पीने के बाद एक बार महेन्द्र के घर की खबर लेने चला आया। नौकर से पता चला कि महेन्द्र घर में ही है, बाहर नहीं गया। जीने से ही 'महेन भइया' पुकारता हुआ वह महेन्द्र के कमरे में पहुंच गया। महेन्द्र झेंप गया, बोला, "सिर में बड़े जोर का दर्द हो रहा है।" और तकिये के सहारे लेट गया। आशा इस बात को सुनकर और महेन्द्र के चेहरे पर बेचैनी का भाव देखकर घबरा उठी। सोचने लगी, क्या करना चाहिए और कर्तव्य के निर्णय के लिए विनोदिनी का मुंह ताकने लगी।

विनोदिनी अच्छी तरह जानती थी कि मामला परेशानी वाला नहीं है, फिर भी बहुत बेचैन होकर बोली, "बहुत देर से बैठे हो, ज़रा सो जाओ। मैं 'यूडिकोलोन' लिए आती हूं।"

महेन्द्र ने कहा, "रहने दो, जरूरत नहीं।"

विनोदिनी नहीं मानी, वह जल्दी से जाकर 'यूडिकोलोन' और बरफ–पानी मिलाकर ले आई और आशा के हाथ में भीगा हुआ रुमाल थमाती हुई बोली, "लो

महेन्द्र बाबू के माथे से बांध दो।'

महेन्द्र बार–बार कहता रहा, 'रहने दो न। रहने दो न।' और बिहारी किसी तरह हंसी रोककर चुपचाप बैठा अभिनय देखने लगा। महेन्द्र गर्व के साथ सोचने लगा, 'बिहारी ज़रा देखे तो मेरी कितनी कद्र है।'

आशा बिहारी के सामने शर्म से कांपते हाथों से अच्छी तरह पट्टी नहीं रख सकी। यूडिकोलोन की बूंद लुढ़ककर महेन्द्र की आंख में गिर पड़ी। विनोदिनी ने आशा के हाथ से रुमाल छीनकर अपने निपुण हाथों सें सावधानी से पट्टी बांध दी और दूसरा एक कपडा यूडिकोलोन के पानी में भिगोकर थोड़ा–थोड़ा पट्टी पर निचोड़ दिया और आशा घूंघट को और जरा नीचा करके पंखे से हवा करने लगी।

विनोदिनी ने भीगे गले से पूछा, "कुछ आराम मिल रहा है?"

बिहारी ने हंसते हुए कहा, "विनोदा भाभी, इस तरह की सेवा-टहल मिलती रही तो रोग घटेगा नहीं, बल्कि बढ़ने की ही ज़्यादा सम्भावना है।

विनोदिनी ने कहा,"सो भला हम मूरख स्त्रियां क्या जानें? आप लोगों के डाक्टरी शास्त्र में शायद ऐसा ही लिखा होगा।"

बिहारी ने कहा, "हां सो तो है ही। सेवा देखकर मेरे सिर में भी दर्द शुरु हो रहा है, लेकिन मेरे जैसे जले–भुने माथे को बिना इलाज के चटपट अच्छा हो जाना पडता है। महेन भइया के माथे में जोर ज्यादा है।"

विनोदिनी ने भीगी हुई पट्टी उतारते हुए कहा, "जरुरत क्या है मुझे, मित्र का इलाज मित्र ही करें।"

बिहारी कुछ तेज स्वर में बोल उठा, "ठीक बात है। मित्र का इलाज मित्र ही करेगा। मैं ही सिर-दर्द लाया था, मैं ही उसे साथ लेता जाऊंगा। यूडिकोलोन' का अब फिजूल खर्च मत कीजिए।" और फिर आशा की ओर देखकर बोला, "भाभी, इलाज करके बीमारी अच्छी करने की अपेक्षा बीमारी न होने देनी ही अच्छा है।"

१६

बिहारी ने सोचा, 'अब दूर रहने से काम नहीं चलेगा। जैसे भी हो, इनके बीच में मुझे भी एक स्थान लेना पड़ेगा। इनमे से कोई भी मुझे नहीं चाहेगा, किन्तु फिर भी मुझे रहना ही पड़ेगा।'

बिहारी आह्वान–अभ्यर्थना की परवाह किए बिना ही महेन्द्र के व्यूह में प्रवेश करने लगा। एक दिन विनोदिनी से बोला, "देखो विनोदा भाभी, इस लड़के को पहले तो इसकी मां ने मिट्टी किया, फिर मित्र ने किया, अब स्त्री मिट्टी कर रही है।

कम से कम तुम तो उस गुट में न मिलकर कोई नया रास्ता दिखाओं, दुहाई है तुम्हें।"

महेन्द्र ने कहा, "मतलब?"

बिहारी ने कहा, "मतलब यह कि मुझ जैसे आदमी को, जिसे कोई कभी पूछता तक नहीं।"

महेन्द्र बीच में ही बोल उठा, "उसे भले ही मिट्टी कर दो। अरे, मिट्टी होने की उम्मेदवारी इतनी आसान नहीं भई, इतनी आसान नहीं। दरखास्त पेश कर देने से ही काम नहीं बन जाता।"

विनोदिनी ने हंसते हुए कहा, "मिट्टी होने लायक शक्ति भी तो होनी चाहिए, बिहारी ने कहा, "शक्ति तो भाभीजी, अपने गुण से न हो तो और किसी के हाथ के गुण से भी आ जाती है। एक बार शह देकर आजमाना चाहो तो आजमा सकती हो बन्दा तैयार है।"

विनोदिनी ने कहा, "पहले से तैयार होकर आने से कुछ नहीं होता, बिहारी बाबू, इसमें सावधान रहना पड़ता है। क्यों बहन किरकिरी, ठीक है न? अपने इन देवर का भार तुम्हीं ले लो न, बहन, अपने ऊपर।"

आशा ने उसे उंगलियों से धक्का देकर ज़रा धकेल दिया। और बिहारी ने भी इस मज़ाक में भाग नहीं लिया। आशा के सम्बन्ध में कोई भी हंसी—मज़ाक बिहारी को सहन नहीं होगा, इतना विनोदिनी जानती थी किन्तु बिहारी आशा का आदर करता है और विनोदिनी को हलका करना चाहता है, यह बात विनोदिनी के चुभ गई। उसने फिर आशा से कहा, "तुम्हारा यह भिखारी देवर मेरी आड़ में तुम्हीं से कुछ चाहता है। कुछ दे भी दो किरकिरी।"

आशा बहुत ही झुंझला उठी। क्षण—भर के लिए बिहारी का चेहरा सुर्ख हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण उसने मुस्कराते हुए कहा, "यह खूब रहा, मेरी पारी आती है, तो दूसरों पर टाल दी जाती है और महेन भइया के साथ हाथोंहाथ नगद कारोबार, क्यों?"

महेन्द्र को भी झुंझलाहट आ गई। उसने ज़रा कुछ तेज स्वर में ही कहा, "बिहारी, तुम्हारे महेन भइया और किसी कारोबार में नहीं पड़ता, जो उनके हाथ में है, उसी में वे सन्तुष्ट हैं।'"

बिहारी ने कहा, "हो सकता है वे अपने—आप न पड़ते हों, किन्तु भाग्य में लिखा रहता है, तो कारोबार की लहर बाहर से आकर भी लगती है।"

विनोदिनी कह उठी, "फिलहाल आपके हाथ में तो कुछ भी नहीं फिर आपकी लहर किधर से आ रही है?" इतना कहकर उसने कटाक्ष के साथ हंसकर आशा की बांह मसक दी। आशा झुंझलाकर उठके चल दी। बिहारी हार कर मारे क्रोध

के चुप रह गया और ज्योंही उठकर जाने को हुआ, विनोदिनी चट से कह बैठी "आप ऐसे हताश होकर न जाइए, बिहारी बाबू, मैं किरकिरी को अभी भेज देती हूं।

विनोदिनी के चले जाते ही सभा भंग होने के रंज से महेन्द्र भीतर ही भीतर बहुत झुंझला उठा। उसका अप्रसन्न चेहरा देखकर बिहारी का रुका हआ आवेग उच्छ्वसित हो उठा। उसने कहा, "महेन भइया, तुम अपना सर्वनाश करना चाहो, करो, तुम्हारी हमेशा की आदत पड़ी हुइ है, किन्तु जो सरलहृदया साध्वी तुमपर एकान्त भरोसे के साथ निर्भर है, उसका सर्वनाश मत करो।" कहते—कहते बिहारी का कण्ठ रुक आया।

महेन्द्र भीतरी क्रोध को रोकता हुआ बोला, "सुनो बिहारी, तुम्हारी ये सब बातें मेरी समझ में नहीं आ-रही है। पहेलियां छोड़कर तुम साफ—साफ कहो, क्या कहना चाहते हो?"

बिहारी बोला, "अच्छा तो साफ—साफ ही कहूंगा। विनोदिनी तुम्हें जान-बूझकर अधर्म की ओर खींच रही है और तुम बिना सोचे—समझे मूर्ख की तरह उधर पैर बढ़ाते चले जा रहे हो।"

महेन्द्र गरज उठा, "बिलकुल झूठ बात है। अगर तुम किसी भले घर ही बहू-बेटी को इस तरह सन्देह की दृष्टि से देखते हो तो घर भीतर तुम्हारा आना ही उचित नहीं।"

इतने में एक थाली में कई तरह की मिठाइयां लिए मुस्काराती हुई विनोदिनी ने प्रवेश किया और थाली बिहारी के सामने रख दी। बिहारी कह उठा, "यह क्या। मुझे बिल्कुल भूख नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "यह कैसे हो सकता है? आपको जरा मुंह मीठा करके ही जाना होगा।"

बिहारी ने हंसते हुए कहा, मेरी दरखास्त मंजूर हो गई मालूम होता है। सत्कार शुरु हो गया।"

विनोदिनी बहुत ही दबी हंसी हंसकर बोली, "आप जबकि देवर ठहरे, तो नाते का ज़ोर तो है ही। जहां ज़ोर चल सकता है वहां भीख मांगने की क्या ज़रुरत है? आप तो आदर-लाड़ छीनके भी ले सकते हैं। क्यों, महेन्द्र बाबू ठीक है न?"

महेन्द्र बाबू के मुंह से तब मारे क्रोध के बात ही नहीं निकल रही थी। विनोदिनी बोली, "क्यों बिहारी बाबू, आप शरमाकर नहीं खा रहे हैं या गुस्सा में? और किसी को बुलाना पड़ेगा क्या?"

बिहारी ने कहा, "कोई ज़रुरत नहीं। जो मिला है मुझे, वही काफी है मेरे लिए।"

विनोदिनी ने कहा, "फिर मज़ाक में तो आपसे जीतना ही मुश्किल है। मिठाई देने पर भी मुंह बन्द नहीं होता।"

रात को आशा ने महेन्द्र के आगे बिहारी के प्रति अपनी नाराज़गी प्रकट की और महेन्द्र ने और– दिन की तरह उसे हंसी में उडा नहीं दिया, उसमें पूरी तरह भाग लिया।

सवेरे उठते ही महेन्द्र बिहारी के घर पहुंचा। बोला, "बिहारी, हज़ार हो, विनोदिनी अपने घर की स्त्री नहीं, तुम सामने पड़ते हो, तो उसे कुछ बुरा–सा लगता है।"

बिहारी ने कहा, "अच्छा, यह बात है क्या? तब तो मैंने अच्छा नहीं किया। उन्हें अगर आपत्ति है, तो मुझे क्या गर्ज अटकी है कि मैं उनके सामने जाऊं।"

महेन्द्र निश्चिन्त हुआ। इतनी आसानी से इतना अप्रिय कार्य पूरा हो जाएगा, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

उसी दिन बिहारी महेन्द्र के घर के भीतर पहुंचा और विनोदिनी से कहने लगा, "विनोदा भाभी, मुझे क्षमा कीजिएगा।"

विनोदिनी बोली, "क्यों बिहारी बाबू, आज क्या बात है?"

बिहारी ने कहा, "महेन्द्र से सुना है कि घर के भीतर आकर मैं आपके सामने आता हूं, इससे आप नाराज़ होती है, इसीसे क्षमा मांगकर आपसे मैं विदा लेना चाहता हूं।"

विनोदिनी ने कहा, "भला यह कैसे हो सकता है, बिहारी बाबू मैं आज हूं, कल नहीं रहूंगी, मेरे लिए आप क्यों विदा लेने लगे? यदि मैं यह जानती कि यहां आने से इतना बखेड़ा उठ खड़ा होगा, तो आती ही नहीं।" कहते–कहते विनोदिनी का चेहरा उतर गया और वह आंसू रोकने के लिए तुरन्त वहां से चली गई।

बिहारी क्षण–भर के लिए यह सोचकर दुःखित हुआ कि 'झूठा सन्देह करके मैंने विनोदिनी को बेकार ही ठेस पहुंचाई।'

उस दिन शाम को राजलक्ष्मी मुसीबत की मारी–सी आकर बेटे से बोलीं, "महेन, विपिन की बहू तो देश जाने के लिए ज़िद कर रही है।"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों, मां यहां उन्हें क्या कोई तकलीफ है?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तकलीफ कुछ नहीं। उसका कहना है कि ऐसी उम्र में विधवा बहू–बेटी का पराये घर ज़्यादा दिन टिका रहना ठीक नहीं, लोकनिन्दा का डर है।"

महेन्द्र ने नाराज़ होकर कहा, "अब यह 'पराया घर' हो गया।"

पति–पत्नी दोनों विनोदिनी से रूठ गए। एक ने कहा, "हमें तुम गैर समझती हो, बहन?" दूसरे ने कहा, "अब यह 'पराया घर' हो गया।"

विनोदिनी ने कहा, "मुझे क्या तुम लोग हमेशा ही बांध रखोगे?"

आशा ने कहा, "जाना ही था तो इस तरह हम लोगों से मोह क्यों जोड़ा था, सहेली इसीलिए बनी थीं क्या?"

उस दिन कुछ भी निर्णय नहीं हुआ।

दूसरे दिन बिहारी ने आकर कहा, "विनोदा भाभी, जाने की बात क्यों सोच रही हो? कोई कसूर बन पड़ा है क्या?"

विनोदिनी ने मुंह फेरकर कहा, "कसूर आप क्यों करने लगे कसूर तो मेरी तकदीर का है।"

बिहारी ने कहा, "आप अगर चली जाएंगी, तो मुझे बराबर यही ख्याल आता रहेगा कि आप मुझ ही पर नाराज होकर चली गई है।"

विनोदिनी ने अपनी भीगी नज़र से बिहारी के मुंह की तरफ देखकर कहा, "मेरा रहना क्या उचित है, आप ही बताइए न?"

बिहारी ने कहा, "आखिर जाना तो आपको पड़ेगा ही मेरा कहना था कि कुछ दिन और रह जांए तो हर्ज क्या है।"

आशा एक कोने में घूंघट काढ़े बैठी थी, वह आंचल से बार–बार अपनी आंखे पोंछने लगी। इसके बाद फिर विनोदिनी ने जाने की बात नहीं चलाई।

१७

बीच की इस गड़बड़ी को बिल्कुल पोंछकर मिटा देने के लिए महेन्द्र ने प्रस्ताव किया, "अगले रविवार को दमदम के बगीचे में 'पिकनिक' करने चला जाए।"

आशा बहुत उत्साहित हो उठी, किन्तु विनोदिनी किसी भी तरह राज़ी नहीं हुई। विनोदिनी की इस आपत्ति पर महेन्द्र और आशा दोनों मुरझा-से गए। उन लोगों ने समझा, विनोदिनी आजकल उनसे दूर–दूर रहना चाहती है।

शाम को बिहारी के आते ही विनोदिनी ने उससे कहा, "देखिए तो बिहारी बाबू, महेन्द्र बाबू दमदम के बगीचे मे 'पिकनिक' करने जाएंगे, उसमें मैं साथ नहीं जाना चाहती, सो दोनों के दोनों आज सवेरे से मुझसे मुंह फुलाए बैठे हैं।"

बिहारी ने कहा, "मुंह फुलाना बेजा तो नहीं मालूम होता। आप नहीं जाएगी, तो इनकी 'पिकनिक' में ऐसा काण्ड होगा, जो दुश्मन के भी न हो।"

विनोदिनी ने कहा, "तो फिर आप भी चलिए। आप चलें, तो मैं भी चलने को तैयार हूं।"

बिहारी ने कहा, अच्छी बात है, किन्तु 'कर्ता' के पीछे 'कर्म' होता है, घर के कर्ता की क्या राय है?"

महेन्द्र ने कहा, "अच्छा रहेगा, लेकिन बिहारी, तुम जहाँ भी जाते हो वहां कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा किए बैगर नहीं मानते।"

बिहारी महेन्द्र की भीतरी अनिच्छा को समझकर मन ही मन हंसने लगा, बोला, "यही तो संसार का मज़ा है। क्या से क्या हो जाता है और कब कहां कौन–सा बखेड़ा उठ खड़ा होता है, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। अच्छा तो विनोदा भाभी, खूब सवेरे ही चलना होगा मैं ठीक समय पर आ जाऊंगा।"

रविवार को सवेरे ही सामान और नौकर–चौकर के लिए एक थर्ड क्लास और मालिकों के लिए एक सेकण्ड क्लास किराये की घोड़ा गाड़ी लाई गई। बिहारी भी बड़ा–सा एक पैक–बक्स साथ लिए ठीक समय पर आ गया। महेन्द्र ने कहा, तुम क्या ले आए? सामान गाड़ी में तो यह समाएगा नहीं।'

बिहारी ने कहा, "चिन्ता न करो, भाई साहब, मैं अभी सब ठीक किए देता हूं।"

विनोदिनी और आशा गाड़ी में बैठ गई। अब महेन्द्र को चिन्ता हुई कि बिहारी को कहां बिठाया जाए। वह बगलें झांकने लगा।

इतने में बिहारी ने अपनी पेटी गाड़ी की छत पर लाद दी और चट से वह कोच बक्स पर बैठ गया।

महेन्द्र के लिए यह 'जान बची और लाखों पाए' साबित हुआ। वह सोच रहा था, 'बिहारी भीतर बैठेगा या क्या करेगा, कोई ठीक नहीं।'

विनोदिनी घबराहट के साथ कहने लगी, "बिहारी बाबू, आप कहीं गिर तो नहीं जाइएगा?"

बिहारी ने कहा, "आप निश्चिन्त रहिए, डरिए नहीं, गिरना और बेहोशी दोनों ही मेरी जन्मपत्री में नहीं हैं।"

गाड़ी चलते ही महेन्द्र ने कहा, "न हो तो मैं ही ऊपर जाकर बैंठू बिहारी को भीतर भेज दू?"

आशा ने घबराकर उसकी चादर पकड़ते हुए कहा, "नहीं–नहीं, तुम नहीं जा सकते।"

विनोदिनी ने कहा, "आपको आदत नहीं, फिर क्या ज़रुरत है, गिर–गिरा गए तो मुश्किल होगी।"

महेन्द्र ने उत्तेजित होकर कहा, "मैं गिर पड़ूंगा।" कहने के साथ ही वह ऊपर जाने लगा।

विनोदिनी ने कहा, "आप बिहारी बाबू को दोष देते है, पर मैं तो देख रही हूं, आप ही बखेड़ा खड़ा करने में किसी से कम नही।"

महेन्द्र रास्ते भर बहुत गम्भीर मुंह बनाए बैठ रहा।

गाड़ी ठीक समय दमदम के बगीचे में पहुंची। नौकरों की गाड़ी जो बहुत पहले ही चली थी, उसका अभी तक पता ही नहीं।

सर्दी के मौसम का सवेरा बहुत मधुर और सुहावना लग रहा है, धूप फैल जाने से ओस तो सूख गई, किन्तु बगीचे के पेड़–पौधे साफ प्रकाश से झिलमिला रहे हैं। बगीचे की चारदीवारी के किनारे किनारे हरसिंहार के पेड़ो की कतार है और उनके नीचे पड़े हुए फूलों की सुगन्ध से सारा बगीचा महक रहा है।

आशा कलकत्ते के ईंट–पत्थर के मकानों के बन्धन से मुक्ति पाकर जंगल की हिरनी की तरह खिल उठी। उसने विनोदिनी के साथ ढेर के ढेर फूल चुने, पेड़ से पके शरीफे तोड़कर उसके नीचे बैठकर खाए, और फिर दोनों सखियां मिलकर बहुत देर तक तालाब में नहाती रहीं। इन दोनों नारियों ने मिलकर एक तरह के बेकार के आनन्द से पेंड़ो की छाया और डालियों की संध में से निकलते हुए प्रकाश को, तालाब के पानी और कुंज के फूल पत्तों को खुशी से भरकर जीवंन कर दिया।

नहाने के बाद दोनों सखियों ने आकर देखा कि नौकरों की गाड़ी अभी तक नहीं आई है। महेन्द्र कोठी के बराण्डे में कुर्सी पर बैठा किसी विलायती कम्पनी का सूत्रीपत्र पढ़ रहा था। चेहरे पर खुशी का नाम तक नहीं। सूखा–सूखा–सा दिखाई दे रहा है।

विनोदिनी ने महेन्द्र के पास जाकर पूछा, "बिहारी बाबू कहां हैं?"

महेन्द्र ने संक्षेप में उत्तर दिया, "मालूम नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "चलिए, उन्हें ढूंढ निकाला जाए।"

महेन्द्र ने कहा, "उसे कोई चुरा ले जाएगा, ऐसी कोई आशंका नहीं मालूम होती। बिना ढूंढे भी वह मिल जाएगा।"

विनोदिनी ने कहा, "लेकिन कम से कम ऐसी तो आशंका है कि शायद वे आपके लिए ही सोच में दुबले हुए जा रहें हो कि कहीं 'दुर्लभ रत्न' खो गया, तो क्या होगा? कम से कम उन्हें तसल्ली तो दे आना चाहिए।"

तालाब के पास एक बड़ा–सा पक्का घाट है। बिहारी अपना पैक–बक्स खोलकर 'स्टोव' निकालकर उसपर पानी गरम कर रहा था। सबके आते ही उसने मेहमान नवाज़ी के साथ एक–एक प्याला गरम चाय और रकाबियों में कुछ नमकीन नाश्ता निकालकर सबके आगे रख दिया।

विनोदिनी बार-बार कहने लगी, "भाग्य से बिहारी बाबू सब तैयारी कर लाए थे, इसलिए जान में जान आ गई,नहीं तो चाय न मिलने से महेन्द्र बाबू की न जाने क्या दशा होती।"

चाय पाकर महेन्द्र के सचमुच ही जान में जान आ गई।

काफी दिन चढ़ गया, किन्तु नौकर नहीं आए। बिहारी की पेटी में से कई प्रकार की खाने की चीजें निकलने लगीं। दाल–चावल, साग–तरकारी और छोटी–छोटी शीशियों में पिसे हुए मसाले इत्यादि। विनोदिनी आश्चर्य के साथ कहने लगी, "बिहारी बाबू, आपने तो हम औरतों को भी मात कर दिया। घर में तो गृहिणी नहीं हैं, फिर यह सब आपने सीख कहां से लिया?"

बिहारी ने कहा, "कम्बख्त पेट के लिए सब कुछ सीखना पड़ता है, भाभीजी। क्या करूं, अपनी सेवा–टहल और आदर–जतन सब कुछ अपने–आप ही करना पड़ता है न।"

बिहारी ने यह बात योंहीं हंसी–हंसी में कही थी, किन्तु विनोदिनी गम्भीर होकर बिहारी के मुंह की तरफ करुण दृष्टि से देखती हुई मेहरबानियां बरसाने लगी।

बिहारी और विनोदिनी दोनों मिलकर रसोई के काम में जुट पड़े आशा कमजोर और सिकुड़ी सी होकर हाथ बंटाने आई, किन्तु बिहारी ने रोक दिया। अपटु महेन्द्र ने मदद करने की कोई कोशिश ही नहीं की। वह बरगद के तने से पीठ टेके और पैर रखे कांपते हुए पत्तों पर सूर्य–किरणों का नाच देखने लगा।

रसोई बन चुकने पर विनोदिनी ने कहा, "महेन्द्र बाबू, आप इस बरगद के पत्ते गिनकर पार नहीं पा सकते अब जाइए, नहा आइए।"

इतने में नौकर–चाकर भी सामान लेकर आ पहुंचे। उनकी गाड़ी रास्ते में टूट गई थी। आते–आते दोपहर हो गया।

खाने–पीने के बाद बरगद के पेड़ के नीचे ताश खेलने का प्रस्ताव हुआ, किन्तु महेन्द्र ने कुछ ध्यान ही नहीं दिया और देखते-देखे पेड़ की छाया के नीचे उसे नींद आ गई और सो गया। आशा कोठी के भीतर जाकर दरवाज़ा बन्द करके आराम करने की तैयारी करने लगी। विनोदिनी ने माथे का पल्ला सम्हालते हुए बिहारी से कहा, "अच्छा, तो अब मैं भीतर जाती हूं।"

बिहारी ने कहा, "आप कहां जाएंगी, बैठिए

क्षण–क्षण में दोपहर की गरम हवा पेड़-पत्तों (को) मर्मरित करने लगती है और क्षण–क्षण में तालाब के उस पार जामुन के पेड़ के घने पत्तों में से कोयल बोल उठती है।

विनोबिनी अपने बचपन की बातें करने लगी–गांव की बात, मां–बाप की बात, बचपन की सहेलियों की बात। कहते–कहते उसके माथे का पल्ला खिसक पड़ा। विनोदिनी के चेहरे पर तेज यौवन की जो एक दीप्ति हमेशा ही बनी रहती थी, बचपन की यादों की छाया ने आकर उसे आज चमकीला कर दिया। उसकी आंखों में जिस कौतुक तीव्र कटाक्ष को देखकर तेज़ नज़र वाले बिहारी के मन में

अब तक तरह–तरह की शंकाएं उपस्थित हुआ करती थी उन्हीं आंखों की साफ काली चमक जब एक शान्त,गीली रेखा में बदल कर हलकी हो आई, तब बिहारी को विनोदिनी में मानों और ही कोई व्यक्तित्व दिखाई देने लगा। उसने देखा कि उस दीप्तिमण्डल के केन्द्र–स्थल में एक कोमल हृदय अब भी सुधा–धारा से सरस बना हुआ है। बिहारी सोचने लगा, 'विनोदिनी बाहर से विलासिनी युवती ज़रुर है, किन्तु उसके भीतर एक पूजा में डूबी नारी निरशन हो तपस्या कर रही है।' बिहारी गहरी सांस लेकर मन ही मन बोला, 'मनुष्य अपने वास्तविक रूप को आप ही नहीं जान पाता, अन्तर्यामी ही जान सकते हैं। अवस्था–चक्र में बाहर जो कुछ बन जाता है, संसार की दृष्टि में वही सच मालूम होता है।'

बिहारी ने बात के सिलसिले को रुकने नहीं दिया-प्रश्न कर-करके वह उस जगाए रखने लगा। विनोदिनी को अब तक कोई ऐसा आदमी ही नहीं मिला जो उसके मन की सब बातें इस तरह सुनता, खासकर किसी पुरुष के आगे उसने इस तरह अपने आप को भुलाकर स्वाभाविक भाव से ये बातें नहीं कहीं। आज मुक्त कण्ठ से बहुत ही सहज-सरल हृदय की बातें कहकर उसकी सम्पूर्ण नारी–प्रकृति मानो नयी वर्षा की बूंदों में स्नान करके चमकीली और तृप्त हो गई।

खूब सवेरे उठने के बखेड़े से थके हुए महेन्द्र की करीब, पांच बजे आंख खुली। वह कुछ झुंझलाहट के साथ बोल उठा, "बस, अब चलना चाहिए।"

सामान सब सम्हालकर उठाने-रखने में अंधेरा हो आया। इतने में एक नौकर ने आकर खबर दी 'गाड़ी वाले गाड़ी लेकर न जाने कहां चले गए, दिखाई नहीं पड़ते। गाड़ियां बगीचे के बाहर खड़ी थीं। फौज के दो गोरे आकर ज़बरदस्ती उन्हें स्टेशन की तरफ ले गए हैं।'

उस नौकर को दूसरी गाड़ी लाने के लिए भेज दिया गया।

भीतर ही भीतर कुढ़ा हुआ महेन्द्र मन ही मन कहने लगा, 'आज का दिन ही मिट्टी हो गया!' अपनी बेचैनी अब उससे छिपाए नहीं छिप सकी।

शुक्ल पक्ष का चांद धीरे-धीरे पेड़ों की डालियों के पत्तों के जाल से निकलकर मुक्त आकाश में आ गया। सन्नाटे भरा कम्पनहीन जंगल 'छाया और चांदनी' के मिलन से विचित्र सौन्दर्य से पूर्ण हो उठा। आज इस माया-मण्डित पृथ्वी पर विनोदिनी ने अपने को कैसे तो एक अपूर्व रूप में अनुभव किया। आज जब उसने पेड़ों के झुंड में आशा को अपनी छाती से लगा लिया, तब उसमें प्रेम की ज़रा भी बनावट नहीं थी। आशा ने देखा कि विनोदिनी की आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है। उसने व्यथित हो पूछा, "क्यों बहन किरकिरी, तुम क्यों रो रही हो?"

विनोदिनी ने कहा, "कुछ नहीं बहन, कोई बात नहीं–ठीक तो हूं मैं। आज का दिन मुझे बड़ा अच्छा लगा।"

आशा नें पूछा, "सो कैसे?"

विनोदिनी ने कहा, "मुझे ऐसा लगता है कि मानो मैं मर गई हूं, मानो मैं परलोक में आ गई हूं, यहां मानो मेरा सब कुछ मिल सकता है।"

आशा आश्चर्य के साथ सब बात सुनती गई, किन्तु समझ कुछ न सकी। मृत्यु की बात सुनकर वह बहुत दुखी हुई, बोली, "छी, बहन किरकिरी, ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।"

गाड़ी मिल गई। बिहारी फिर कोच बक्स पर बैठा। विनोदिनी चुप बैठी खिड़की से बाहर की ओर देखती रही, चमचमाहट से सतर खड़ी पेड़ों की कतारें भागती हुई अकेली परछाईं की तरह उसकी आंखों के ऊपर दौड़ती चली जा रही थीं। आशा गाड़ी के एक कोने में बैठी थी, उसकी आंख लग गई और महेन्द्र रास्ते-भर अत्यन्त विमर्श हुआ बैठा रहा।

१८

बगीचे वाले मनहूस दिन के बाद महेन्द्र फिर एक बार विनोदिनी को अच्छी तरह अपने वश में लाने को उत्सुक हुआ किन्तु उसके दूसरे ही दिन राजलक्ष्मी को इन्फ्लुएंजा हो गया। रोग खतरनाक होने पर भी तकलीफ और कमज़ोरी बहुत ज़्यादा थी। विनोदिनी दिन-रात उनकी सेवा में लगी रही।

महेन्द्र ने कहा, "दिन-रात जाग-जागकर इस तरह तीमारदारी करती रहोगी, तो अन्त में तुम भी बीमार पड़ जाओगी। मां की सेवा के लिए मैं आदमी ठीक किए देता हूं।"

बिहारी ने कहा, "महेन भइया, तुम इतने घबराते क्यों हो? ये सेवा कर रही हैं, तो करने दो। ऐसी सेवा और कोई कर सकता है!"

महेन्द्र ने रोगी के कमरे में बार-बार आना-जाना आरम्भ कर दिया। कोई आदमी कुछ काम तो करे नहीं और काम के वक़्त हमेशा साथ लगा रहे, यह बात कर्मठ विनोदिनी के लिए असह्य थी। उसने झुंझलाकर दो-तीन बार महेन्द्र से कहा, "आप यहां बैठे हुए क्या मदद कर रहे हैं? आप जाइए, बेकार ही पढ़ाई का हर्ज न कीजिए।"

हालांकि विनोदिनी को इस बात में गर्व था और आराम भी मिलता था कि महेन्द्र उसका हर वक्त पीछा करता रहता है, किन्तु इसके मानी यह नहीं कि इस तरह का कंगलापन किया जाए कि बीमार मां की रोगशय्या तक लोभी हृदय से उसके पीछे लगे रहना! इससे विनोदिनी का धीरज जाता रहा और महेन्द्र से उसे घृणा होने लगी।

बिहारी बीच-बीच में थोड़ी देर के लिए राजलक्ष्मी की सेहत पूछने आता और कमरे में घुसते ही समझ जाता कि 'क्या ज़रूरत है, कहां किस चीज़ की कमी है', और चट से सब ठीक करके चला जाता। विनोदिनी मन ही मन समझ जाती कि बिहारी उसकी सेवा-टहल को श्रद्धा की दृष्टि से देखता है। इसलिए बिहारी के आगमन से मानो उसे विशेष पुरस्कार मिल जाता।

महेन्द्र महज़ एक धिक्कार के बहाव में अत्यन्त कठोर नियम के साथ कालेज जाने लगा। एक तो उसका मिज़ाज अत्यन्त रूखा हो गया, उसपर घर का सब ढांचा ही बदल गया कभी रसोई ठीक समय पर नहीं होती तो कभी साईस लापता है, कभी मोज़े के छेद बढ़ते चले जा रहे हैं, तो कभी कुछ। अब इन सब बिखराहटों में महेन्द्र पहले जैसी खुशी महसूस नहीं करता।

एक दिन वह कहने लगा, "चुन्नी, मैं तुमसे कई बार कह चुका हूं कि मेरे नहाने के पहले ही तुम मेरी कमीज़ में बटन लगा दिया करो और मेरी अचकन, पतलून सम्हालकर एक जगह रख दिया करो, मगर एक भी दिन तुमसे यह नहीं होता। नहाने के बाद बटन लगाने और कपड़े ढूंढ़ने में मेरे दो-दो घण्टे बरबाद हो जाते हैं।"

अनुतप्त आशा मारे शर्म के मुर्झाकर कहती, "मैंने नौकर से कह तो दिया था।" महेन्द्र कहता, "नौकर से कह तो दिया था! अपने हाथ से करने में क्या बिगड़ जाता? तुमसे तो किसी काम की आशा करना ही व्यर्थ है।" यह आशा के लिए वज्रपात था। ऐसी डांट-फटकार उसे कभी नहीं सहनी पड़ी।

आशा बार-बार अपनी बीमार सास के कमरे के आसपास चक्कर काटती और बार-बार लज्जित होकर दरवाज़े के पास जाकर खड़ी हो जाती भीतर जाने की उसे हिम्मत ही नहीं पड़ती। वह घर-गृहस्थी के लिए अपने को आवश्यक कर देना चाहती है, कुछ काम करके दिखाना चाहती है, किन्तु कोई उससे काम लेना ही नहीं चाहता। वह नहीं जानती कि किस तरह काम में प्रवेश किया जाना है और किस तरह गृहस्थी में अपने लिए जगह बना ली जाती है। वह अपनी अक्षमता-अयोग्यता के संकोच से बाहर ही बाहर घूमती रहती है।

पहले तो आशा और महेन्द्र दोनों ने बहुत देर-देर तक घर में बैठकर कभी बातें करके और कभी बातें न करके पूर्ण आनन्द से सुखमय समय बिताया है, किन्तु आजकल विनोदिनी के अभाव में आशा के साथ अकेले बैठकर महेन्द्र के मुंह से सहज में कोई बात ही नहीं निकलना चाहती और कुछ कहे बगैर चुपचाप बैठा रहना भी उसे कुछ उटपटांग-सा मालूम होता है।

महेन्द्र ने नौकर से पूछा, "यह चिट्ठी किसकी है?"

"बिहारी बाबू की।"

"किसने दी?"

"बड़ी बहूजी ने।"

"देखूं" कहते हुऐ महेन्द्र ने चिट्ठी उससे ले ली। विनीदिनी की चिट्ठी और बिहारी के नाम? उसकी इच्छा हुई कि लिफाफा फाड़कर चिट्ठी पढ़ ले, पर दो-चार बार उलट-पुलटकर देख-भालकर उमने चिट्ठी नौकर की तरफ फेंक दी। अगर वह चिट्ठी खोलता, तो देखता कि उसमें लिखा है, 'बुआजी किसी भी तरह साबू-बार्ली ले ही नहीं रही हैं। आज क्या उन्हें मूंग की दाल का पानी दिया जा सकता है?' दवा और परहेज़ के सम्बन्ध में विनोदिनी महेन्द्र से कभी कोई बात नहीं पूछती थी। इस विषय में वह बिहारी पर ही ज़्यादा भरोसा रखती है।

महेन्द्र बरामदे में कुछ देर तक चहलकदमी करता रहा, फिर अपने कमरे में चला गया। भीतर घुसते ही उसने देखा कि सामने की दीवार पर जो तस्वीर लटक रही है, उसकी रस्सी टूटने में ज़रा-सी कसर है और वह टेढ़ी होकर गिरना ही चाहती है। महेन्द्र ने आशा को बड़े ज़ोर से डांटते हुए कहा, "तुम्हारी आंखें आजकल कुछ देखती ही नहीं! इसी तरह सब कुछ बरबाद किए दे रही हो।" दमदम के बगीचे से कुछ फूल चुनकर विनोदिनी एक गुलदस्ता बना लाई थी और उसे पीतल की फूलदानी में रख दिया था। आज तक वह ज्यों का त्यों सूखा पड़ा है, फेंका नहीं गया। और दिन महेन्द्र का इन सब बातों की तरफ ध्यान नहीं जाता, किन्तु आज उसपर उसकी दृष्टि पड़ गई। वह बिगड़ उठा, "जब तक इसे विनोदिनी आकर नहीं फेंकेगी तब तक यह योंही पड़ा रहेगा।" और फूलदानी उठाकर इतने ज़ोर से बाहर फेंक दी कि वह ठनठनाती हुई ज़ीने की सीढ़ियों से नीचे लुढ़कती चली गई।

महेन्द्र सोचने लगा, 'आशा क्यों मेरे मन की सी नहीं बन रही है? क्यों वह मेरे मन का सा काम नहीं करती? क्यों वह अपनी आदतन ढीलेपन और कमज़ोरी के कारण मुझे दाम्पत्य सुख में मज़बूती से पकड़कर नहीं रख सकती? क्यों यह सदा मुझे बौराया बनाए रहती है?' सोचते-सोचते सहसा उसकी दृष्टि आशा पर जा पड़ी। देखा कि उसका चेहरा पीला पड़ गया है, वह पलंग में लगे मच्छरदानी का एक खम्बा पकड़े खड़ी है, उसके होंठ कांप रहे हैं। और कांपती हुई सहसा वह तेज़ी से बगल के कमरे में चली गई।

महेन्द्र तब धीरे से जाकर फूलदानी उठा लाया, और जहां की तहां रख दी। घर के कोने में उसकी पढ़ने की टेबल-कुर्सी थी, वह उस कुर्सी पर जाकर बैठ गया; और फिर टेबल पर दोनों कोहनी टेककर हथेलियों पर सिर रखे बहुत देर तक योंही बैठा रहा।

शाम हो गई, नौकर कमरे में बत्ती जलाकर रख गया, किन्तु आशा नहीं आई। महेन्द्र छत पर जाकर बड़ी तेज़ी से इधर से उधर चक्कर काटने लगा। रात के नौ बज गए, महेन्द्र का सुनसान घर निशीथ रात्रि के समान सन्नाटे भरा हो गया, फिर भी आशा नहीं आई। महेन्द्र ने उसे बुलवाया। आशा अत्यन्त संकोच के साथ धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़कर छत के ज़ीने के दरवाज़े के पास तक आकर खड़ी रह गई। महेन्द्र ने पास जाकर उसे छाती से लगा लिया। उसी क्षण पति के सीने पर उसका रोना मानो फूट पड़ा, उसके रोके रुका ही नहीं। मानो उसके आंसू निबटनों ही नहीं चाहते, रोने की आवाज़ मानो ज़ोर से निकलना चाहती है, उसके दबाए दबना नहीं चाहती। महेन्द्र ने उसे अपनी बांहों से छाती में बांधकर उसका माथा चूम लिया। आकाश के गूंगे तारे चुप्पी साधकर देखते रहे।

एक दिन रात को बिस्तर पर बैठा हुआ महेन्द्र कह उठा, "इधर कालेज में हम लोगों की नाइट ड्यूटी ज़्यादा पड़ रही है, इसलिए अब कुछ दिनों के लिए मुझे कालेज के पास ही 'मेस' में रहना पड़ेगा।"

आशा ने सोचा, 'अभी तक क्या गुस्सा बना ही हुआ है? या मेरे ऊपर गुस्सा होकर चले जाना चाहते हैं? अपनी अयोग्यता से मैं पति को घर से विदा किए दे रही हूं? इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा था।'

किन्तु महेन्द्र के व्यवहार में नाराज़ी का कोई लक्षण नहीं था। उसने बहुत देर तक मुंह से कुछ न कहकर आशा का मुंह अपनी छाती से लगाए रखा और बार-बार उसके बालों में उंगलियां डालकर उसके जूड़े को ढीला करता रहा। पहले प्यार के दिनों में महेन्द्र इसी तरह आशा के बाल खोल दिया करता था, आशा इसपर आपत्ति करती थी। आज उसने कोई आपत्ति नहीं की, आनंद में डूबकर वह चुप बनी रही। अचानक उसके माथे पर आंसू की बूंद आ पड़ी और महेन्द्र ने उसका मुंह उठाकर स्नेह भरे स्वर में कहा, "चुन्नी!" आशा ने मुंह से कुछ उत्तर न देकर अपने कोमल हाथों से महेन्द्र को अपनी छाती से दबा लिया। महेन्द्र ने कहा, "कसूर हो गया है मुझसे, मुझे तुम माफ करो।"

आशा ने अपने फूलों-से कोमल हाथों से महेन्द्र का मुंह बन्द करके कहा, "नहीं, नहीं, ऐसी बात न कहो। तुमने कोई भी कसूर नहीं किया। सब दोष मेरा ही है। मुझे तुम अपनी दासी की तरह, डांटो-डपटो, दण्ड दो। मुझे तुम अपने चरणों की सेवा योग्य बना लो।"

विदा के प्रभात में बिस्तर से उठते हुए महेन्द्र ने कहा, "चुन्नी, मेरे हृदय की मणि! मैं तुम्हें अपने हृदय में सबके ऊपर धारण कर रखूंगा, वहां और कोई भी तुमसे आगे नहीं बढ़ सकता।"

तब आशा ने दृढ़ मन से सब तरह के आत्मत्याग के लिए तैयार होकर पति की

सेवा में अपनी सिर्फ एक छोटी-सी प्रार्थना पेश की, बोली, "तुम मुझे रोज़ एक चिट्ठी दिया करोगे?"

महेन्द्र ने कहा, "तुम भी दिया करोगी?"

आशा ने कहा, "मुझे क्या लिखना आता है?"

महेन्द्र ने उसकी लटों को कान तक खींचते हुए कहा, "तुम 'चारुपाठ' के लेखक अक्षयकुमार दत्त से अच्छा लिख सकती हो।"

आशा बोली, "चलो रहने दो मजाक मत उड़ाओ।"

जाने के पहले आशा पूरी कोशिश करके अपने हाथ से महेन्द्र का बक्स सजाने बैठी। महेन्द्र के मोटे–मोटे जाड़े के कपड़े ठीक तरह से तहाना और बक्स में रखना ज़रा मुश्किल काम है। दोनों ने मिलकर किसी तरह दाब–दूबकर एक बक्स का सामान दो बक्सों में रखकर छुट्टी पाई। फिर भी गलती से जो बाकी रह गया उससे और भी कई गठरियां बन गई। इस विषय में आशा को यद्यपि काफी लज्जा मालूम हुई, फिर भी दोनों की छीना–झपटी, कौतुक और परस्पर एक-दूसरे के प्रति दोषारोपण से पहले जैसा एक आनन्द का दिन वापस आ गया और आशा इस बात को बिल्कुल भूल गई कि यह विदा की तैयारियां हो रही है। साईस ने आठ-दस वार महेन्द्र को 'गाड़ी तैयार' की बात याद दिलाई, पर महेन्द्र ने उधर ध्यान ही नहीं दिया और अन्त में झुंझलाकर बोल उठा, "जाओ, घोड़े खोल दो।"

सवेरा धीरे–धीरे दोपहर हो गया और दोपहर से सन्ध्या हो गई, तब कहीं स्वास्थ्य का ख्याल रखने और नियमित चिट्ठी लिखने की बार–बार हिदायत देते हुए बोझिल मन से दोनों ने किसी तरह बिछोह का अध्याय पूरा किया।

आज दो दिन हुए राजलक्ष्मी ने थोड़ा खाया है। शाम के वक्त मोटा गरम कपड़ा ओढ़े वे विनोदिनी के साथ ताश खेल रही थीं। आज उनके शरीर में किसी तरह का दर्द नहीं है। महेन्द्र ने उस कमरे में जाकर विनोदिनी की तरफ जरा भी न देखकर मां से कहा, "मां, कालेज में मेरी रात की ड्यूटी पड़ी है—यहां रहने से बड़ी दिक्कत होती है, इसलिए मैंने कालेज़ के पास एक 'मेस' में रहने का इन्तज़ाम किया है। आज से वहीं रहूंगा।"

राजलक्ष्मी भीतर से रूठी हुई सी बोलीं, "ठीक है, जाओ। पढ़ाई का नुकसान करके यहां कैसे रह सकते हो।"

यद्यपि उनका रोग अच्छा हो गया है, फिर भी महेन्द्र के जाने की बात सुनकर वे अपने को रोगी और कमजोर–महसूस करने लगीं और विनोदिनी से बोलीं, "ज़रा तकिया तो बढ़ा देना, बेटी।" और तकिये का सहारा लेकर लेट रहीं। विनोदिनी धीरे-धीरे उनकी देह पर हाथ फेरने लगी।

महेन्द्र ने एक बार मां के माथे से हाथ लगाकर देखा और फिर नाड़ी देखने लगा। राजलक्ष्मी ने अपना हाथ छुड़ाते हुए कहा, 'नाड़ी देखकर तो सब समझ लिया। तुझे फिक्र करने की जरुरत नहीं, मैं बहुत अच्छी हूं।'' इतना कहकर वे कमज़ोरी के साथ करवट लेकर पड़ रही।

महेन्द्र विनोदिनी से किसी तरह का विदाई की शिष्ट बातचीत किए बिना ही मां को प्रणाम करके चला गया।

१९

विनोदिनी मन ही मन सोचने लगी, 'बात क्या है? मान हुआ है, या नाराज़ी है, या भय है? मुझे दिखाना चाहते हैं कि तुम्हारी कोई परवाह नहीं। 'मेस' में जाकर रहेंगे? देखूं कितने दिन रहते है।'

किन्तु विनोदिनी के भीतर भी एक तरह का अशान्त भाव उपस्थित हुआ। महेन्द्र को वह प्रतिदिन तरह–तरह के जालों में फंसाती और तरह-तरह बाणों से घायल करती रहती थी, उसका वह काम मानो इधर से उधर करवट लेने लगा। महेन्द्र ने उसके मन में एक तरह की आग सुलगा दी है, वह आग प्रेम की है या डाह की या दोनों का मिश्रण हैं, विनोदिनी से कुछ निर्णय करते नहीं बनता। वह मन ही मन तीव्र हंसी हंसकर कहती है, 'किसी नारी की क्या मुझ जैसी ऐसी दशा हुई है। मैं मरना चाहती हूं या मारना, इतना भी न समझ सकी।' किन्तु चाहे किसी भी कारण से हो, जलने के लिए हो या जलाने के लिए, महेन्द्र की उसे सख्त ज़रुरत है। आखिर वह अपने विष के बुझे अग्निबाण इस ससार में कहां चलावे? जल्दी–जल्दी सांस लेते हुए वह मन ही मन कहने लगी, 'वह जाएगा कहां? उसे लौटना (ही) होगा। मेरा है वह।'

शीघ्र ही महेन्द्र को अपने छात्रावास में पहचाने हुए हस्ताक्षरों की लिखी एक चिट्ठी मिली। दिन के कोलाहल और भीड़-भम्भड़ में उसने चिट्ठी खोली नहीं, छाती के पास जेब में रख ली। कालेज में लेक्चर सुनते-सुनते और अस्पताल में घूमते–घूमते अकस्मात एक-एक बार उसे याद उठती रही कि प्यार की एक चिड़िया उसकी छाती में नीड़ बनाकर सो रही है। उसे जगाते ही उसका सम्पूर्ण कोमल कूकना उसके कानों में गूंज उठेगा।

सन्ध्या के समय महेन्द्र अपने निर्जन कमरे में लैम्प के उजाले में कुर्सी पर आराम से बैठ गया। जेब में अपनी देह से गर्म चिट्ठी निकाल ली। बहुत देर तक चिट्ठी न खोलकर लिफाफे के ऊपर का पता देखता रहा। वह जानता है कि चिट्ठी में ज्यादा कुछ नहीं है। और इसकी कोई सम्भावना भी नहीं थी कि आशा अपने

मन के भावों को ठीक तरह से व्यक्त कर सकेगी। केवल उसकी कच्ची लिखावट और टेढ़ी-मेढ़ी पंक्तियों में उसके मन की बातों की कल्पना कर लेनी होगी।

महेन्द्र ने अत्यन्त धीरे-धीरे लिफाफा फाड़कर चिट्ठी निकाली और उसे वह अपने ललाट पर, कपोलों पर फेरने लगा। किसी दिन महेन्द्र ने जो एसेन्स आशा को उपहार में दिया था उसकी सुगन्ध उतावली गहरी सांस की तरह चिट्ठी के कागज में से निकलकर महेन्द्र के हृदय में प्रवेश कर गई।

तह खोलकर उसने चिट्ठी पढ़ी। किन्तु यह क्या। जैसी टेढ़ी मेढ़ी पंक्तियां है वैसी सीधी-सादी भाषा तो नहीं है। कच्ची लिखावट है, किन्तु बातें तो उससे मेल नहीं खाती। चिट्ठी में लिखा है:

"प्रियतम,

जिसे भूलने के लिए तुम चले गए हो, इस चिट्ठी में उसकी क्यों याद दिलाऊं! जिस लता को तुमने तोड़कर फेंक दिया है, वह अब क्या मुंह लेकर किस बिरते के बूते से लिपटकर ऊपर चढ़ने की कोशिश करे? क्यों नहीं वह मिट्टी के साथ मिट्टी होकर, धूल के साथ धूल बनकर धूल में समा गई?

किन्तु इतने से तुम्हारी क्या हानि होगी, नाथ। क्षण-भर के लिए याद आ भी गई, तो क्या हुआ? मन में वह कितनी चोट पहुंचाएगी? और यहां तुम्हारी उपेक्षा जो कांटे की तरह मेरी पसलियों में चुभी रह गई। वह कांटा दिन-भर रात-भर, सब काम में, चिन्ता में, जहां भी चलती-फिरती हूं, जिधर भी हिलती-डुलती हूं, उसी तरफ मुझे चुभता रहता है। तुम जैसे भूल गए हो, मुझे भी 'भूलने का वैसा कोई उपाय बता दो न।

नाथ, तुमने जो मुझसे प्रेम किया था, वह क्या मेरा ही अपराध था? मैंने क्या स्वप्न में भी उतने सौभाग्य की आशा की थी? मैं कहां से आई, कौन मुझे जानता था? मेरी तरफ अगर तुम आंख उठाकर न देखते, मुझे अगर तुम्हारे घर बिना वेतन की दासी होकर रहना पड़ता, तो क्या मैं तुम्हें कोई दोष दे सकती थी? तुम अपने-आप ही न जाने कौन-से गुण पर मुग्ध हो गए, प्रियतम, क्या देखकर तुमने मेरा इतना आदर बढ़ाया इतना लाड़ किया? और आज यदि बिना बादलों के बिजली ही गिरी तो उस बिजली ने केवल झुलसाकर ही क्यों छोड़ दिया? उसने इस देह, मन को बिलकुल जलाकर भस्म क्यों नहीं कर दिया?

इन दो ही दिनों में बहुत सहा, बहुत सोचा, किन्तु एक बात समझ में नहीं आई कि घर में रहते हुए भी क्या तुम मुझे फेंक नहीं सकते थे? मेरे लिए भी क्या तुम्हें घर छोड़ने की ज़रुरत थी? मैं क्या तुम्हें उस कद्र घेरे हुए हूं? मुझे तुम अपने घर के किसी एक कोने में अपने द्वार के बाहर डाल रखते, तब भी क्या मैं तुम्हारी नजरों में आती? अगर यह बात ठीक है, तो तुम क्यों गए? मेरे लिए क्या कहीं भी

जीने का कोई रास्ता नहीं था? मैं तो बहकर आई हूं बहकर चली जाती।"

यह क्या चिट्ठी है, यह भाषा किसकी है, महेन्द्र से छिपा न रहा अचानक घायल होकर बेहोश हुए की तरह महेन्द्र इस चिट्ठी को पढ़कर भौंचक रह गया। जिस लाइन पर उसका मन रेलगाड़ी की तरह पूरी रफ्तार से दौड़ रहा था उस लाइन की विपरीत दिशा से एक धक्का खाकर उसका मन लाइन के बारह जा पड़ा और उलट-पुलटकर बेचैन होकर एक ढेर-सा बनकर पड़ा रहा।

बहुत देर सोचने के बाद उसने दो-तीन बार चिट्ठी पढ़ी।

यह चिट्ठी विनोदिनी की है। सरला आशा ने अपनी जानकर लिख दी है। जो बातें पहले उसने सोची तक नहीं, विनोदिनी के कहे अनुसार चिट्ठी लिखते समय वे बातें उसके मन में जाग उठने लगीं। नकल की हुई बातें बाहर से बद्धमूल होकर उसके लिए हार्दिक हो गई। महेन्द्र कुर्सी छोड़कर उठ खड़ा हुआ और भौंहे चढ़ाकर विनोदिनी पर क्रोध करने की भरसक कोशिश करने लगा, किन्तु क्रोध आने लगा आशा पर। 'देखो तो सही, आशा की यह कैसी मूर्खता है, पति के प्रति उसका यह कैसा अत्याचार है।' कहता हुआ वह कुर्सी पर बैठ गया और सबूत के रूप में फिर चिट्ठी पढ़ने लगा।पढ़ते-पढ़ते भीतर ही भीतर उसके हर्ष का संचार होने लगा। चिट्ठी को उसने आशा की ही चिट्ठी समझकर बार-बार पढ़ने की कोशिश की, किन्तु यह भाषा तो किसी भी तरह सीधी-सादी आशा की याद नही दिलाती। दो-चार लाइन पढ़ते ही एक तरह का मदहोश करने वाला सन्देह फेनिल शराब की तरह उसके मन के चारों तरफ निकल-निकलकर फैलने लगा। इस प्रच्छन्न किन्तु व्यक्त निषिद्ध किन्तु निकटागत, विषाक्त किन्तु मधुर, एक समय में उपहृत, किन्तु प्रत्याहृत प्रेम के आभास ने महेन्द्र को पागल कर दिया। उसका जी चाहने लगा कि अपने हाथ-पैर में कहीं एक जगह चाकू भोंककर या और कुछ करके नशा छुड़ाकर मन को और किसी तरफ बौरा दे। सहसा वह टेबल पर जोर से मुक्का जमाकर उछल पड़ा और बोल उठा, "हटाओ चिट्ठी को, जला डालो।"

और फिर वह उस चिट्ठी को जलाने के लिए लैम्प के पास ले गया, किन्तु जला न सका, फिर एक बार पढ़ने लगा।

२०

इस बीच में और भी एक चिट्ठी आ पहुंची। उसमें लिखा था-

"तुमने मेरी चिट्ठी का जवाब नहीं दिया? अच्छा ही किया। ठीक बातें तो लिखने में आती नहीं, तुम्हारा जो जवाब है उसे मैं मन ही मन समझ लेती हूं। भक्त जब

अपने देवता को पुकारता है, तो देवता क्या मुंह की बातों से जवाब देते हैं? आशा है दुखिया का बिल्वपत्र चरणों में स्थान पा चुका होगा।

किन्तु भक्त की पूजा ग्रहण करने में शिव का यदि तप भंग हो, तो उससे नाराज न होना, मेरे हृदयदेव। तुम वर दो या न दो, आंख उठाकर देखो या न देखो, पूजा बिना किए तो भक्त की और कोई गति नहीं। इसीसे आज यह छोटा-सा पत्र लिख रही हूं। हे, मेरे पाषाण-देवता, तुम स्थिर बने रहना।"

महेन्द्र इस चिट्ठी का जवाब लिखने बैठा। बहुत-से पत्र लिखते और फाड़ते-फाडते आधी से ज़्यादा रात बीत गई फिर एक लिखा भी तो उसे लिफाफे में भरकर उसपर आशा का नाम लिखते समय सहसा उसकी पीठ पर मानो चाबुक-सा आ पड़ा। मानो कोई बोल उठा, 'अरे पाखण्डी, विश्वासघातक, विश्वस्त बालिका से ऐसी प्रतारणा, ऐसी धोखेबाजी।' महेन्द्र ने उस चिट्ठी के सैकड़ों टुकड़े कर डाले और बाकी की रात उसने टेबल पर अपने दोनों हाथ रखकर, उनपर अपना मुंह रखकर बिता दी।

फिर तीसरा पत्र आया। अब की बार लिखा है:

"जो बिलकुल ही रूठना नहीं जानता वह क्या प्यार करता है? अपने प्रेम को अगर मैं अनादर-अपमान से बचाकर न रख सकी, तो उस प्रेम को मैं तुम्हें दूंगी कैसे?

तुम्हारे मन को शायद मैं ठीक से समझ नहीं सकी हूं, इसी-से इतना साहस कर रही हू। और इसी से, जबकि तुम मुझे छोड़कर चले गए तब भी मैंने खुद आगे बढ़कर तुम्हें चिट्ठी लिखी, और जबकि तुम चुप थे तब भी मैं अपने मन की बात कहती गई। किन्तु मैंने अगर तुम्हें गलत समझा हो, तो क्या वह सिर्फ मेरा ही दोष है? एक बार शुरु से आखिर तक सब बातें सोच तो देखो, मैंने जो कुछ समझा था सो क्या तुम्हीं ने नहीं समझाया?

कुछ भी हो, गलत हो या सही, जो मैं लिख चुकी हूं वह मिटाया नहीं जा सकता, जो मैं दे चुकी हूं उसे वापस नहीं ले सकती, यही मेरा पछतावा है। छी-छी, ऐसी लज्जा की बात भी नारी के भाग्य में बदी होती है। किन्तु इसके मानी यह मत समझ लेना कि जो प्यार करता है, वह अपने प्यार को बराबर अपदस्थ करने देगा। यदि मेरी चिट्ठियों की ज़रूरत न हो, तो रहने दो अगर तुमने उत्तर नहीं दिया, तो बस यहीं खतम है।"

इसके बाद फिर महेन्द्र से रहा नहीं गया। वह सोचने लगा कि 'आशा की चिट्ठियों से नाराज़ होकर ही घर लौट रहा हूं। विनोदिनी ने समझा होगा कि मैं उसे भूलने के लिए ही घर छोड़कर भागा हूं। विनोदिनी की इस स्पर्धा को हाथोंहाथ अप्रमाणित करने के लिए ही महेन्द्र को उसी वक्त घर लौटने का फैसला करना

पड़ा।

इसी समय बिहारी आ गया। बिहारी को देखते ही महेन्द्र का भीतर का पुलक सहसा मानो दूना हो उठा। इसके पहले तरह-तरह के सन्देहों से भीतर ही भीतर बिहारी के प्रति उसकी ईर्ष्या बढ़ रही थी। और दोनों की मित्रता मुश्किल होने लगी थी। पत्र पढ़ने के बाद आज उसने अपना सम्पूर्ण ईर्ष्याभाव छोड़कर अतिरिक्त आवेग के साथ बिहारी को ग्रहण किया। कुर्सी से उठकर उसने बिहारी की पीठ थपथापकर, उसका हाथ पकड़कर, उसे अपने पास बिठा लिया।

किन्तु बिहारी का चेहरा आज उदास था। महेन्द्र ने सोचा, 'बेचारा इस बीच में ज़रुर विनोदिनी से मिला होगा और वहां से धक्का खाकर यहां आया होगा।'

महेन्द्र ने पूछा, "इधर तुम हमारे घर गए थे क्या।"

बिहारी ने गम्भीर मुंह से कहा, "अभी वहीं से आ रहा हूं।"

महेन्द्र ने पूछा, "कैसा देखा सबको?"

बिहारी ने उसकी बात का कोई जवाब न देकर पूछा, "घर छोड़कर तुम यहां कैसे?"

महेन्द्र ने कहा "आजकल जो प्रायः नाइट ड्यूटी पड़ती है इसलिए घर से आने-जाने में बड़ी परेशानी होती थी।"

बिहारी ने कहा, "इसके पहले भी तो नाइट ड्यूटी पड़ा करती थी, तब तो तुम्हें घर छोड़ते नहीं देखा?"

महेन्द्र हंस दिया, बोला, "मन में किसी तरह का सन्देह हो रहा है क्या?"

बिहारी ने कहा, "नहीं, हंसी की बात नहीं, चलो अब घर चलो।"

महेन्द्र घर लौटने के लिए तैयार था, किन्तु बिहारी का अनुरोध सुनकर मुस्कराने लगा मानो घर जाने का उसे कोई आग्रह ही न हो। बोला, "यह कैसे हो सकता है, बिहारी? फिर तो मेरा यह साल ही नष्ट हो जाएगा।"

बिहारी ने कहा, "बस, अब रहने दो, भाई साहब, रहने दो। तुम यहां मेरे साथ हंस-हसंकर बातें कर रहे हो और आशा वहां तुम्हारे ऊपर के कमरे में, नीचे के कमरे में रोते-रोते प्राण दिए दे रही है।"

आशा के रोने की बात सुनते ही महेन्द्र चौंकपड़ा़्र, बोला, "आशा रो क्यों रही है?"

बिहारी ने झुंझलाकर कहा,"यह बात तुम नहीं जानते, मैं जानूंगा क्यों?"

महेन्द्र बोला, "अच्छा चलो, कोई बात नहीं। हां तो किसी को भेजकर एक गाड़ी तो मंगवाओ।"

महेन्द्र के घर में आते ही उसका मुंह देखकर आशा के मन की ममची शंका न में बिखर जाने वाले कुहरे की तरह क्षण-भर में दूर हो गयी। अपनी चिट्ठियों की बात याद करके महेन्द्र के आगे आशा मानो अपना मुंह ही नहीं उठा सकी। महेन्द्र ने मीठी भर्त्सना के साथ कहा, "इस तरह लांछन-सा लगाते हुए तुमने मुझे इस तरह की उलाहनाभरी चिट्ठियां लिखी कैसे?" उसने अपनी जेब में से मानो चिट्ठियां निकाल ली।

आशा ने व्याकुल होकर कहा, "मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, इन्हें तुम फाड़ फेंको।" और महेन्द्र के हाथ से चिट्ठियां लेने के लिए वह छीना-झपटी करने लगी। महेन्द्र ने उसे रोकते हुए चिट्ठियां जेब में रख लीं और बोला, "मैं तो पढ़ाई की सुविधा के लिए गया और तुमने और ही कुछ समझ लिया। मुझपर सन्देह किया।"

आशा की आंखे भर आई, उसने कहा, "अब की बार तुम मुझे माफ कर दो, अब मुझसे ऐसा कसूर कभी नहीं होगा।"

महेन्द्र ने कहा, "कभी नहीं?"

आशा ने कहा, "कभी नहीं।"

तब महेन्द्र ने आशा को अपनी तरफ खींचकर उसकी भोली सूरत पर एक चुम्बन जड़ दिया।

आशा ने कहा, "चिट्ठियां मुझे दो, फाड़ फेंकूं।"

महेन्द्र ने कहा, "नहीं, रहने दो।"

इन चिट्ठियां के मामले में विनोदिनी से आशा का मन ज़रा कुछ फिर-सा गया। पति के आने की खबर को लेकर वह सखी के पास आनन्द प्रकट करने नहीं गई, बल्कि उससे कुछ बची-बची ही रही। विनोदिनी भी इस बात को ताड़ गई और काम-काज के बहाने इन लोगों से दूर ही दूर रहने लगी।

महेन्द्र ने सोचा, 'यह तो बड़ी विचित्र बात है! मैंने तो सोचा था कि अब की बार विनोदिनी खास तौर से मेरे सामने आएगी, किन्तु हुआ उलटा! तो फिर उन चिट्ठियों के क्या मानी?'

महेन्द्र ने अपने मन को इस बात के लिए काफी मजबूत कर लिया था कि 'विनोदिनी यदि पास आने की कोशिश करेगी भी, तो भी मैं दूर रहूंगा।' किन्तु आज मन ही मन बोला, 'नहीं, यह तो ठीक नहीं हो रहा। ऐसा लगता है कि मानो हम लोगों में सचमुच ही कोई बुराई आ गयी हो। विनोदिनी के साथ सहज-स्वाभाविक ढंग से बातचीत, हंसी-मजाक और दिल्लगी करके इस शंका में

डूबी उमस की सी स्थिति को खतम कर देना ही चाहिए।'

महेन्द्र ने आशा से कहा, "अब तो मालूम होता है, मैं ही तुम्हारी सहेली की आंख की किरकिरी बन गया हूं। आजकल उनके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गए हैं।"

आशा ने उदासीनता से उत्तर दिया, "मालूम नहीं उसे क्या हो गया है।"

इतने में राजलक्ष्मी चली आई और रुंधे हुए गले से बोलीं, "विपिन की बहू ने तो जाने की ही ठान ली है, मानती ही नहीं।"

महेन्द्र ने अपने चकित भाव को सम्हालते हुए कहा "क्यों मां?" राजलक्ष्मी ने कहा, "मालूम नहीं क्या बात है। अब की तो वह जाने के लिए मेरे पीछे पड़ गई है। तू तो किसीकी खातिर करना जानता ही नहीं। भले घर की लड़की पराये घर पड़ी है, उसे अपना समझकर अपनाया नहीं जाए, तो वह रहेगी क्यों?"

विनोदिनी अपने सोने के कमरे में बैठी बिछौने की चादर सी रही थी। महेन्द्र ने पहुंचते ही पुकारा, "किरकिरी।"

विनोदिनी संयत होकर बैठ गई; बोली, "क्या है, महेन्द्र बाबू?"

महेन्द्र ने कहा, "यह क्या। महेन्द्र अब 'बाबू' कब से हो गया?" विनोदिनी ने सिलाई की तरफ झुकी नजर रखकर कहा, "तो फिर आपसे क्या कहा करूं?"

महेन्द्र ने कहा, "अपनी सखी को जो कहती हो, 'आंख की किरकिरी।"

विनोदिनी ने पहले की तरह मजाक में इसका उत्तर नहीं दिया, अपनी चादर सीने में ही लगी रही। महेन्द्र ने कहा, "मालूम होता है सखी के साथ पक्का-सच्चा सम्बन्ध हो गया है, इसी से अब उस नाम से दूसरे से सखापा नहीं जोड़ते बनता।"

विनोदिनी ने ज़रा ठहरकर दांत से बचा हुआ सिलाई का डोरा काटते हुए कहा, "सो मैं क्या जानूं आप ही जानें।" इतना कहकर उसने और सब उत्तरों को दबाते हुए गम्भीर मुह से कहा, "कालेज के 'मेस' से अचानक लौट कैसे आए?"

महेन्द्र ने कहा, "सिर्फ मुरदे चीरकर और कितने दिन काट सकता था?"

विनोदिनी ने फिर दांत से सूत काटा और मुंह बगैर उठाए ही कहा, "अब शायद जिन्दों की जरूरत है?"

महेन्द्र ने तय किया था कि आज वह विनोदिनी के साथ अत्यन्त सहज-स्वाभाविक भाव से हंसी मज़ाक और उत्तर-प्रत्युत्तर करके बातचीत का अच्छा सिलसिला जमा लेगा, किन्तु विनोदिनी की तरफ से ऐसा एक गंभीरता का भार उसपर हावी हो गया कि कोई हलका जवाब जी-जान से कोशिश करने पर उसकी ज़बान पर नहीं आया। विनोदिनी के अन्तिम वाक्य के आघात के विरुद्ध कोई प्रतिघात न करके महेन्द्र ने उसके पास बैठकर कहा, "तुम हम लोगों को छोड़कर जाना क्यों चाहती हो? कोई अपराध बन पड़ा है हमसे?"

विनोदिनी ने ज़रा पीछे हटकर सिलाई से मुंह उठाकर अपनी बड़ी-बड़ी रोशन आंखों को महेन्द्र के मुंह पर स्थापित करते हुए कहा, "जरूरी काम तो सभी को होता है। आप जिन सबों को घर में छोड़कर कालेज के 'मेस' में गए थे, सो क्या किसीके अपराध से गए थे? मुझे भी क्या नहीं जाना चाहिए? मेरा क्या कोई ज़रुरी काम नहीं हो सकता?"

महेन्द्र गम्भीर चिन्तित मुंह लिए खिड़की के बाहर दूर के एक नारियल के पेड़ की चोटी की तरफ देखता हुआ बहुत देर तक चुप बैठा रहा। बहुत-देर बाद महेन्द्र सहसा बोल उठा और अचानक सन्नाटे भरी चुप्पी टूटने से विनोदिनी चौंक पड़ी उसकी उंगली में सुई चुभ गई। महेन्द्र ने कहा, "तुम्हें अब क्या मान-मनौवल करके भी किसी तरह नहीं रोका जा सकता?"

विनोदिनी ने अपनी जख्मी उंगली की खून की बूंद चूसते हुए कहा, "इतना मान-मनौवल आखिर है किसलिए? मैं रहूं तो क्या, और न रहूं तो क्या? आपका इससे क्या बनता-बिगड़ता है?" कहते-कहते उसका गला भारी हो आया और फिर वह बहुत ज़्यादा सिर झुकाकर बड़े ध्यान से सिलाई करने लगी। ऐसा मालूम हुआ कि शायद उसकी झुकी हुई आंखों में आसू भर आए हों।

महेन्द्र ने उसी क्षण विनोदिनी का हाथ पकड़कर गद्गद स्वर से कहा, "यदि उससे मेरा बनता-बिगड़ता हो, तो तुम रह जाओगी?"

विनोदिनी जल्दी से हाथ छुड़ाकर पीछे हट गई। महेन्द्र का भाववेग का नशा छूट गया। अपने अन्तिम शब्द गहरे व्यंग की तरह उसके अपने ही कानों में बार-बार गूंजने लगे। अपनी अपराधिनी जीभ को उसने दांतों से काट लिया, उसके बाद रसना उसकी चुप हो गई। ठीक इसी समय उस सन्नाटे भरे कमरे में आशा ने प्रवेश किया। विनोदिनी उसी क्षण मानो पूर्व कथोपकथन के सिलसिले में हंसती हुई बोल उठी, "आप लोग जबकि मेरी इतनी कीमत बढ़ा रहे हैं, तो मेरा भी कर्तव्य है कि आपकी बात मान जाऊं। जब तक आप लोग खुशी से विदा नहीं करते, तब तक मुझे रहना ही पड़ेगा।"

आशा पति की सफलता पर प्रसन्न होकर सखी से लिपट गई। बोली, "तो यह बात पक्की रही।" और तुरन्त अपना हाथ बढ़ाकर कहने लगी, "रक्खो हाथ पर हाथ, तीन बार वचन दो, जब तक हम लोग विदा नहीं करते तब तक रहोगी, रहोगी, रहोगी।"

विनोदिनी ने तीन बार वचन देकर प्रतिज्ञा की।

आशा ने कहा, "बहन किरकिरी, तुम्हें रहना पड़ा ही, फिर इतने मनौवल क्यों कराए? आखिर इनसे तो तुम्हें हार माननी ही पड़ी।"

विनोदिनी ने हंसकर कहा, "क्यों लालाजी, मैंने हार मानी है या तुमने?"

महेन्द्र अब तक ठगा-सा हो रहा था। उसे ऐसा लग रहा था, मानो उसके अपराध से सारा घर भर उठा है, लांछना ने मानो उसके सारे तन-मन को घेर लिया है। आशा से वह कैसे प्रसन्न मन से स्वाभाविक ढंग से बात करे? एक क्षण में वह कैसे अपने वीभत्स असंयम को सरल-सरस हंसी-मजाक में बदल डाले? ऐसा पैशाचिक इन्द्रजाल रचना उसके बूते के बाहर की बात है। उसने गम्भीर मुंह से कहा, "हार तो मेरी ही हुई है।" और फिर वह तुरंत कमरे से निकलकर बाहर चला गया।

ठीक इसी समय बिहारी राजलक्ष्मी से कुछ देर गपशप करके महेन्द्र की खोज में आ रहा था। महेन्द्र उसे दरवाजे के सामने देखते ही बोल उठा, "भाई बिहारी, मुझ जैसा पाखण्डी ससार में शायद ही कोई हो।" यह बात उसने आवेग में आकर ऐसे जोर से कही कि वह कमरे के भीतर वालों ने भी सुन ली।

कमरे के भीतर से उसी क्षण पुकार आयी, "बिहारी लालाजी।"

बिहारी ने कहा, "जरा ठहरो, भाभी, अभी आया।"

विनोदिनी ने कहा, "एक बार सुन तो जाओ।"

बिहारी ने कमरे में घुसते ही एक क्षण के लिए एक बार आशा की तरफ देखा, घूंघट में से आशा का मुंह जितना देख सका, उसमें अफसोस या वेदना का कोई निशान ही दिखाई नहीं दिया। आशा ने उठके जाने की कोशिश की तो विनोदिनी ने उसे ज़बरदस्ती पकड़के बिठा लिया और कहने लगी, "अच्छा लालाजी, मेरी आंख की किरकिरी' के साथ तुम्हारा क्या सौत का नाता है? तुम्हें देखते ही यह भागना क्यों चाहती है?" आशा ने बहुत शर्माकर विनोदिनी को नोचते हुए डांट दिया।

बिहारी ने हंसते हुए जवाब दिया, "विधाता ने मुझे वैसा सुन्दर नहीं बनाया न, इसीसे।"

विनोदिनी बोली, "देख लिया न किरकिरी। बिहारी लालाजी भी बचाकर बात करना जानते हैं। तेरी पसंद को दोष न देकर विधाता पर मढ़ दिया दोष। मगर लक्ष्मण जैसा ऐसा सुलक्षण देवर पाकर तैने उसकी कद्र नहीं जानी। तेरा भाग्य ही खराब है।"

बिहारी ने कहा, "इससे अगर तुम्हें मुझपर दया आती हो, भाभीजी, तो फिर मुझे अफसोस ही किस बात का।"

विनोदिनी ने कहा, "समुद्र तो सामने पड़ा है, फिर भी मेघ की धारा के बिना चातक की प्यास क्यों नहीं बुझती?"

आशा को पकड़के नहीं रखा जा सका। वह जबरदस्ती विनोदिनी से अपना हाथ छुड़ाकर चली गई। बिहारी भी जाना चाहता था, इतने में विनोदिनी बोल

उठी, "लालाजी, महेन्द्र बाबू को हो क्या गया है, बता सकते हो?"

सुनकर बिहारी ठिठककर खड़ा हो गया। बोला, "सो तो मैं नहीं जानता। कुछ हुआ है क्या?"

"क्या मालूम लालाजी, मुझे तो लक्षण कुछ अच्छे नहीं दिखाई देते। मुझे अपनी 'किरकिरी' के लिए बड़ी चिन्ता हो रही है।" इतना कहकर उसने एक लम्बी सांस ली, फिर बोली, "लालाजी मैं तो हमेशा यहां रहूंगी नहीं, पर मेरे चले जाने के बाद मेरी 'किरकिरी' पर तुम ज़रा दृष्टि रखना वह दुखी न होने पाए।"

बिहारी बोल उठा, भाभी, तुम्हें यहां रहना ही होगा। संसार में तुम्हारा अपना कहने को कोई नहीं। इस मासूम बालिका के सुख–दुख की रक्षा का भार तुम ले लो। तुम इसे छोड़कर चली जाओगी, तो मुझे तो फिर कोई उपाय ही नहीं दीखता।"

विनोदिनी बोली, "लालाजी, तुम संसार की रीति जानते हो। यहां मैं हमेशा कैसे रह सकती हूं? लोग क्या कहेंगे?"

बिहारी ने कहा, "लोग जो कहें, सो कहते रहें, तुम उधर कान ही मत दो। तुम देवी हो, असहाय बालिका की संसार के कठोर आघातों से रक्षा करना तुम्हारे ही लायक काम है। भाभी, मैंने भी तंग दिल, साधारण नीच लोगों की तरह तुम्हारे सम्बन्ध में अपने मन में नीच धारणा को स्थान दिया था। एक बार तो ऐसा भी समझ लिया था कि तुम आशा के सुख से ईर्ष्या कर रही हो और चाहती हो, किन्तु उस बात को जीभ से निकालना भी पाप है। उसके बाद, मुझे तुम्हारे देवी हृदय का परिचय मिला और तुमपर गम्भीर भक्ति हो गई मेरी। इसीसे आज तुम्हारे आगे अपने सारे अपराध स्वीकार किए बिना मुझसे रहा नहीं गया।"

विनोदिनी का सारा शरीर खिल उठा। यद्यपि वह छल न कर रही थी, तो भी बिहारी के इस भक्ति-उपहार को झूठा समझ–कर वह अपने मन में भी उसे लौटा न सकी। ऐसी चीज़ उसे कभी भी किसीसे नहीं मिली। क्षण–भर के लिए उसे ऐसा लगा कि मानो वह वास्तव में पवित्र है, उन्नत है और आशा के प्रति एक प्रकार की अनिर्देश्य दया से उसकी आंखों से आंसू गिरने लगे। उन आंसुओं को उसने बिहारी से छिपाया नहीं। उस आंसुओं की धारा ने विनोदिनी में ऐसा एक मोह पैदा कर दिया कि जिससे वह स्वयं अपने आगे अपने को पूजा योग्य समझने लगी।

विनोदिनी को आंसू गिराते देख बिहारी अपने आंसू रोकने के लिए उठकर महेन्द्र के कमरे मे चला गया। महेन्द्र ने सहसा अपने को 'पाखण्डी' क्यो घोषित किया, बिहारी को इसका कोई मतलब ढूंढ़े नहीं मिला। ऊपर महेन्द्र के कमरे में जाकर उसने देखा, महेन्द्र नहीं हैं। मालूम हुआ कि वह बाहर घूमने गया है।

बिहारी अपने मन में उधेड़-बुन करता हुआ अपने घर चला गया।

विनोदिनी ने आशा को अपने कमरे में ले जाकर, उसे छाती से लगाकर आं में आंसू भरकर कहा, "बहन किरकिरी, मैं बड़ी अभागिन हूं, मैं बड़ी कुलक्ष हूं।"

आशा ने दुखी होकर उसे अपनी बाहों में बांध लिया और स्नेह से गीली आंख में कहा, "क्यों बहन, ऐसी बात क्यों कर रही हो?"

विनोदिनी रोदनोच्छ्वसित बच्चे की तरह आशा की छाती में अपना मुं रखकर बोली, "मैं जहां भी रहूंगी, वहां सिर्फ बुरा ही बुरा होगा। छोड़ दे, बहन मुझे अपने जंगल देश में जाकर रहने दे।"

आशा ने विनोदिनी की ठोंड़ी से हाथ लगाकर उसका मुह ऊपर उठाते हुए कहा, "मेरी लक्ष्मी बहन है न, ऐसी बात मुंह से न निकाल, तेरे बिना मैं नहीं रह सकती। मुझे छोड़ जाने की बात तेरे मन में आई कैसे!"

इतने में सहसा बिहारी आ गया। महेन्द्र से जब उसकी भेंट नहीं हुई तो उसने सोचा कि किसी बहाने से विनोदिनी के पास जा कर महेन्द्र और आशा के बीच पैदा होने वाली आशंका के विषय में कुछ जानकारी हासिल कर ली जाए तो अच्छा। वह विनोदिनी से इस बात का अनुरोध करने के लिए कि महेन्द्र को वे कल सवेरे उसके घर ज़रूर भेज दें, वहीं खाना-पीना होगा, सीधा उसके कमरे में चल आया। बिहारी के मुंह से 'विनोदा भाभी' निकला ही था कि उसने सहसा लैम्प के उजाले में बाहर से ही देखा, दोनों सखियां बाहों के घेरे में हैं और दोनों की आंखों में आंसू चमक रहे हैं। देखते ही वह ठिठककर जहां का तहाँ खड़ा रह गया।

सहसा आशा को ऐसा लगा कि ज़रूर बिहारी ने उसकी 'आंख की किरकिरी' को कोई बुरी बात कही होगी या कोई निन्दा की बात कही होगी, इसी से पि आज उसने इस तरह चले जाने की बात उठाई है। उसने सोचा, 'बिहारी बाबू य बड़ा अन्याय करते हैं। उसका मन साफ नहीं है।' आशा असन्तुष्ट होकर कमरे बाहर निकल गई। बिहारी भी विनोदिनी के प्रति अपनी भक्ति की मात्रा बढ़ा भरे हुए मन से जल्दी से अपने घर चला गया।

उस दिन रात को महेन्द्र ने आशा से कहा, "चुन्नी, मैं कल सवेरे की गाड़ी काशी जा रहा हूं।"

आशा की छाती धड़क उठी, बोली, "क्यों?"

महेन्द्र ने कहा, "बहुत दिनों से चाची को नहीं देखा। एक बार मिल आउ

सुनकर आशा को बड़ी शर्म महसूस हुई। यह बात बहुत पहले ही उसके म उगनी होनी चाहिए थी। अपने सुख-दुःख के आकर्षण में स्नेहमयी मौसी को हुए थीं वह, किन्तु महेन्द्र ने उस प्रवास में रह रही तपस्विनी की याद की, इ

अपने को वह सख्त दिल समझकर धिक्कारने लगी।

महेन्द्र से कहा, "चाचीअपने जीवन के एकमात्र 'स्नेह के धन' को मेरे ही हाथ सौंपकर चली गई हैं, एक बार उन्हें देखे बिना मेरा मन चैन नहीं पा सकता।"

कहते-कहते महेन्द्र का गला भर आया। स्नेहपूर्ण खामोश आशीर्वाद और अनकही मंगल-कामना के साथ बार-बार वह आशा के ललाट और माथे पर अपना दाहिना हाथ फेरने लगा। आशा इस अचानक स्नेह के आवेग का सम्पूर्ण मर्म न समझ सकी, सिर्फ उसका हृदय पिघल उठा और आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगे। आज ही शाम को विनोदिनी ने बेकार ही स्नेह की अधिकता से उससे जो बातें कही थीं, उनकी उसे याद हो आई। महेन्द्र और विनोदिनी की बातों में कहीं कोई सम्बन्ध है या नहीं, सो भी उसकी समझ में नहीं आया, किन्तु इतना उसने अवश्य महसूस किया कि मानो यह उसके जीवन में किसी बात की सूचना है। अच्छी है या बुरी, कौन जाने!

भय से बेचैन मन से उसने महेन्द्र को अपनी बाहों में बांध लिया। महेन्द्र आशा की उस अकारण आशंका की तेजी का अहसास करने लगा, बोला, "चुन्नी, तुमपर तुम्हारी पुण्यवती मौसी का आशीर्वाद है, तुम्हें कोई डर नहीं। वे तुम्हारी ही भलाई के लिए अपना सब कुछ त्यागकर चली गई हैं, तुम्हारा कभी भी कुछ बुरा नहीं हो सकता।"

आशा ने तब दृढ़ मन से सम्पूर्ण भय दूर कर दिया। पति के इस आशीर्वाद को उसने अक्षय कवच के रूप में ग्रहण किया। वह मन ही मन बार-बार अपनी मौसी की पवित्र चरण रज माथे से लगाती रही और एकाग्र मन से कहने लगी, "मौसी, तुम्हारा आशीर्वाद सदा मेरे पति की रक्षा करता रहे।"

दूसरे दिन महेन्द्र चला गया। विनोदिनी को वह कुछ भी नहीं कह गया। विनोदिनी ने मन ही मन कहा, 'खुद तो अन्याय करना और गुस्सा मेरे ऊपर! ऐसा साधु तो मैंने कहीं नहीं देखा, पर ऐसा साधुपन ज्यादा दिन टिकता नहीं।'

२२

संसार छोड़ देने वाली अन्नपूर्णा ने बहुत दिन बाद अचानक जो महेन्द्र को आते देखा, तो एक ओर जैसे वे स्नेह के आनन्द में फूली न समाई, दूसरी ओर वैसे उन्हें भय भी हुआ कि आशा को लेकर मां से महेन्द्र का कोई विरोध तो नहीं उठ खड़ा हुआ, जिसकी शिकायत लेकर वह यहां दौड़ा आया हो तसल्ली पाने के लिए।

किन्तु महेन्द्र ने आशा और मां के विषय में कोई चर्चा ही नहीं की। तब अन्नपूर्णा की आशंका दूसरी तरफ मुड़ी। जो महेन्द्र आशा को छोड़कर कालेज नहीं जा

सकता था, वह आज चाची की खबर लेने काशी कैसे चला आया? तो क्या आशा के प्रति महेन्द्र का आकर्षण ढीला होता जा रहा है? अन्त में महेन्द्र से उन्होंने कुछ आशंका के साथ पूछा, "महेन, तुझे अपनी चाची की सौगन्ध है, सच-सच बताना, चुन्नी अच्छी तरह है?"

महेन्द्र ने कहा, "हां, सब अच्छी तरह हैं।"

अन्नपूर्णा ने फिर पूछा, "आजकल वह रहती कैसे है? तुम लोगों का लड़कपन वैसा ही बना हुआ है या काम-काज भी कुछ सम्हालने लगे हो?"

महेन्द्र ने कहा, "लड़कपन अब बिलकुल ही जाता रहा है। सब झगड़ों की असल जड़ वो 'चारुपाठ' किताब न जाने कहां गायब हो गई, कुछ पता ही नहीं। तुम रहतीं तो देखकर खुश होतीं कि पढ़ने-लिखने में स्त्रियों को जितनी लापरवाही करनी चाहिए, चुन्नी ने अपने उस कर्तव्य में जरा भी लापरवाही नहीं की।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "बिहारी क्या करता है?"

महेन्द्र ने कहा, "अपना काम छोड़कर बाकी सब करता है। नायब-गुमाश्ते ज़मीन-जायदाद का काम देखते हैं। किस दृष्टि से देखते हैं, सो मैं नहीं कह सकता। उसका तो हमेशा से यही हाल है। उसका निज का काम और लोग देखते हैं, और औरों का काम वह खुद देखता है।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "अच्छा महेन, वो क्या ब्याह करेगा ही नहीं?"

महेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा, "कहां, कोई लक्षण तो नहीं दिखाई देता।"

सुनकर अन्नपूर्णा के हृदय के भीतर चोट पहुंची। वे निश्चित जान गई हैं कि उनकी बहनौत को देखकर एक बार बिहारी बड़े आग्रह के साथ ब्याह करने को तैयार हो गया था, किन्तु उसका वह साफ आग्रह अन्याय के साथ अचानक रौंद दिया गया है।

महेन कभी हंसी-हंसी में और कभी गम्भीरता के साथ घर के नये-से-नये सभी समाचार सुनाता रहा, किन्तु विनोदिनी का उसने कहीं कोई उल्लेख तक नहीं किया।

महेन्द्र काशी में अन्नपूर्णा के पास रहकर प्रतिदिन सुख का अनुभव कर रहा था। कई दिनों से सदा की धर्मपरायणा अन्नपूर्णा का स्नेहपूर्ण चेहरा देखते-देखते घर-गृहस्थी का कर्तव्य-पालन उसे बड़ा सहज और सुखकर मालूम होने लगा। उसे ऐसा लगने लगा कि विनोदिनी कुछ भी नहीं है। यहां तक कि उसके चेहरे को भी वह अपने मन में स्पष्ट रूप न दे सका। अन्त में महेन्द्र काफी ज़ोर के साथ मन ही मन कहने लगा, 'आशा को मेरे हृदय से एक बाल बराबर भी हटा सके, संसार में ऐसा तो मुझे कहीं कोई दिखाई नहीं पड़ता।'

महेन्द्र ने अन्नपूर्णा से कहा, "चाची, कालेज में मेरी गैरहाज़िरी बढ़ती जा रही है, अब मुझे जाना चाहिए। यद्यपि तुम घर की ममता त्यागकर इतनी दूर एकान्त में आकर रह रही हो, तो भी आज्ञा दो, कभी-कभी आकर मैं तुम्हारी चरणों की धूल ले जाया करूं।"

महेन्द्र ने घर आकर जब आशा को उसकी मौसी की तरफ से दो स्नेह भरे उपहार दिए, सिन्दूर की डिबिया और सफेद पत्थर की छोटी-सी घंटी, तब आशा की आंखों से झरझर आंसू झरने लगे। मौसी के परम स्नेहमय धैर्य और उनपर अपने और सास के बखेड़ों की याद करके आशा का दिल बेचैन हो उठा। उसने पति से कहा, "मेरी बड़ी इच्छा होती है कि मैं भी एक बार मौसी के पास जाकर उनसे क्षमा मांग आऊं और उनके चरणों की धूल ले आऊं। तुम मेरी इतनी-सी प्रार्थना को क्या किसी भी तरह पूरी नहीं कर सकते?"

महेन्द्र आशा की वेदना को समझ गया और कुछ दिन के लिए उसे मौसी के पास काशी भेजने को राज़ी भी हो गया, किन्तु फिर से कालेज की गैरहाज़िरी करके आशा को काशी पहुंचाने में उसका मन ढुलमुल होने लगा।

आशा ने कहा, "मेरी ताईजी जल्दी ही काशी जाने वाली हैं, उनके साथ भेज दो तो क्या हर्ज है?"

महेन्द्र ने मां से जाकर कहा, "मां, बहू एक दफे काशी जाना चाहती है, चाची से मिलने।"

राजलक्ष्मी ने श्लेष वाक्य में कहा, "बहू जाना चाहती हैं, तो ज़रूर जाएंगी, जाओ, उन्हें ले जाओ।"

महेन्द्र ने फिर अन्नपूर्णा के पास जाना-आना शुरू कर दिया है, यह उन्हें अच्छा नहीं लगा। बहू के जाने की बात सुनकर वे भीतर ही भीतर और भी नाराज़ हो उठीं।

महेन्द्र ने कहा, "मेरा कालेज चालू है, मैं नहीं जा सकूंगा उसके ताऊ जा रहे हैं, उनके साथ चली जाएगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "यह तो और भी अच्छी बात है। उसके ताऊ बड़े आदमी ठहरे, हम जैसे गरीबों की कभी छाया तक नहीं खूंदते। बहूरानी अगर उनके साथ जा सकीं, तो हमारा कितना गौरव बढ़ेगा!"

इस तरह उत्तरोत्तर मां के श्लेष वाक्य सुनते-सुनते महेन्द्र का मन सहसा कठोर होकर मुंह खड़ा हुआ। उसने मां को कोई उत्तर न देकर आशा को काशी भेजने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली और बड़ी तेज़ी से वहां से चल दिया।

बिहारी जब राजलक्ष्मी से मिलने आया तब उन्होंने उससे कहा, "सुन लिया, बिहारी, हमारी बहूरानी काशी जाना चाहती हैं?"

बिहारी ने कहा, "तुम कहती क्या हो, मां! महेन भइया फिर कालेज का हर्ज करके काशी जाएंगें?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "नहीं-नहीं, महेन क्यों जाने लगा? तब फिर बीवी का 'बीवियाना' कहां रहा? महेन्द्र यहीं रहेंगे, बहूरानी अपने ताऊ महाराज के साथ काशी पधारेंगी! अब क्या है, बिहारी, सब 'साहब-बीबी' बने जाते हैं।"

बिहारी भीतर ही भीतर उद्विग्न हो उठा, किन्तु आधुनिक साहबी फैशन की दुश्चिन्ता उसका कारण नहीं। बिहारी सोचने लगा, 'मामला क्या है? महेन्द्र जब काशी गया, तब आशा यहीं रही और महेन्द्र जब यहां आया, तब आशा जाना चाहती है! तो क्या दोनों के बीच कोई ज़बरदस्त मनमुटाव हो गया है? किन्तु इस तरह कितने दिन चलेगा? मित्र होकर भी मैं क्या इसका कोई प्रतिकार नहीं कर सकता, दूर खड़ा तमाशा देखता रहूंगा?'

माता के व्यवहार से बेहद नाराज़ होकर महेन्द्र अपने सोने के कमरे में जाकर बैठा था। इस बीच में विनोदिनी महेन्द्र से मिली नहीं थी, इसलिए आशा बगल के कमरे में बैठी विनोदिनी से महेन्द्र के पास चलने के लिए आग्रह कर रही थी।

इतने में बिहारी के आकर महेन्द्र से कहा, "आशा भाभी का काशी जाना क्या तय हो चुका है?"

महेन्द्र ने कहा, "होता क्यों नहीं? रूकावट क्या है?"

बिहारी ने कहा, "बाधा की बात कौन कह रहा है? किन्तु अचानक ऐसी ख़ामखयाली तुम लोगों के दिमाग में आई कैसे?"

महेन्द्र ने कहा, "मौसी से मिलने की इच्छा या दूर बसे अपनों के लिए बेचैनी दिमाग में आना कोई विचित्र बात नहीं। मानव चरित्र में कभी-कभी ऐसा हुआ ही करता है।"

बिहारी ने कहा, "तुम साथ जा रहे हो?"

प्रश्न सुनते ही महेन्द्र ताड़ गया कि बिहारी शायद इसी बात की आलोचना करने आया है कि ताऊ के साथ आशा का काशी जाना उचित नहीं। इसलिए उसने इस डर से कि बात-बात में बात न बढ़ जाए और उसका क्रोध तेज़ न हो उठे, संक्षेप में कह दिया, "नहीं।"

बिहारी महेन्द्र को पहचानता है। उसका भीतरी गुस्सा बिहारी से छिपा न रहा। वह बोला, "साथ में विनोदा भाभी जाएं तो कैसा रहे?

महेन्द्र गरज उठा, बोला, "सुनो बिहारी! तुम अपने मन की बात साफ़-साफ़ कह डालो। मेरे साथ छल-छन्द करने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं जानता हूं, तुम भीतर ही भीतर मुझ पर सन्देह करते हो कि मैं विनोदिनी से प्रेम करता हूं। मैं प्रेम

नहीं करता। मेरी रक्षा के लिए तुम्हें पहरा देते फिरने की ज़रूरत नहीं। तुम अब अपनी रक्षा करो। यदि सरल मित्रता का भाव तुम्हारे मन में होता, तो बहुत दिन पहले तुम मुझसे अपने मन की बात कह देते और अपने को मित्र के घर के भीतर से बहुत दूर ले जाते। अब मैं तुम्हारे मुंह पर साफ-साफ कहता हूं, तुम आशा से प्रेम करते हो।"

ज़बरदस्त चोट या दर्द के स्थान को दोनों पांवों से रौंद देने से आहत व्यक्ति जैसे एक क्षण भी विचार न करके तुरन्त आघात देने वाले को ज़ोर से धक्का देकर फेंक देने की कोशिश करता है, रुंधे गले बिहारी भी उसी तरह अपना सफेद-फक मुंह लिए कुर्सी से उठकर महेन्द्र की तरफ झपटा, किन्तु दूसरे ही क्षण सहमा ठिठककर बड़ी मुश्किल से गले से आवाज़ निकालकर बोला, "ईश्वर तुम्हें क्षमा करें, मैं जाता हूं।" और लड़खड़ाता हुआ घर से बाहर निकल गया।

इतने में बगल के कमरे से बाहर निकलकर विनोदिनी ने पीछे से पुकारा 'बिहारी लालाजी!"

बिहारी ने दीवार के सहारे खड़े होकर ज़रा हंसने की कोशिश करते हुए कहा, "क्या है, विनोदा भाभी?"

विनोदिनी ने कहा, "लालाजी, किरकिरी के साथ मैं भी काशी जाऊंगी।"

बिहारी ने कहा, "नहीं भाभी, नहीं, यह नहीं होगा, हरगिज़ नहीं होगा। तुमसे मैं विनती करता हूं, मेरी बात पर तुम कुछ भी मत करना। मैं यहां कोई भी नहीं हूं, मैं यहा की किसी भी बात में दखल नहीं देना चाहता, इससे अच्छा नहीं होगा। तुम देवी हो, तुम जो अच्छा समझो सो करो। मैं चल दिया।"

इतना कहकर बिहारी ने विनोदिनी को विनम्र नमस्कार किया और तुरन्त वहां से चल दिया।

विनोदिनी ने उसे टोकते हुए कहा, "मैं देवी नहीं हूं, लालाजी, ज़रा सुन जाओ। तुम्हारे चले जाने से यहां किसी की भी भलाई नहीं होगी। पीछे तुम मुझे दोष न देना!"

बिहारी चला गया। महेन्द्र ठगा-सा हुआ बैठा था। विनोदिनी उस पर जलते हुए वज्र के समान एक कठोर कटाक्ष फेंकती हुई बगल के कमरे में चली गई। उस कमरे में आशा न सहे जा सकने वाले संकोच के मारे मरी जा रही थी। बिहारी उससे प्रेम करता है, यह बात महेन्द्र के मुंह से सुनकर उससे अपना मुंह उठाए नहीं उठ रहा था, किन्तु उस पर विनोदिनी को आज दया नहीं आई।

महेन्द्र ने उस दिन जो आवेग में आकर बिहारी से कह डाला था कि 'मैं पाखण्डी हूं' उसके लिए आवेश शान्त होने के बाद से वह बिहारी के आगे कुछ लज्जित-सा

रहता था। उस घटना के बाद से जब भी बिहारी उसके सामने आता था, तभी उसे ऐसा लगता था कि बिहारी मानो जिज्ञासा के साथ उसके भीतर की बातों का पता लगाता फिर रहा है। उसका यह सन्देहभरा क्रोध लगातार जमता ही चला जा रहा था और आज ज़रा-सा आघात लगते ही वह फूट पड़ा।

किन्तु विनोदिनी का बगल के कमरे से इस तरह छटपटाहट के साथ दौड़कर आना, इस तरह आर्त कण्ठ से बिहारी को रोकने की कोशिश करना और बिहारी के आदेशानुसार आशा के साथ काशी जाने को तैयार हो जाना, ये सब बातें महेन्द्र के लिए कल्पना से परे थीं। इस दृश्य ने महेन्द्र को तेज़ झटके से बेचैन कर दिया। वह बार-बार बेकार के ताप के साथ सोचने लगा कि 'विनोदिनी ने मेरे मुंह से सुन लिया कि मैं उसे नहीं चाहता।'

२३

महेन्द्र सोचने लगा, 'मैं उससे प्रेम करता हूं' यह न सही, किन्तु 'मैं उससे प्रेम नहीं करता,' यह तो बड़ी कठोर बात है। ऐसी स्त्री कौन है, जिसे इस बात से चोट न पहुंचे? यह बात ठीक से नहीं कही जा सकती कि 'मैं उसे चाहता हूं,' किन्तु 'मैं नहीं चाहता' इस बात को ज़रा हलकी करके नरम करके जताना ज़रूरी था। विनोदिनी के मन में ऐसी एक कठोर, किन्तु गलत धारणा होने देना अन्याय है।'

सोचते-सोचते महेन्द्र अपने बक्स में से फिर उन तीनों चिट्ठियों को निकालकर पढ़ने लगा और मन ही मन कहने लगा, 'विनोदिनी मुझसे प्यार करती है, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु कल वह बिहारी के आगे इस तरह क्यों आ पड़ी? सिर्फ मुझे दिखाने के लिए? मैंने जब कि उससे स्पष्ट ही कह दिया था कि मैं उसे नहीं चाहता, तो वह किसी मौके से मेरे प्रेम को न ठुकराती तो क्या करती? इस तरह मुझसे अपमानित होकर शायद वह बिहारी से प्रेम कर भी सकती है।'

महेन्द्र का रंज इतना ज्यादा बढ़ गया कि अपनी बेचैनी से वह खुद ही चकित और भयभीत हो उठा। मान लो, विनोदिनी ने सुन ही लिया कि महेन्द्र उससे प्यार नहीं करता, तो उसमें दोष क्या हो गया? मान लो, इस बात से अभिमानिनी विनोदिनी महेन्द्र की तरफ से अपना मन खींच लेने की कोशिश करेगी, तो इससे उसका नुकसान क्या? आंधी-तूफान के समय नाव की जंजीर जैसे लंगर को ज़ोर से खींचे रहती है, महेन्द्र वैसी ही बेचैनी के साथ आशा को मानो ज़रूरत से ज्यादा ज़ोर लगाकर पकड़े रहने की कोशिश करने लगा।

रात को महेन्द्र ने आशा को अपनी छाती के पास खींचते हुए कहा, "चुन्नी, तुम मुझे कितना प्यार करती हो, ठीक-ठीक बताना?"

आशा सोचने लगी, यह कैसा प्रश्न? बिहारी को लेकर आज जो एक बेहद शर्मनाक बात उठी है, उसी से क्या उस पर ऐसी सन्देह की छाया पड़ रही है? उसने मारे शर्म के मरकर कहा, "छी-छी, आज तुम ऐसी बात क्यों पूछ रहे हो? मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं, तुम मुझसे खुलासा कहो, मेरे प्यार में तुमने कब कहां क्या कमी पाई है?"

महेन्द्र ने आशा को पीड़ित करके उसकी मिठास निकाल लेने की गरज से कहा, "तो फिर तुम काशी क्यों जाना चाहती हो?"

आशा ने कहा, "मैं काशी नहीं जाना चाहती—मैं कहीं भी नहीं जाना चाहती।"

महेन्द्र ने कहा, "इसके पहले तो जाना चाहती थीं?"

आशा ने अत्यन्त व्यथित होकर कहा, "तुम्हें तो मालूम है, मैं क्यों जाना चाहती थी।"

महेन्द्र ने कहा, "मुझे यहां अकेला छोड़कर अपनी मौसी के पास शायद तुम ज्यादा आराम से रहतीं?"

आशा ने दृढ़ता के साथ कहा, "नहीं, कभी नहीं। मैं वहां आराम के लिए नहीं जाना चाहती थी।"

महेन्द्र ने कहा, "मैं सच कहता हूं, चुन्नी, तुम और किसी से ब्याह करतीं तो बहुत ज्यादा सुखी हो सकती थीं।"

इस बात को सुनते ही आशा क्षण में महेन्द्र की छाती के पास से हटकर तकिये से मुंह ढककर, पत्थर की तरह निश्चेष्ट हो रही और दूसरे ही क्षण अपने रोने को वह रोके न रोक सकी। महेन्द्र ने तसल्ली देने के लिए उसे छाती से लगाने की कोशिश की, किन्तु आशा ने तकिया नहीं छोड़ा। पतिव्रता के इस अभिमान से महेन्द्र सुख से, गर्व से, धिक्कार से दुखी हो उठा।

जो बातें अब तक भीतर ही भीतर अहसास के रूप में थीं, उन सबने सहसा स्पष्ट शब्दों में परिस्फुट होकर सबके मन में एक तरह की हलचल मचा दी।

विनोदिनी अपने मन में सोचने लगी, ऐसे स्पष्ट दोषारोपण के विरूद्ध बिहारी ने कोई प्रतिवाद क्यों नहीं किया? बिहारी अगर झूठा प्रतिवाद भी करता, तो भी विनोदिनी शायद कुछ खुश ही होती। अच्छा हुआ, महेन्द्र ने बिहारी को जो चोट पहुंचाई है वह उसे मिलनी ही चाहिए थी। बिहारी सरीखा ऐसा महान पुरुष क्यों आशा से प्रेम करेगा? अच्छा हुआ, इस चोट ने बिहारी को दूर ढकेल दिया, यह अच्छा ही हुआ। इससे विनोदिनी मानो निश्चिन्त हो गई।

किन्तु बिहारी का वह मौत के तीर से जख्मी रक्त निचुड़ा सफेद-फक चेहरा विनोदिनी के सब काम में मानो उसके पीछे-पीछे फिरने लगा। विनोदिनी के

भीतर जो सेवापरायण नारी-प्रकृति थी वह उस सूखे चेहरे को देख-देखकर रोने लगी।

दो-तीन दिन तक सब कामों में इस तरह अनमनी रहने के बाद विनोदिनी से फिर रहा नहीं गया। उसने बिहारी के नाम एक तसल्ली का पत्र लिखाय। उसमें लिखा था:

''लालाजी, जब से मैंने तुम्हारा उस दिन का सूखा चेहरा देखा है, तब से मैं बराबर दिलो जान से यही कामना कर रही हूं कि तुम स्वस्थ होओ, तुम जैसे थे वैसे ही हो जाओ। तुम्हारी वह सहज-सरल हंसी अब मैं कब देखूंगी, तुम्हारी वे उदार बातें अब मैं कब सुनूंगी? तुम कैसे हो, दो लाइन लिखकर मुझे जता देना।

तुम्हारी

विनोदा भाभी।''

विनोदिनी ने यह चिट्ठी दरबान के हाथ बिहारी के घर भिजवा दी।

बिहारी ने कभी सपने में भी इस बात की कल्पना नहीं की थी कि उसके और आशा के विषय में महेन्द्र कभी भी इतना पिछड़ा होकर ऐसे गर्हित ढंग से ऐसी बात मुंह से निकाल सकता है कि 'आशा से बिहारी प्रेम करता है!' कारण, उसने खुद भी कभी ऐसी बात को स्पष्ट रूप से मन में स्थान नहीं दिया। पहले तो वह वज्राहत-सा हो गया, उसके बाद क्रोध से, घृणा से फड़फड़ाता हुआ कहने लगा, ''यह अन्याय है, गलत है, बेबुनियाद है।''

किन्तु बात जबकि एक बार मुंह से निकल चुकी है, तब उसे फिर पूरी तरह मार के मिटाया नहीं जा सकता। उसमें जितना-सा भी सत्य का बीज़ था, वह देखते-देखते अंकुरित हो उठने लगा। एक दिन वह 'लड़की देखने' महेन्द्र के साथ श्यामबाज़ार गया था और वहां शाम के समय बगीचे से फूलों की महक के बहाव में उसने जिस शर्मीली बालिका के नाजुक चेहरे को बिलकुल अपना समझकर भीगे-भीगे लगाव के साथ देखा था, आज उसी की उसे बार-बार याद आने लगी और अपनी छाती के पास वह कैसा तो एक भारी बोझ-सा अनभव करने लगा उसे ऐसा लगा, मानो एक बड़ी मुश्किल टीस उसके हृदय से लेकर कण्ठ तक डोल रही हो। बहुत रात तक छत पर पड़े-पड़े और मकान के सामने के रास्ते पर तेज़ी से टहलते-टहलते उसके मन में अब तक जो अनकहा था; वह व्यक्त हो उठा, जो थमा हुआ था वह उद्दाम हो उठा। अपने आगे भी जिसका कोई प्रमाण नहीं था, महेन्द्र की बात से मानो वह विराट प्राण पाकर बिहारी के भीतर-बाहर सब जगह फैल गया। तब उसने अपने को अपराधी समझा और मन ही मन कहा, 'मेरे लिए तो अब नाराज होना शोभा नहीं देता, महेन्द्र से क्षमा मांगने के बाद ही मुझे उससे विदा लेनी चाहिए। उस दिन मैं इस तरह चला आया मानो महेंन्द्र दोषी हो और मैं विचारक।

अपने उस अन्याय को मैं स्वीकार कर आऊंगा।'

बिहारी समझता था कि आशा काशी चली गई होगी। एक दिन शाम के वक्त वह आहिस्ते-आहिस्ते टहलता हुआ महेन्द्र के घर के सामने पहुंचा। राजलक्ष्मी के दूर के मामा साधुचरण सामने मिल गए, तो बिहारी ने उनसे पूछा, "इधर कई दिनों से मैं आ नहीं सका। यहां की खबर तो सब अच्छी है?"

साधुचरण ने सबका कुशल संवाद जता दिया।

बिहारी ने पूछा, "बहू काशी कब गई?"

साधुचरण ने कहा, "अभी नहीं गई, अब शायद जाएगी भी नहीं।" सुनते ही, कोई रूकावट न मानकर, बिहारी का मन घर के भीतर की तरफ दौड़ चला। पहले वह जैसे सहज स्वाभाविक भाव से, जैसे आनन्द से, आत्मीय की तरह परिचित जीने से खटखट सीढ़ियां चढ़ता हुआ भीतर चला जाया करता था, सबके साथ स्निग्ध कौतुक से हास्यलाप किया करता था, मन में किसी तरह का ख्याल ही नहीं उठता था, आज उन सब बातों को अपने लिए अवैध और दुर्लभ समझकर ही उसका चित बौरा उठा। आज और एक बार, अन्तिम बार उसी तरह भीतर जाकर घर के लड़के की तरह राजलक्ष्मी से बातचीत करके, एक बार घूंघट से ढकी आशा से 'भाभी' कहकर दो-चार मामूली बातें कर आना उसके लिए परम आकांक्षा का विषय हो उठा।

साधचरण ने कहा, "अंधेरे में खड़े कैसे रह गए भई, चलो भीतर चलो।" मामा की बात सुनकर बिहारी तेजी से कदम रखता हुआ कुछ दूर तक भीतर गया; और फिर अकस्मात् रूककर बोला, "जाता हूं, एक जरूरी काम है मुझे।" इतना कहकर वह जल्दी से अपने घर चला गया। और उसी दिन रात की गाडी से वह पश्चिम की तरफ घूमने चल दिया।

इधर जो दरबान विनोदिनी की चिट्ठी लेकर गया था, वह बिहारी के घर पर न मिलने से वापस लौट रहा था। महेन्द्र उस समय अपने मकान के सामने वाले छोटे-से बगीचे में टहल रहा था। उसने दरबान के हाथ में चिट्ठी देखकर पूछा, "किसकी चिट्ठी है ?"

दरबान ने सब बता दी । महेन्द्र ने उससे चिट्ठी ले ली ।

एक बार उसने सोचा कि चिट्ठी लेकर वह खुद विनोदिनी के पास जाए और अपराधिनी विनोदिनी का लज्जित चेहरा एक बार वह खुद देख आए । अपने मुंह से वह कुछ कहेगा-सुनेगा नहीं । इस चिट्ठी में विनोदिनी के लिए लज्जा की बात होगी ही, इसमें महेन्द्र को जरा भी सन्देह नहीं था । उसे याद उठ आई, पहले भी और एक दिन बिहारी के नाम इस तरह की चिट्ठी में क्या लिखा है, इस बात को जाने बगैर महेन्द्र को किसी भी तरह चैन नहीं पड़ा।

महेन्द्र ने छोटी–सी चिट्ठी खोलकर पढ़ ली। वह सहज–सरल भाषा में लिखी गई थी, इसलिए बिना बनावट के बहाव से साफ प्रकट हो रहा था। चिट्ठी को बार–बार पढ़कर और बहुत सोच–विचारकर भी महेन्द्र तय नहीं कर पाया कि विनोदिनी के मन की गति किस तरफ है। उसे बार–बार यही आशंका होने लगी कि 'मैंने जो उसका 'नहीं चाहता' कहकर अपमान किया है, उस अभिमान से ही विनोदिनी दूसरी तरफ मन लगाने की चेष्टा कर रही है। गुस्से में आकर मेरी आशा उसने बिल्कुल ही छोड़ दी है।'

वह सोचने लगा, 'विनोदिनी मुझे अगर मन ही मन चाहती है, मुझसे प्रेम करती है, तो यह उसके लिए मंगलकारी है, वह एक जगह बंधी रहेगी। मैं अपने मन को जानता हूं, मैं उसके साथ किसी तरह का अन्याय नहीं करूंगा। वह मुझसे बेखटके प्रेम कर सकती है। मैं आशा को प्यार करता हूं, मुझसे उसे कोई डर नहीं; किन्तु वह यदि और किसी तरफ मन दे तो उसका क्या सर्वनाश हो सकता है, कौन जाने।' अन्त में तय किया कि इसे खुद पकड़ाई न देकर विनोदिनी के मन को किसी मौके से और एक बार अपनी तरफ खींचना ही पड़ेगा।

महेन्द्र ने घर के भीतर प्रवेश करते ही देखा कि विनोदिनी रास्ते में खड़ी-खड़ी मानो किसी के लिए बेचैन होकर प्रतीक्षा कर रही है। देखते ही महेन्द्र के मन में चट से बैर भभक उठा। उसने कहा, "अजी यहां बेकार ही खड़ी हो, मुलाकात नहीं होने की। यह देखो, तुम्हारी चिट्ठी लौट आई है।" कहते हुए उसने चिट्ठी उसके सामने पटक दी। विनोदिनी ने कहा, "खुली हुई क्यों?"

महेन्द्र कुछ जवाब दिए बिना ही चला गया। विनोदिनी ने समझा कि बिहारी ने चिट्ठी खोली है और पढ़कर बिना उत्तर के ही वापस कर दी है। इससे उसके एड़ी से चोटी तक सारे शरीर में आग-सी लग गई। दीये के मुंह से जैसे जलती हुई तेल की बूंदें टपकती, हैं, ठीक वैसे ही बन्द कमरे में विनोदिनी की आंखों में से दिल की आग आंसू के रूप में झरने लगी। अपनी चिट्ठी को फाड़कर उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले, फिर भी उसे तसल्ली नहीं मिली।

२४

उस दिन नये फागुन में पहली बसन्त की हवा चलते ही आशा बहुत दिन बाद शाम के आरम्भ में छत पर चटाई बिछाकर बैठी थी। हाथ में एक मासिक पत्र लिए हुए उस हलकी रोशनी में वह कोई धारावाहिक लम्बी कहानी खूब मन लगाकर पढ़ रही थी। कहानी का नायक तब साल–भर बाद दुर्गा-पूजा की छुट्टियों में घर आते समय रास्ते में डाकुओं के हाथ पड़ गया था। आशा का हृदय

उद्वेग से कांपने लगा। उधर अभागिनी नायिका ठीक इसी समय मुसीबत का सपना देखकर रोती हुई जाग पड़ी। आशा से अपने आंसू रोके न रुके।

कहानी पढ़कर आशा ने निश्चय किया कि वह इसे महेन्द्र को पढ़ने देगी। कहानी पूरी पढ़कर ज्योंही उसने मासिक पत्र बन्द किया, त्योंहीं महेन्द्र आ पहुंचा। महेन्द्र का चेहरा देखते ही आशा बेचैन हो उठी। महेन्द्र ने जबरदस्ती खुशी ओढ़ने की कोशिश करते हुए कहा, ''अकेली छत पर बैठी किस भाग्यवान का ध्यान कर रही हो?''

आशा नायक–नायिका की बात बिलकुल भूल गई। बोली, ''आज तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं क्या?''

महेन्द्र ने कहा, ''तबीयत तो अच्छी ही है।''

आशा ने कहा, ''तो फिर भीतर ही भीतर किसी बुरी चिन्ता में होंगे। मुझे साफ–साफ बताओ न, क्या बात है?'

महेन्द्र ने आशा के पानदान से एक पान उठाकर मुंह में डालते हुए कहा, ''मैं सोच रहा था, तुम्हारी मौसी बेचारी ने कितने दिनों से तुम्हें देखा नहीं है एक बार अचानक अगर तुम उनके पास जा खड़ी हो, तो वे कितनी खुश होंगी?''

आशा कुछ उत्तर न देकर महेन्द्र के मुंह की तरफ देखती रही। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि महेन्द्र के मन में आज फिर क्यों यह बात नये रूप में उठी। आशा को चुप देखकर महेन्द्र बोला, ''जाने को जी नहीं चाहता तुम्हारा?''

आशा ने कहा, ''कालेज से छुट्टी लेकर तुम जब जा सकोगे, तभी मैं जाऊंगी तुम्हारे साथ।''

महेन्द्रने कहा, ''छुट्टी तो मिल जाएगी, पर मेरा जाना बिल्कुल असम्भव है। मुझे परीक्षा के लिए तैयारी करनी होगी।''

आशा ने कहा, ''तो जाने दो, फिर कभी देखा जाएगा।''

महेन्द्र ने कहा, ''क्यों, जाने क्यों दो? तुम तो जाना चाहती थीं, जाओ न, हो आओ।''

आशा ने कहा, ''नहीं, मेरी जाने की इच्छा नहीं।''

महेन्द्र ने कहा, ''उस दिन तो इतनी इच्छा थी, आज अचानक वह इच्छा कहां चली गई।''

इस बात पर आशा आंखे नीची करके चुप बैठी रही। बिहारी के साथ समझौता करने के लिए रुकावट के बिना मौके की चाह में महेन्द्र भीतर ही भीतर बेहद बेचैन हो उठा था। आशा को चुप रहते देख उसे बेकार क्रोध आ गया। बोला, ''तुम मुझ पर भीतर ही भीतर सन्देह करने लगी हो क्या? इसलिए शायद तुम मुझे अपनी आंखो के सामने रखकर पहरा देना चाहती हो?''

सहसा महेन्द्र की इस बौखलाहट को देखकर आशा चकित और भयभीत हो उठी। बहुत कोशिश करने पर भी उसे कोई उत्तर नहीं सूझा। आशा महेन्द्र पर सन्देह करके उसे अपनी आंखों के आगे रखकर पहरा देना चाहती है। यह सख्त मजाक है या बेरहम शक? सौगन्ध खाकर उसे इसका प्रतिवाद करना चाहिए या बात को हंसी में उड़ा देना चाहिए?

अकल की मारी आशा को फिर चुप रहते देखकर बेचैन महेन्द्र बड़ी तेजी से वहां से उठकर चला गया। शाम की चमक अंधेरे में डूब गई शुरु शाम की क्षणिक वसंत की हवा की जगह हेमन्त की हवा चलने लगी। आशा छत पर उसी तरह चटाई पर औंधी पड़ी रही।

बहुत रात बीते आशा जब भीतर अपने कमरे में गई, तो देखा कि महेन्द्र बिना बुलाए ही अकेला आकर सो गया है। बिस्तर पर जाकर उसी क्षण वह महेन्द्र के पैरों से लिपटकर पड़ रही। तब महेन्द्र ने करुणा से बेचैन होकर उसे ऊपर खींचने की कोशिश की, किन्तु आशा टस से मस न हुई। बोली, "मुझसे कोई दोष बन गया हो, तो मुझे तुम क्षमा करो।"

महेन्द्र ने भीगे मन से कहा, "तुम्हारा कोई दोष नहीं, चुन्नी। मैं बहुत ही निर्दयी हूं, पाखण्डी हूं, इसीसे बेमतलब तुम्हें चोट पहुंचाया करता हूं।"

सुनते ही आशा की आंखों से आसुओं की धारा बहने लगी और उससे महेन्द्र के चरणों का अभिषेक शुरू हो गया। महेन्द्र तुरन्त उठ बैठा और आशा को अपनी भुजाओं से उठाकर अपने पास सुला लिया।

रोने का बहाव थमने पर आशा ने कहा, "मौसीको देखने जाने की क्या मेरी इच्छा नहीं होती? पर तुम्हें छोड़कर अकेले जाने को जी नहीं चाहता। इसी से मैं नहीं गई। तुम गुस्सा मत होओ।"

महेन्द्र ने धीरे-धीरे आशा के भीगे गालों को पोंछते हुए कहा, "यह क्या गुस्सा होने की बात है, चुन्नी? मुझे छोड़कर नहीं जा सकतीं, इससे मैं गुस्सा होऊंगा। जाने दो, तुम्हें कहीं भी नहीं जाना होगा।"

आशा ने कहा, "नहीं, मैं काशी जाऊंगी।"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों?"

आशा ने कहा, "मैं तुमपर शक करती हूं, इसी से नहीं जाना चाहती, यह बात जब एक बार तुम्हारे मुंह से निकली है, तो मुझे कुछ दिन के लिए यहां से जाना ही होगा।"

महेन्द्र बोला, "पाप किया मैंने और उसका प्रायश्चित करोगी तुम?"

आशा ने कहा, "सो मैं नही जानती, पर पाप मेरे अन्दर कहीं न कहीं जरूर हुआ है, नहीं तो ऐसी सब अनहोनी बातें उठतीं ही कैसी? जिन सब बातों को मैं

सपने में भी नहीं सोच सकती थी वे बातें तुमसे मुझे क्यों सुननी पड़ती?"

महेन्द्र ने कहा, "इसका कारण यह है कि मैं कितना बुरा आदमी हूं सो तुम्हारे स्वप्न के भी दिखाई नहीं देता।"

आशा चंचल होकर बोली, "फिर? ऐसी बात तुम मत कहा करो, पर इस बार मैं काशी जाऊंगी जरूर।"

महेन्द्र हंसता हुआ बोला, "अच्छा जाओ, पर में अगर तुम्हारे पीछे बिगड़ गया, तो क्या होगा?"

आशा ने कहा, "देखो, तुम मुझे इतना डराओ मत। हां, नहीं तो, जैसे मैं मारे सोच के बेचैन हुई जा रही हूं।"

महेन्द्र ने कहा, "परन्तु होना तो चाहिए। अपने ऐसे पति को अगर तुम अपनी असावधानी से बिगड़ जाने दोगी, तो बाद में फिर किसे दोष देती फिरोगी?"

आशा बोली, "तुम्हें नहीं दूंगी, इसके लिए तुम चिन्ता मत करो।"

महेन्द्र ने कहा, "तब अपना दोष मान जाओगी न?"

आशा ने कहा, "एक बार नहीं, सौ बार।"

महेन्द्र ने कहा, "अच्छी बात है, तो कल तुम्हारे ताऊ से जाकर यह बात तय कर आऊंगा।" और फिर वह 'बहुत रात हो गई' कह कर करवट लेकर सो गया।

काशी जाने के एक दिन पहले आशा विनोदिनी के गले से लिपटकर बोली "बहन किरकिरी, मेरी देह छूकर एक बात बताओगी?"

विनोदिनी ने आशा के गाल मसकते हुए कहा, "क्या बात, बहन? तुम्हारा अनुरोध क्या मैं नहीं स्वीकारती?"

आशा ने कहा, "कौन जाने, बहन, आजकल तुम कैसी तो हो गई हो। उनके आगे अब तो तुम निकलना ही नहीं चाहती।"

विनोदिनी ने कहा, "क्यों नहीं निकलना चाहती, सो क्या तू नहीं जानती? उस दिन बिहारी बाबू से जो कुछ उन्होंने कहा, सो क्या तैने अपने कानों से नही सुना? जब ऐसी-ऐसी बातें उठने लगी हैं, तो तू ही बता, सबके सामने मेरा निकलना–बोलना क्या उचित है?"

"बात तो ऐसी न जाने कितनी उठा करती हैं। उन सबको अगर सह ही न सको तो फिर प्रेम ही क्या हुआ, बहन। उस बात को भूल जाओ।"

विनोदिनी ने कहा, "अच्छा बहन भूल जाऊंगी।"

आशा ने कहा, "मैं तो बहन, कल काशी जा रही हूं। उन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो, इस बात का तुम्हें विशेष ध्यान रखना होगा। अभी की तरह दूर–दूर रहने से काम नहीं चलेगा।

विनोदिनी चुप रही।

आशा ने उसका हाथ मसकते हुए कहा, "किरकिरी, तुझे मेरे गले की सौगन्ध है, इतना वचन तुझे देना ही पड़ेगा।"

विनोदिनी ने कहा, "अच्छा।"

२५

एक तरफ चांद डूबता है, तो दूसरी तरफ सूरज उगता है। आशा चली गई, किन्तु महेन्द्र के भाग्य के आकाश में विनोदिनी अब तक दिखाई नहीं दी। महेन्द्र घूमता-फिरता चक्कर लगाता रहता है, बीच-बीच में किसी न किसी बहाने से मां के कमरे में चला जाता है, किन्तु विनोदिनी बराबर उसे चक़मा देकर भाग जाती है, पकड़ाई नहीं देती।

राजलक्ष्मी ने महेन्द्र के ऐसे अत्यन्त शून्य भाव को देखकर सोचा, 'बहू चली गई है, इसी से इस घर में अब उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।' उन्होंने विनोदिनी को बुलाकर कहा, "इन्फ्लुएंज़ा के बाद से मुझे तो दमा की सी शिकायत होने लगी है, मुझसे तो सीढ़ी चढ़कर ऊपर जाया नहीं जाता, सो अब बेटी, तुम्हीं को महेन्द्र की पूरी देखभाल करनी होगी। जन्म की आदत है न उसकी, बिना सेवा-जतन के उससे रहा नहीं जाता। देखो न, बहू के जाने के बाद से कैसा तो हो गया है। बहू को भी धन्य है, चली कैसे गई!"

विनोदिनी ज़रा-सा सिर झकाकर बिस्तर की चादर ठीक करने लगी।

राजलक्ष्मी बोलीं, "क्यों बहू, क्या सोच रही हो? इसमें सोचने की तो कोई बात नहीं। लोग कुछ कहें तो कहते रहें—तुम तो कोई गैर नहीं हो।"

विनोदिनी ने कहा, "ज़रूरत क्या है, बुआजी!"

राजलक्ष्मी ने कहा, "अच्छा तो जाने दो। मुझसे जितना हो सकेगा, मैं ही करती रहूंगी।"

इतना कहकर वे उसी समय महेन्द्र का कमरा ठीक करने के लिए ऊपर जाने लगीं।

विनोदिनी ने घबराते हुए कहा, "नहीं मां, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं, तुम मत जाओ, मैं जाती हूं। मुझे माफ करो, बुआजी, जैसी तुम्हारी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगी मैं।"

आज महेन्द्र कालेज से लौटकर जो अपने कमरे में घुसा तो कमरा देखकर दंग रह गया। दरवाज़ा खोलते ही उसने देखा, धूप की सुगन्ध से घर महक रहा है। मसहरी के चारों तरफ गुलाबी रेशम की झालर लटक रही है। नीचे के बिस्तर पर दूध-सी सफेद चांदनी बिछी हुई है और उस पर पहले के पुराने तकियों की जगह

नये रेशमी और पशमी कामदार विलायती ढंग के चौकोर तकिये लगे हुए हैं और उन पर जो शिल्पकला का निदर्शन दीख रहा है वह विनोदिनी के सुनिपुण हाथों के बेहद परिश्रम का ही फल है।

दीवार पर महेन्द्र की जो मढ़ी हुई तस्वीर टंगी थी, उसके फ्रेम के चारों कोनों पर रंगीन फीते से सुनिपुण हाथों की चार गांठें लगी हुई थीं और उसके नीचे दीवार से सटी हुई एक तिपाई पर दोनों तरफ दो फूलदानों में दो गुलदस्ते ऐसे रखे हुए थे, जैसे कोई चुपके से आकर महेन्द्र की मूर्ति की पूजा कर गया हो। कुल मिलाकर कमरे का रंग-रूप बिल्कुल बदल गया था। पलंग जहां था, वहां से ज़रा हटा हुआ है। कमरे को दो भागों में बांट दिया गया है। पलंग के आगे सागौन की बनी दो अलगनियां लगाकर और उन पर कपड़े लटकाकर ऐसी आड़ कर दी गई है कि नीचे बैठने का गद्दा और रात को सोने का पलंग अपने-आप ही अलग हो गया है।

हारा—थका महेन्द्र नीचे के साफ बिस्तर पर लेट गया। नये तकिये पर सिर रखते ही उसके भीतर की एक मीठी मन मोह लेने वाली खूशबू ने उसे बेचैन कर दिया। तकियों के भीतर की रूई के साथ काफी मात्रा में नागकेशर के फूलों की रज और कुछ इत्र मिला हुआ था।

महेन्द्र की आंखें अपने-आप झपक आई। उसे ऐसा लगने लगा कि इन तकियों पर जिसके निपुण हाथ का शिल्प-चातुर्य अंकित है, उसकी नाजुक चम्पक अंगुलियों की महक भी मानो इनमें भरी हुई है।

इतने में एक हाथ में चांदी की तश्तरी में फल और मिठाई और दूसरे हाथ में कांच के गिलास में बर्फ-शुदा अनन्नास का शरबत लिए हुए दासी आई और दोनों पात्र महेन्द्र के सामने रखकर चली गई।

महेन्द्र जब जलपान कर चुका तब हाथ में चांदी का पानदान लिए हुए विनोदिनी ने धीरे—धीरे कमरे में प्रवेश किया और आते के साथ ही उसने हंसते हुए कहा, "इधर कई दिनों से मैं तुम्हारे खाने—पीने के समय हाज़िर नहीं हो सकी, मुझे माफ करना, लालाजी। और जो कुछ तुम्हारे मन में आए सो करना, पर तुम्हें मेरी सिर की कसम है, मेरी 'किरकिरी' को इस बात की खबर नहीं पड़नी चाहिए कि मैंने तुम्हारी देखभाल में कोई गलती की है। अपनी शक्ति-भर मैं कर रही हूं, पर क्या करूं, घर का काम ही जो मेरे ऊपर आ पड़ा है।"

इतना कहकर विनोदिनी ने पानदान महेन्द्र के सामने बढ़ा दिया। आज के पानों में केवड़े पड़े कत्थे की विशेष सुगन्ध पाई गई। महेन्द्र ने कहा, "देख-भाल में कभी-कभी इस तरह की गलती का होना अच्छा है।"

विनोदिनी ने कहा, "क्यों भला, सुनूं तो सही?"

महेन्द्र के कहा, "क्योंकि बाद में छेड़—छाड़कर व्याज समेत सब वसूल भी तो

किया जा सकता है।"

विनोदिनी बोली, "महाजन बताएंगे क्या कि ब्याज कितना हुआ?"

महेन्द्र ने कहा, "खाने-पीने के समय हाज़िर नहीं थीं, अब खाने–पीने के बाद हाज़िरी जोड़कर कुछ न कुछ तो बाकी निकलेगा ही।"

विनोदिनी ने हंसते हुए कहा, "तुम्हारा हिसाब जैसा कड़ा होता है, उसके लिहाज से तो जो एक बार तुम्हारे जाल में फंस गया उसका छुटकारा मुश्किल ही है।"

महेन्द्र बोला, "हिसाब की कड़ाई तो तभी सार्थक हो सकती है,जब वसूल करने में सफल होऊं।"

विनोदिनी ने कहा, "वसूल करने लायक यहां है ही क्या? लेकिन फिर भी कैद तो कर ही रक्खा है।" इतना कहने के बाद उसकी हंसी ने तुरन्त गम्भीर रूप धारण कर लिया।

महेन्द्र ने भी ज़रा कुछ गम्भीर होकर कहा, "किरकिरी, तो क्या तुम्हारे लिए यह जेलखाना है?"

इतने में नौकर आ गया और नियमानुसार तिपाई पर लैम्प रखकर चला गया। सहसा आंखों में बत्ती की रोशनी लगते ही विनोदिनी ने मुंह के सामने हाथ की आड़ करते हुए नीची निगाह करके कहा, "कौन जाने। तुम्हारे साथ बातों में कौन जीत सकता है भला। जाती हूं अब काम है।"

महेन्द्र ने सहसा उसका हाथ पकड़ लिया और कहा, "बन्धन जबकि स्वीकार ही कर लिया है, तो अब कहां जा रही हो?"

विनोदिनी ने कहा, "छी-छी, छोड़ो-छोड़ो। जिसके लिए भागने का कोई रास्ता ही नहीं, भला उसे बांधने की कोशिश क्यों?"

विनोदिनी ज़बरदस्ती हाथ छुड़ाकर चली गई।

महेन्द्र उसी बिस्तर पर महकते तकिये पर सिर रखे पड़ा रहा। उसकी छाती के भीतर का खून जोरों से दौड़ने लगा। सन्नाटे भरी शाम है और सूना कमरा, उसपर नये बसन्त की हवा चल रही है। मालूम होता है, विनोदिनी का मन अब पकड़ाई देना ही चाहता है और पगलाया महेन्द्र अब अपने को रोक नहीं सकेगा। महेन्द्र ने जल्दी से लैम्प बुझाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया, कांच की खिड़किया भी बन्द कर लीं और असमय ही पलंग पर जाकर पड़ रहा।

पलंग के बिछौने भी तो पुराने नहीं मालूम होते। नीचे चार–पांच तोशकें और उनपर साफ–सुथरा मुलायम, चिकना चादर बिछाकर वे बहुत ही गुलगुले और कोमल बना दिए गए हैं। यह नई सुगन्ध काहे की है? अगरबत्ती की है या खस की, कुछ समझ में नहीं आता। महेन्द्र बार–बार इधर–उधर करवट बदलने लगा।

रात को नौ बजे आकर बन्द दरवाज़े को किसीने खटखटाया। विनोदिनी ने बाहर से कहा, ''लालाजी,तुम्हारी थाली आ गई, किवाड़ खोलो।''

उसी क्षण महेन्द्र दरवाज़ा खोल देने के लिए हड़भड़ाकर उठ बैठा, दरवाज़े के पास पहुंचा, चटखनी पर हाथ रखा, किन्तु खोलते–खोलते रुक गया। लौटकर जमीन के गद्दे पर औंधा होकर पड़ रहा और फड़फड़ाता हुआ बोला, ''नहीं–नहीं, मुझे भूख नहीं है, मैं खाऊंगा नहीं।''

बाहर से बेचैन गले की आवाज सुनाई दी, ''तबीयत खराब तो नहीं हो गई? पानी ला दूं? और कुछ चाहिए क्या?''

महेन्द्र ने कहा, ''मुझे कुछ नहीं चाहिए, किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं मुझे।'

विनोदिनी ने कहा, ''तुम्हें मेरे सिर की सौगन्ध है, लालाजी, मुझसे कुछ छिपाओ मत। अच्छा, तबीयत खराब नहीं तो एक बार दरवाजा तो खोलो ज़रा।''

महेन्द्र ज़ोर से बोल उठा, ''नहीं, मैं नहीं खोलूंगा, हर्गिज नहीं। तुम जाओ।''

इतना कहकर वह जल्दी से उठकर फिर पलंग पर जा सोया और अन्तर्हिता आशा की याद को सूनी शय्या और बेचैन दिल के अन्धेरे में टटोलता हुआ ढूढ़ने लगा।

नींद जब किसी भी तरह आई ही नहीं, तब महेन्द्र उठ बैठा और बत्ती जलाकर आशा को चिट्ठी लिखने बैठ गया।

उसने लिखा, ''आशा, अब और ज़्यादा दिन मुझे यहां अकेला मत पड़ा रहने दो मत पड़ा रहने दो। मेरे जीवन की लक्ष्मी तुम हो। तुम पास नहीं रहतीं, तो मेरी सारी आदतें जंजीर तोड़कर मुझे कहां खींच ले जाती है, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। रास्ता देखकर चलता हूं, किन्तु उसका उजाला कहां है? मेरा उजाला तो तुम्हारे विश्वासभरी आंखों के प्रेम पगे दृष्टिपात में है। तुम जल्दी आओ, मेरी शुभे, मेरी ध्रुवे, मेरी एकमात्र तुम जल्दी आओ। आकर मुझे स्निग्ध करो, मेरी रक्षा करो, मेरा हृदय परिपूर्ण कर दो। तुम्हारे प्रति रत्ती भर भी अन्याय के महापाप से, तुम्हें ज़रा देर को भी भूल जाने की तकलीफ से मुझे बचाओ, मेरा उद्धार करो।''

इस तरह महेन्द्र अपनी ताड़ना करने के लिए आशा की ओर अपने को ज़ोर-ज़ोर से ढकेल-ढकेलकर बहुत रात तक बहुत-सी बातें लिखता रहा। दूर से दूर तक बहुत-से गिरजों की घड़ियों में ठन-ठन-ठन तीन बजते चले गए। महेन्द्र ने एकाग्र मन से आशा की याद करके और मन के बहाव को लम्बे पत्र में तरह-तरह से व्यक्त करके बहुत कुछ तसल्ली पाई और फिर बिस्तर पर जाकर पड़ते ही उसे नींद आ गई।

सवेरे जब महेन्द्र की आंख खुली तब काफी देर हो चुकी थी, कमरे में घाम आ गई थी। महेन जल्दी से उठ गया। गहरी नींद सो लेने के बाद पिछली रात की सारी घटना उसके मन में हलकी-सी हो आई। बिस्तर से उठकर टेबल के पास आकर उसने देखा कि पिछली रात को उसने जो चिट्ठी लिखी थी वह दवात के नीचे दबी रखी है। चिट्ठी को वह शुरु से आखीर तक पढ़ गया और मन ही मन बोला, किया क्या है मैंने। यह तो आशा पढ़ती तो क्या कहती चिट्ठी की आधी बातें तो उसकी समझ में ही नहीं आती।

रात को जरा से कारण से उसका हृदयावेग जो इस तरह गलत रूप से बढ़ गया था उसके लिए वह बहुत ही शर्म महसूस करने लगा। उस चिट्ठी के उसने टुकड़े-टुकड़े कर डाले और फिर उसने सहज-सरल भाषा में आशा को एक संक्षिप्त चिट्ठी लिखी। उसमें लिखा, "तुम अब और कितने दिन लगाओगी? तुम्हारे ताऊजी का अगर जल्दी लौटने का इरादा न हो, तो मुझे लिखो, मैं खुद आकर तुम्हें ले जाऊंगा। यहां अकेले मुझे अच्छा नहीं लग रहा है।"

२६

महेन्द्र के चले जाने के कुछ ही दिन बाद जब आशा काशी पहुंची, तो अन्नपूर्णा के मन में भारी आशंका बैठ गई। आशा से वे नाना प्रकार से नाना प्रश्न करने लगीं। पूछने लगीं, "क्योंरी चुन्नी, तू जो अपनी सखी 'आंख की किरकिरी' की तारीफ कर रही थी, तो क्या वह सचमुच ही बड़ी गुणवती है? तेरी बातों से तो मालूम होता है, ऐसी अच्छी लड़की संसार में और कोई है ही नही।"

"हां, मौसी, मैं बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कह रही, जैसी उसकी बुद्धि है वैसा ही रूप। और काम-काज में भी होशियार है कि कुछ पूछो मत।"

"तेरी सखी है, तू तो उसे सब गुणों की खान समझेगी ही, पर घर और सब उसके बारे में क्या कहते-सुनते हैं, सो तो बता?"

"मां तो उसकी तारीफ करते-करते नहीं थकती। 'किरकिरी' जब कभी देश जाने की बात कहती है, तो वे बेचैन हो उठती हैं। ऐसी सेवा करना कोई नहीं जानता। घर के नौकर-चाकरों में से कभी कोई बीमार पड़ जाता है तो वह उसकी मां-बहन की तरह देख-भाल करती है।"

"महेन्द्र की क्या राय है?"

"उन्हें तो तुम जानती ही हो, मौसी, कोई बहुत ही अपना आदमी हो, तभी वह उन्हें जंचता है, नहीं तो नहीं। मेरी 'किरकिरी' को और तो सब अच्छा समझते हैं,

र करते है, पर उसके साथ उनकी आज तक पटरी नहीं बैठी।"

'सो कैसे?"

'मैंने तो बड़ी कोशिश करके उनसे उसकी भेंट करा दी, बातचीत भी करा दी, वे ऐसे हैं कि बात भी नहीं करते। तुम तो जानती हो उनका स्वभाव, अकेले कोने में पड़े रहेंगे, पर मिलेंगे–जुलेंगे किसी–से नहीं। लोग समझते हैं कि घमण्डी हैं, बड़ा मान हैं उन्हे, पर असल में ऐसी कोई बात नहीं। दो–एक आदमी के सिवा और कोई उन्हें सहन ही नहीं होता।"

अन्नपूर्णा ने पूछा, "बिहारी की क्या खबर है, बेटी? वो क्या ब्याह करेगा ही नहीं?" क्षणमात्र में आशा का चेहरा गम्भीर हो गया। वह क्या जवाब दे, उसकी कुछ समझ में न आया।

आशा को निरुत्तर और गम्भीर देखकर अन्नपर्णा डर गई. बोलीं, "सच बता, चुन्नी, बिहारी की तबीयत तो ठीक है, बीमार–ईमार तो नहीं पड़ गया?"

आशा ने कहा, "मौसी, बिहारी लालाजी की बात मुझसे न पूछो।" अन्नपूर्णा आश्चर्य से दंग रह गई, बोलीं, "क्यों, क्या बात है, बता तो?"

आशा ने कहा, "सो तो मैं नहीं बता सकूंगी।" इतना कहकर वह वहां से उठकर चल दी।

अन्नपूर्णा चुप बैठी सोचने लगीं, 'मेरा हीरा–सा लड़का बिहारी, इस बीच में वह ऐसा क्या बदल गया कि चुन्नी आज उसका नाम सुनकर उठ गई? मेरे बिहारी ने अगर ऐसा कुछ किया भी हो जो उसके योग्य नहीं, तो योंही नहीं कर बैठा होगा।' बिहारी के उस दुःख की गहराई की कल्पना करके अन्नपर्णा का मन दर्द से भर उठा। शाम के समय अन्नपूर्णा पूजा करने बैठी ही थीं कि इतने में सहसा घर के दरवाजे पर एक गाड़ी आकर ठहरी। सईस बन्द दरवाज़े पर धक्का दे–देकर घर वालों पुकारने लगा।

अन्नपूर्णा पूजा–घर से बोल उठीं, "लो, मैं तो बिलकुल भूल ही गई थी, आज कुंजी की सास और उसकी बहनौतें इलाहाबाद से आने वाली थीं, शायद वे आ गईं। चुन्नी, जा तो बेटी, लालटेन लेकर नीचे जाकर ज़रा दरवाज़ा तो खोल आ।"

आशा लालटेन हाथ में लेकर दरवाजा खोलने गई और दरवाजा खोलते ही देखा, तो सामने बिहारी खड़ा है। बिहारी बोल उठा, "यह क्या, भाभीजी, मैंने सुना था कि तुम काशी नहीं आओगी।"

आशा के हाथ से लालटेन छूट गई वह सामने प्रेम–मूर्ति देखकर एक सांस में भागी–भागी ऊपर पहुंची और पीड़ा भरे स्वर में बोली, "मौसी, मैं तुम्हारे पांव पड़ती हूं, तुम उनसे अभी यहां से चले जाने को कह दो।"

अन्नपूर्णा पूजा के आसन से चौंककर उठ खड़ी हुई, बोलीं, "किसे चुन्नी

किसे?"

आशा ने कहा, "बिहारी लालाजी यहां भी चले आए हैं।"

इतना कहकर वह बगल के कमरे में चली गई. और भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए।

बिहारी ने नीचे से सभी बातें सुन लीं। वह उसी क्षण भाग जाने को तैयार हुआ किन्तु अन्नपूर्णा पूजा—पाठ छोड़कर वहां आ पहुंची और उन्होंने देखा कि बिहारी दरवाज़े के पास जमीन पर ऐसे बैठा है, जैसे उसके शरीर की सारी शक्ति ही जाती रही हो।

अन्नपूर्णा लालटेन नहीं लाई थीं। अंधेरे में उन्हें बिहारी के चेहरे का भाव नहीं दिखाई दिया बिहारी भी उन्हें देख न सका।

अन्नपूर्णा ने पुकारा, "बिहारी।"

हाय, हमेशा की वह प्यार के रस से भरी आवाज कहाँ चली गई? इस गले में तो कठोर विचार की वज्रध्वनि छिपी हुई है। जननी अन्नपूर्णा, आज तुम मारने के लिए-खड्ग किस पर उठा रही हो? अभागा बिहारी तो आज अन्धकार में पुम्हारे शुब चरणों में अपना मस्तक रखने आया था।

बिहारी का शक्तिहीन कमजोर शरीर सिर से पैर तक वज्राघात स चौंक उठा। उसने कहा, "चाचीजी, अब बस करो और कुछ न कहो। मैं चल दिया।" कहते हुए जमीन से सिर छुआकर अन्नपूर्णा को प्रणामं किया, उनके चरणों का स्पर्श तक नहीं किया। जननी जैसे गंगासागर में सन्तान विसर्जन करती है, उसी तरह अन्नपूर्णा ने रात के अन्धेरे में बिहारी को चुपके से विसर्जन कर दिया, एक बार मुड़कर उसे पुकारा तक नहीं। गाड़ी बिहारी को लेकर देखते-देखते अदृश्य हो गई। उसी रात को आशा ने महेन्द्र को चिट्ठी लिखी, "बिहारी लालाजी अचानक आज शाम यहां आए थे। ताऊजी कब कलकत्ता लौंटेगे, कोई ठीक नहीं। तुम जल्दी आकर मुझे यहां से ले जाओ।"

२७

उस दिन देर रात तक जागने और भावनाओं के तेज बहाव के कारण सवेरे उठने के बाद महेन्द्र के शरीर और मन में एक तरह की थकावट आ गयी। फागुन का महीना था और कुछ—कुछ गर्मी भी पड़ने लगी थी। महेन्द्र और—और दिन सवेरे उठकर कमरे की कोने वाली टेबल पर पढ़ने बैठ जाता था, किन्तु आज नीचे के बिस्तर पर तकिये के सहारे बैठ गया। काफी अबेर हो गई, किन्तु नहाने—निबटने नहीं गया।

"लालाजी, आज तुम्हें हो क्या गया है? नहाओगे-निबटोगे नहीं? उधर रसोई तैयार हो चुकी। अरे, तुम तो पड़े सो रहे हो। बात क्या है तबीयत खराब है क्या? सिर में दर्द है?" कहती हुई विनोदिनी महेन्द्र के पास आकर बैठ गई और उसके माथे पर हाथ रखकर ताप देखने लगी।

महेन्द्र आधी-आधी आंखे बन्द किए हुए मोह-भरे कमजोर गले से बोला, "आज कुछ ऐसी ही तबीयत है। आज नहाऊंगा नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "नहाओ नहीं तो, खा लो कम से कम।" इतना कहकर महेन्द्र को वह कह-सुनकर किसी तरह भोजन की जगह ले गई और उत्सुक आग्रह और जतन के साथ उसे थोड़ा-बहुत खिला पिला दिया।

भोजन करने के बाद महेन्द्र फिर कमरे में आकर नीचे गद्दे पर पड़ रहा। और विनोदिनी सिरहाने के पास बैठकर धीरे-धीरे उसका सिर दबाने लगी। महेन्द्र आंखे मीचे हुए ही बोला, "सखी किरकिरी, अभी तक तुमने खाया-पिया नहीं। अब तुम खाने जाओ।"

किंतु विनोदिनी किसी भी तरह उठी ही नहीं। अलस दोपहर की गर्म हवा से घर का पर्दा उड़ने लगा और चारदीवारी के पास जो नारियल के पेड़—खड़े थे उनकी अर्थहीन मर्मर आवाज कमरे में प्रवेश करने लगी। महेन्द्र का दिल लगातार द्रुत से द्रुततर ताल में नाचने लगा, और विनोदिनी की सांस का बादल उसी ताल में महेन्द्र के माथे के बालों को कंपाने लगा।

सिरहाने बैठकर महेन्द्र के माथे पर हाथ फेरते-फेरते भरी जवानी के भारी भार से विनोदिनी का सिर धीरे-धीरे झुक गया और अन्त में उसके बालों की लपटों ने महेन्द्र के गालों-का मीठा-मीठा स्पर्श करना शुरु कर दिया, हवा से लहराते हुए उस बालों के मीठे स्पर्श से महेन्द्र का शरीर बार-बार कांप-कांप उठा और सहसा मानो विनोदिनी की सांस महेन्द्र की छाती के पास इकट्ठा होकर निकलने का रास्ता भूल गया। महेन्द्र सहसा हड़भड़ाकर उठ बैठा, बोला, "नहीं-नहीं, मेरा कालेज है, मैं चल दिया।" कहता हुआ वह विनोदिनी के मुंह की तरफ बगैर देखे ही उठ खड़ा हुआ।

विनोदिनी ने कहा, "इतनी घबराहट क्यों? ठहरो ज़रा, मैं तुम्हारे कपड़े निकाल देती हूं।" विनोदिनी महेन्द्र के कालेज के कपड़े निकाल लाई।

महेन्द्र जल्दी से कालेज चला गया, किन्तु वहां भी वह स्थिर न रह सका। पढ़ने-लिखने में मन लगाने की उसने बहुत देर तक बेकार कोशिश की, किन्तु कुछ भी फल न हुआ। उसे जल्दी घर लौट आना पड़ा।

घर आकर अपने कमरे में घुसते ही उसने देखा, विनोदिनी छाती के नीचे तकिया रखकर नीचे के बिस्तर पर औंधी पड़ी कोई किताब पढ़ रही है। ढेर के ढेर

काले बाल उसकी पीठ पर बिखरे पड़े हैं। शायद उसने महेन्द्र के जूतों की आवाज़ नहीं सुनी। महेन्द्र धीरे-धीरे दबे पांव उसके पास जा खड़ा हुआ। उसे साफ सुनाई दिया, विनोदिनी ने किताब पढ़ते-पढ़ते एक गहरी सांस ली।

महेन्द्र ने कहा, ''ओ, करुणामयी, काल्पनिक आदमी के लिए दिल की इतनी फिजूलखर्ची मत करो। मुझे भी तो मालूम हो कि क्या पढ़ा जा रहा है?''

विनोदिनी हड़बड़ाकर उठ बैठी। पुस्तक को उसने अपने आंचल में छिपा लिया। महेन्द्र पुस्तक छीनकर देखने की कोशिश करने लगा। बहुत देर छीना-झपटी करने के बाद पराजित विनोदिनी के आंचल से महेन्द्र ने पुस्तक छीन ली। देखा कि बंकिमचन्द्र का 'विषवृक्ष' उपन्यास है। विनोदिनी ज़ोरो से सांस लेती हुई नाराज़ी से मुंह फेरकर चुपचाप बैठी रही।

महेन्द्र का दिल जोरों से धड़क रहा था। बड़ी कोशिश से हंसते हुए उसने कहा. ''छी-छी, बड़ा धोखा हुआ मुझे। मैंने सोचा था कि कोई खास गुप्त चीज़ होगी। इतनी छीना-झपटी के बाद आखिर निकला क्या, तो 'विषवृक्ष'।''

विनोदिनी ने कहा, ''मेरे छिपाने की और क्या चीज़ हो सकती थी?''

महेन्द्र चट से कह बैठा, ''यही, मान लो, बिहारी की कोई चिट्ठी होती।''

पल-भर में विनोदिनी की आंखों में बिजली-सी कौंध गई। अब तक जो कामदेव घर के कोने में खेल रहा था, मानो वह दूसरी बार भस्म हो गया। क्षण भर में जल उठी आग की लपट के समान विनोदिनी उठ खड़ी हुई। महेन्द्र ने उसका हाथ पकड़कर कहा, ''मुझे माफ करो, मैं मज़ाक कर रहा था। मुझे तुम माफ कर दो।''

विनोदिनी ने झटके से अपना हाथ छुड़ा लिया, और कहा, ''मज़ाक किसका कर रहे थे? तुम अगर बिहारी से मित्रता करने के योग्य होते, तो उनके साथ किए गए मज़ाक को मैं सह लेती। तुम्हारा ओछा मन है, मित्रता करने की शक्ति नहीं है उसमें और तुम करने चले हो मज़ाक।'' विनोदिनी ने जाने के लिए पैर बढ़ाया ही था कि महेन्द्र ने घुटने टेककर दोनों हाथों से पैर घेर लिए।

इतने में सामने एक छाया आ पड़ी। महेन्द्र ने विनोदिनी के पैर छोड़कर चौंककर पीछे देखा, तो बिहारी खड़ा है।

बिहारी ने स्थिर नजर से दोनों को जलाते हुए धीरे और शान्त स्वर में कहा, ''बड़े असमय में आ गया मैं, किन्तु ज़्यादा देर ठहरूंगा नहीं। एक बात कहने आया था। मैं काशी गया था, मुझे मालूम न था कि भाभीजी वहीं है। बिना जाने उनके सामने अपराधी हुआ, पर उनसे क्षमा मांगने का अवसर नहीं मिला। इसीसे तुमसे क्षमा मांगने आया हूं। मेरे मन को ज्ञान में या अज्ञान में किसी तरह के पाप ने छुआ हो, तो उसके लिए उन्हें किसी तरह का दुख न सहना पड़े, बस, तुमसे मेरी

इतनी-सी प्रार्थना है।"

बिहारी के सामने अकस्मात अपनी कमज़ोरी ज़ाहिर हो जाने से महेन्द्र के मन में आग-सी लग गई। यह उसके लिए उदारता दिखाने का समय नहीं। उसने ज़रा हंसते हुए कहा, "तुम तो 'चोर की दाढ़ी में तिनका' वाली मिसाल पेश कर रहे हो, 'पूजा घर में कौन?' न, 'मैंने केले नहीं खाए।' मैंने तुमसे न दोष स्वीकार करने को कहा है और न अस्वीकार करने को, तो फिर क्षमा मांगकर भले बनने क्यों आए हो?"

बिहारी कुछ देर तक लकड़ी के पुतले की तरह जड़वत् खड़ा रहा। उसके बाद जब बात करने की कोशिश में उसके ओंठ कांपने लगे, तब विनोदिनी बोल उठी, "बिहारी लालाजी, तुम कुछ भी जवाब मत दो। कुछ भी मत कहो। इस आदमी ने जो बात मुंह से निकाली है, उससे इन्हीं के मुंह पर कलंक लगा रहेगा। वह कलंक तुम्हें छू तक नहीं सकता।"

विनोदिनी की बात बिहारी के कान में गई या नहीं, इसमें सन्देह है। वह सपने मे डूबे की तरह महेन्द्र के कमरे के सामने से मुड़कर जीने से उतरने लगा। विनोदिनी उसके पीछे-पीछे जाकर बोली, "बिहारी लालाजी, मुझसे क्या तुम्हें कुछ भी नहीं कहना? अगर तिरस्कार करने योग्य कोई बात मुझसे हुई हो, तो मेरा तिरस्कार तो करो।"

बिहारी जब बिना कुछ उत्तर दिए उतरता ही चला गया, तब विनोदिनी ने उसके सामने जाकर अपने दोनों हाथों से उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया।

बिहारी बेहद नफरत के साथ उसे ढकेलकर चला गया। उस धक्के से विनोदिनी गिर पड़ी किन्तु बिहारी को मालूम भी न पड़ा।

गिरने का धमाका सुनकर महेन्द्र दौड़ा आया। देखा कि विनोदिनी के बायें हाथ की कोहनी छिल गई है और उससे खून बह रहा है।

महेन्द्र ने कहा, "ओह, यह तो बहुत छिल गया।" कहते हुए उसने उसी क्षण अपने मलमल के कुर्ते में से धज्जी फाड़कर चोट की जगह पट्टी बांधनी चाही, किन्तु, विनोदिनी ने चट से अपना हाथ हटा लिया और कहा, "नहीं-नहीं कुछ मत करो, गिरने दो खून।"

विनोदिनी ने ज़रा हटकर कहा, इस दर्द को बना रहने दो-मुझे अच्छा नहीं कराना।"

महेन्द्र ने कहा, "मैंने आज अपना होश-हवास खोकर दूसरे के सामने तुम्हें शर्मिन्दा और बेइज्ज़त किया क्या तुम मुझे माफ कर सकोगी?"

विनोदिनी बोली, "माफी किसलिए? तुमने अच्छा ही किया है। मैं क्या दूसरों से

डरती हूं? मैं किसीको भी नहीं मानती। जो लोग धक्के देकर चोट पहुंचाकर प छोड़ जाते हैं वे ही क्या मेरे सब कुछ हैं, और जो पैर पकड़कर मुझे रखना चाह हैं वे मेरे कोई भी नहीं।"

महेन्द्र उन्मत्त होकर गद्‌गद कण्ठ से बोल उठा, "विनोदिनी, तो तुम मेरे प्रे को कभी भी नहीं ठुकराओगी?"

बिनोदिनी ने कहा, "नही, उसे मैं सिर-आंखों से लगा रखूंगी। अपने इस जन्म में प्रेम मुझे इतना ज़्यादा नही मिला कि उसे मैं 'नहीं चाहिए कहकर लौटा दूं।'

महेन्द्र ने उसी क्षण अपने दोनों हाथों से विनोदिनी के दोनों हाथ पकड़कर कह "तो चलो मेरे कमरे में। तुम्हें आज मैंने बड़ा दुख पहुंचाया है और तुम भी मु दुखी करके चली आई हो, वह बिलकुल धुल-पुंछकर मिट नहीं जाए तब तक मुझ खाने-पीने, सोने उठने में बिलकुल चैन नहीं मिलेगा।"

विनोदिनी ने कहा, "नहीं आज नहीं, आज मुझे छोड़ दो। मैंने अगर तुम्हारा जी दुखाया हो, तो मुझे माफ करना।"

महेन्द्र ने कहा, तुम भी मुझे माफ करना। नहीं तो मुझे रातभर नींद नहीं आएगी।"

विनोदिनी ने कहा, "अच्छा, मैने माफ कर दिया।" महेन्द्र धीरे-धीरे सीढ़िया तय करके छत पर जाकर चहलकदमी करने लगा।

आज महेन्द्र जो बिहारी के आगे अचानक पकड़ा गया, उससे वह अपने मन में एक तरह का छुटकारे का आनन्द महसूस करने लगा। दुबका-चोरी में जो एक प्रकार की घिनौनापन है, एक के आगे प्रकट हो जाने से मानो वह बहुत कुछ दूर हो गया महेन्द्र मन की मन कहने लगा, मैं अपने को अच्छा बताकर झूठा गुरुर नहीं करना चाहता हां-हां मैं बिनोदिनी से प्रेम करना हूं, यह बात झूठ नहीं।

२८

दूसरे दिन सवेरे बिस्तर से उठते ही एक तरह के मिठास भरे आवेग से महे का दिल भर उठा। सवेरे के सूरज की रोशनी ने मानो उसकी चिन्ता की धारा बासना का सोना चढ़ा दिया। कैसी सुन्दर पृथ्वी है, कैसा मधुमय आकाश है, उ हवा तो मानो फूल की धूल की तरह समूचे मन को उड़ाए लिए जा रही

सवेरे-सवेरे आज वैष्णव भिक्षुक ने खंजरी बनाकर गाना शुरू कर दि दरबान ने उसे भगाना चाहा, तो महेन्द्र ने दरबान को डांटते हुए भिक्षु को रुपया दे डाला। नौकर कांच का लैम्प उठाकर ले जा रहा था कि लापरवाही से उसके हाथ से गिरकर चकना-चूर हो गया। महेन्द्र के मुंह की ओर देखकर

डर के नौकर बेचारे के प्राण सूख गए, किन्तु महेन्द्र ने उसका ज़रा भी तिरस्कार न करके प्रसन्न मुख से कहा, "देखता क्या है, सब अच्छी तरह साफ करके बाहर फेंक दे, नहीं तो किसी के पांव में कांच चुभ गया, तो मुश्किल हो जाएगी।" आज उसे कोई हानि ही हानि नहीं मालूम हो रही।

महेन्द्र को ऐसा लगने लगा मानो आज विनोदिनी के साथ और-ओर दिनों की तरह साधारण भाव से मिलन नहीं होगा। आज तो मानो कविता में बात और संगीत में भाव प्रकट करने से ही ठीक होगा। आज के दिन को महेन्द्र ऐश्वर्य से, सौन्दर्य से पूर्ण करके दुनिया और समाज से निराला अरबी उपन्यास 'अलिफ लैला' का एक अद्भुत दिन बना डालना चाहता है। वह सच भी होगा और स्वप्न भी। उसमें जगत् का कोई नियम, कानून नहीं, कोई दायित्व नहीं होगा और न किसी तरह की वास्तविकता होगी।

घर के काम-काज नें लगी हुई विनोदिनी की आवाज कभी भण्डार—घर से और कभी रसोई घर से आ आकर महेन्द्र के कानों में प्रवेश करने लगी, किन्तु आज उसे वह अच्छा नहीं लगा। विनोदिनी को आज जो उसने संसार से अलग बहुत दूर ले जाकर अपने कल्पना मन्दिर में बैठा लिया है।

समय कटना ही नहीं चाहता। महेन्द्र नहा चुका और खा भी चुका। घर का सब काम-काज समाप्त हो चुका और दोपहवी भी सुनसान हो आयी, किन्तु फिर भी विनोदिनी नहीं दिखाई दी। दुःख और सुख से, अधैर्य और आशा से महेन्द्र क़ी दिल की वीणा के सबके-सब तार गूंज उठे।

कल की छीना-झपटी से प्राप्त 'विषवृक्ष' उपन्यास नीचे के बिस्तर पर पड़ा था। उसे देखते ही कल की उस छीना-झपटी की याद से महेन्द्र के मन में पुलक भरा आवेग जाग उठा। विनोदिनी जिस तकिये को छाती के नीचे दबाकर लेटी थी, उसी तकिये को खींचकर महेन्द्र उसपर सिर रखकर लेट गया और 'विषवृक्ष' उठाकर उसके पन्ने उलटने लगा। पन्ने उलटते-उलटते पढ़ने लग गया और कब पांच बज गए, उसे होश ही न रहा।

इतने में एक मुरादाबादी बड़े थाल में फल और मिठाई की तश्तरियां और बरफ-चीनी खुशबू भरे खरबूजे का कटोरा लिए हुए विनोदिनी ने कमरे में प्रवेश किया। थाल को महेन्द्र के सामने रखती हुई बोली, "क्या कर रहे हो, लालाजी? तुम्हें हो क्या गया है? पांच बज गए, अभी तक न तो हाथ-मुंह धोया, न कपड़े ही बदले।"

महेन्द्र के मन पर एक धक्का-सा लगा। 'महेन्द्र को क्या हुआ है, यह क्या पूछने की बात है? विनोदिनी से क्या छिपा रहना चाहिए? आज का दिन क्या और-और दिन के समान है?

महेन्द्र जलपान करने बैठा। विनोदिनी छत पर धूप में पड़े महेन्द्र के कपड़े जल्दी में उठा लाई और अपने कुशल हाथों मे अच्छी तरह तह करके उन्हें आलमारी में रखने लगी।

महेन्द्र बोला, "ज़रा ठहरो, जलपान करके मैं तुम्हारी सहायता करता हूं।"

विनोदिनी ने हाथ जोड़कर कहा, "दुहाई हैं तुम्हे, तुम और चाहे जो करो, पर सहायता न करना।"

महेन्द्र हाथ-मुंह धोकर उठ बैठा और आगे बढ़कर बोला, "अच्छा, मुझे तुमने निकम्मा समझ रखा है। अच्छा तो आज परीक्षा हो जाए।" इतना कहकर वह कपड़े तह करने की बेकार कोशिश करने लगा।

विनोदिनी ने महेन्द्र के हाथ से कपड़ा छीनते हुए कहा, "अजी महाशय, आप रहने दीजिए, मेरा काम न बढ़ाइए।"

महेन्द्र ने कहा, "तो तुम काम किए जाओ, मैं देख-देखकर सीखता हूं।" यह कहता हुआ वह आलमारी के सामने विनोदिनी के पास जमीन पर पालथी मारकर बैठ गया। विनोदिनी कपड़े फटकारने के लिए महेन्द्र की पीठ का उपयोग करने लगी और फिर उन्हें अच्छी तरह तह करके आलमारी में रखने लगी।

ठीक इसी समय कमरे में राजलक्ष्मी ने प्रवेश किया और आने के साथ ही वे महेन्द्र से बोलीं, "महेन, बहू तो कपड़े रख रही है। तू यहां बैठा-बैठा क्या कर रहा है?"

विनोदिनी ने कहा, देखो न, सिर्फ काम बढ़ा रहे हैं यहां बैठे-बैठे।"

महेन्द्र बोल उठा, "वाह रे वाह। मैं तो उलटा काम में मदद कर रहा हूं।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "ऐसे ही मेरे भाग्य हैं न। तू और काम में मदद करेगा। जानती हो, बहू, महेन का शुरू से ही यही हाल है। हमेशा से मां और चाची का लाड़ पा-पाकर ऐसा हो गया है कि जानता ही नही काम किसे कहते हैं।"

इतना कहकर माता परम स्नेह से काम में नौसिखिये अपने पुत्र को देखने लगीं।

विनोदिनी जब सब कपड़े रख चुकी तब राजलक्ष्मी ने कहा, "अब क्या मैं चीनी का रस चढ़ा दूं चूल्हे पर या तुम्हें और कोई काम करना है?"

विनोदिनी ने कहा, "नहीं बुआजी, और कोई काम नहीं मेरे हाथ में। चलो, मिठाई ही बना ली जाए चलके।"

महेन्द्र ने कहा, "आज शाम को मुझे कोई काम नहीं था। मैंने सोचा कि चलो किरकिरी के साथ कोई किताब ही पढ़ूंगा।"

विनोदिनी बोल उठी, "बुआजी, आज शाम को हम-तुम दोनों मिलकर लालाजी से कोई पुस्तक सुनेंगी। क्यों ठीक है न?"

राजलक्ष्मी ने सोचा, 'महेन बेचारा बिलकुल ही अकेला पड़ गया है, इस समय

हम सबको मिलकर उसका मन बहलाना चाहिए।' और बोलीं, "हां ठीक है, मिठाई और शाम की रसोई बनाकर हम दोनों आज शाम को यहीं बैठकर पुस्तक सुनेंगी। क्यों महेन, ठीक है न?"

विनोदिनी ने कटाक्ष के साथ एक बार महेन्द्र के मुंह की तरफ देखा। महेन्द्र ने कहा, "अच्छा।" किन्तु उसका सारा उत्साह जाता रहा। विनोदिनी राजलक्ष्मी के साथ-साथ नीचे चली गई। महेन्द्र नाराज होकर सोचने लगा, मैं भी आज बाहर चला जाऊँगा और देर करके घर आऊंगा।' और तुरन्त उसने बाहर जाने के लिए कपड़े पहन लिए, किन्तु उसका संकल्प कार्य रूप में बदला नहीं बहुत देर तक वह छत पर टहलता रहा, बीच-बीच में जीने की तरफ झांकता रहा और अन्त में कमरे में जाकर बैठ गया और झुंझलाकर मन ही मन कहने लगा, 'आज मैं मिठाई छूऊंगा तक नहीं। मां को जता दूंगा की इतनी देर तक चाशनी बनाते रहने से उसमें मिठास नहीं रहती।'

आज भोजन के समय विनोदिनी राजलक्ष्मी को साथ लेती आई। राजलक्ष्मी सांस फूलने के डर से प्रायः ऊपर आना नहीं चाहतीं, किन्तु विनोदिनी के आग्रह से उन्हें आना ही पड़ा। महेन्द्र बड़ा गम्भीर मुंह बनाकर खाने बैठा। विनोदिनी बोली, "यह क्या, लालाजी, आज तो तुम कुछ खा ही नहीं रहे हो।"

राजलक्ष्मी व्यस्त होकर पूछने लगीं, "क्या बात है, बेटा, तबीयत तो ठीक है न?"

विनोदिनी ने कहा, "इतनी मेहनत करके इतने चाव से मिठाई बनाई। तुम्हें मेरी सौगन्ध है, लालाजी, खानी ही पड़ेगी। अच्छी नहीं बनी क्या? तो रहने दो। नहीं नहीं, अनुरोध के लिहाज से जबरदस्ती खाने में क्या है। नहीं नहीं रहने दो।"

महेन्द्र ने कहा "क्या मुसीबत है? मिठाई खाने की सबसे ज़्यादा इच्छा है, लग भी अच्छी रही है, तुम्हारे रोके से मैं रुक कैसे जाऊं?"

थाली की सब मिठाई महेन्द्र ने खाकर खतम कर दी, उसका चूरा तक थाली में नहीं छोड़ा। भोजन करने के बाद महेन्द्र अपने कमरे में चला आया और इसके कुछ देर बाद चौका उठा-उठाकर राजलक्ष्मी और विनोदिनी भी ऊपर आकर बैठ गई।

राजलक्ष्मी ने कहा, "तू क्या पढ़ कर सुनाने वाला था न, सुना अब।"

महेन्द्र ने कहा, "पर उसमें तो, मां, देवी-देवताओं का वर्णन नहीं है, उसका वर्णन सुनने में तुम्हें अच्छा नहीं लगेगा।"

विनोदिनी ने कहा, "सुनो, तुम एक काम करो, लालाजी, बुआजी के कमरे में 'शान्ति-शतक' रखी है और कोई पुस्तक न पढ़कर आज उसीको सुनाओ। बुआजी का मन भी लग जाएगा और शाम भी अच्छी तरह कट जाएगी। महेन्द्र ने

नितान्त करुण भाव से एक बार विनोदिनी के मुंह की तरफ देखा। इतने में नौकरानी ने आकर खबर दी, "मांजी, कायथ ठकुरानी आकर तुम्हारे कमरे में बैठी हैं।"

कायथ ठकुरानी से राजलक्ष्मी की गहरी मित्रता है। शाम के बाद उनसे गप-शप करने का लालच राजलक्ष्मी छोड़ नहीं सकती थीं, किंतु फिर भी उन्होंने नौकरानी से कह दिया, "उनसे जाकर कह दे कि आज महेन्द्र के कमरे में मुझे काम है जरा। कल वे जरूर-जरूर आवें।"

महेन्द्र जल्दी से बोल उठा, "क्यों मां, तुम उनसे मिल ही आओ न?"

विनोदिनी ने कहा, "जरूरत क्या है, बुआजी, तुम यहीं रहो, मैं जाकर उनके पास बैठती हूं।"

राजलक्ष्मी लालच को न सम्हाल सकीं, उन्होंने कहा, "बहू, तुम यहीं बैठो मैं जाती हूं। देखूं दो-चार बात करके विदा कर सकी, तो आ जाऊंगी। तुम लोग पढ़ना शुरू करो। मेरी राह न देखना।"

राजलक्ष्मी के कमरे से बाहर निकलते ही महेन्द्र से फिर रहा नहीं गया, बोला, "क्यों तुम मुझे जान-बूझकर इस तरह झूठ-मूठ को सताया करती हो?"

विनोदिनी आश्चर्य से दंग रह गई, बोली, "वाह जी वाह। मैंने तुमको क्या सताया? तो क्या तुम्हारे कमरे में मेरा आना ही जुर्म है। मुझे क्या पड़ी है। यह लो, मैं चल दी।" कहती हुई वह बेहद टेढ़ा मुंह बनाकर जाने को तैयार हो गई।

महेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ लिया, बोला, "इसी तरह तो तम मुझे जलाती रहती हो।"

विनोदिनी ने कहा, "चलियो सम्हालियो, कोई है। मुझे क्या मालूम था कि मुझमें इतना तेज है। तुम्हारे भी तो प्राण कुछ कम कठिन नहीं, बहुत सह लेते हैं, पर चेहरा देखकर तो यह नहीं मालूम होता कि बहुत ज्यादा झुलस गए हो।"

महेन्द्र ने कहा, "चेहरे से समझोगी तुम?" और झट से उसने ताकत के साथ विनोदिनी का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर धर दबाया।

विनोदिनी 'उफ्' कहके चीख उठी, और महेन्द्र ने उसी क्षण उसका हाथ छोड़ दिया। बोला, "लग गई क्या?"

देखा कि कल विनोदिनी के जहां चोट लगी थी, वहां से फिर खून गिर रहा है। उसने खिन्न होकर कहा, "मैं भूल गया था। बड़ा अन्याय हुआ मुझसे आज लेकिन मैं अभी तुरन्त दवा लगाकर बैण्डेज बांध दूंगा, छोड़ूंगा नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "नहीं, जरूरत नहीं। मुझे दवा नहीं लगवानी।"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों क्या बात है?"

विनोदिनी ने कहा, "बात क्या होगी। तुम्हें डाक्टरी करने की जरूरत नहीं, मेरा जैसा है वैसा ही रहने दो।"

महेन्द्र क्षण में गम्भीर हो गया और मन ही मन बोला, 'कुछ समझ में नहीं आता। विचित्र है इन औरतों का मन।' विनोदिनी उठ खड़ी हुई।

अभिमानी महेन्द्र ने बाधा नहीं दी बोला, "कहां जा रही हो?" विनोदिनी ने कहा, "काम है।" और फिर वह धीमी रफ्तार से नीचे चली गई। मिनट-भर बैठा रहकर महेन्द्र विनोदिनी को लौटा लाने के लिए बड़ी तेजी से उठ खड़ा हुआ और जीने के पास तक जाकर और फिर वापस आकर छत पर चहलकदमी करने लगा।

विनोदिनी दिन-रात उसे अपनी ओर आकर्षित भी करती है और फिर एक क्षण के लिए अपने पास भी नहीं फटकने देती, यह रहस्य क्या है? महेन्द्र को इस बात का घमंड था कि उसे कोई जीत नहीं सकता। उसका वह घमंड जाता रहा, किन्तु कोशिश करने पर वह दूसरे को जीत सकता है, इस घंमड की भी क्या वह रक्षा न कर सकेगा? आज उसे खुद हार माननी पड़ी, किन्तु दूसरे से वह हार न मनवा सका।

फागुन-चैत में बिहारी की ज़मींदारी से सरसों के फूलों का शहद आया करता था और हर साल उसे वह राजलक्ष्मी के यहां भेज दिया करता था। इस साल भी भेज दिया।

विनोदिनी शहद का बर्तन लेकर स्वयं राजलक्ष्मी के पास पहुंची, और बोली, "बुआजी,बिहारी लालाजी के यहां से शहद आया है।"

राजलक्ष्मी ने उसे भण्डार में रखने के लिए कह दिया। शहद भण्डार में रखकर विनोदिनी उनके पास आकर बैठ गई और बोली, "बिहारी लालाजी हमारे घर की बराबर खबर-सुध लिया करते हैं। उन बेचारे की मां नही हैं, तुम्हीं को वे मां समझते हैं।"

विनोदिनी ने जब राजलक्ष्मी को मातृहीन बिहारी की मा बताया, तब राजलक्ष्मी का दिल अचानक उसकी ममता से बेचैन हो उठा। सहसा उन्हें ख्याल आया कि 'बात तो सच है, बिहारी के मां नहीं है, मुझे ही वह मां समझता है।' उन्होंने एक गहरी सांस लेंकर कहा, "तुम ठीक कहती हो, बहू, बिहारी मेरे लड़के के समान ही है।" कहने के साथ ही वे सोचने लगीं, 'बिहारी उनके अपने लड़के से बढ़कर है और कभी भी खास कुछ बदला न मिलने पर भी उनके प्रति उसकी भक्ति बराबर एक-सी बनी रही।' सोचते-सोचते उनके दिल के भीतर से एक लम्बी सांस निकल आयी फिर बोलीं, 'अच्छा, बहू, बिहारी आजकल दिखाई क्यों नहीं देता?"

विनोदिनी ने कहा, "मैं भी तो यही सोच रही थी। बात यह है, बुआजी, कि तुम्हारे बेटाजी तो ब्याह के बाद से अपनी बहू को लेकर ऐसे फंसे हुए हैं कि उन्हें और कोई सूझता ही नहीं, फिर प्रिय मित्र कोई आकर क्या करे, बताओ।"

बात राजलक्ष्मी को बिलकुल जंच गई। अपनी बहू के पीछे महेन्द्र ने अपने सभी भला चाहने वालों को दूर हटा दिया है। बिहारी अगर महेन्द्र से रुठ गया हो, तो इसमें कोई बेजा बात नहीं। बिहारी को अपने पक्ष में पाकर उसके प्रति राजलक्ष्मी की संवेदना बढ़ गई। राजलक्ष्मी विनोदिनी को विस्तार के साथ बताने लगीं कि बिहारी बचपन से बिलकुल निःस्वार्थ भाव से महेन्द्र का कितना उपकार करता आया है और उसके लिए उसे कितनी बार कष्ट सहने पड़े हैं।

विनोदिनी ने कहा, " कल रविवार है, बुआजी, कल तुम बिहारी लालाजी को न्योता देकर खिलाओ-पिलाओ तो वे बहुत खुश होंगे।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तुमने बहुत ठीक कहा, बहू, तो मैं महेन को बुलवाती हूं, वो बिहारी को न्योता भिजवा देगा।"

'विनोदिनी ने कहा, "नहीं बुआजी, तुम खुद न्योता भेजो।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मैं क्या तुम लोगों की तरह पढ़ी-लिखी हूं?"

विनोदिनी बोली, "इससे क्या हुआ, तुम्हारी तरफ से मैं लिख दूंगी न!"

विनोदिनी ने राजलक्ष्मी के नाम से खुद ही निमन्त्रण की चिट्ठी लिखकर भेज दी। रविवार महेन्द्र के लिए अत्यन्त आग्रह का दिन है। शनिवार की रात से उसकी कल्पना उच्छृंखल हो उठती है। यद्यपि आज तक उसकी कल्पना के अनुरुप कुछ भी हुआ नहीं, फिर भी सवेरे की सूरज किरणें आज उसकी आंखों में रस बरसाने लगीं।

'किन्तु बात क्या है? मां का आज कोई व्रत है क्या? आज तो वे और दिनों की तरह विनोदिनी पर घर में काम-काज का भार सौंपकर निश्चिन्त नहीं बैठीं। आज तो वे खुद ही व्यस्तता के साथ रसोई का काम सम्हाल रही हैं!' महेन्द्र सोचने लगा।

काम काज की धूम में दस बज गए, किन्तु इसी बीच महेन्द्र किसी बहाने से विनोदिनी से एक क्षण के लिए भी एकान्त में मिल नहीं सका। किताब पढ़ने की कोशिश की, किन्तु पढ़ने में कतई मन नहीं लगा। अखबार उठाकर उसके एक अनावश्यक विज्ञापन को वह पन्द्रह मिनट तक एकटक देखता रहा। अन्त में उससे रहा नहीं गया, उठके नीचे चल दिया।

नीचे जाकर उसने देखा कि मां अपने कमरे के सामने वाले दालान में बैठीं सिगड़ी पर कुछ रांध रही है और विनोदिनी कमर से धोती पल्ला लपेटे उनकी सहायता में जुटी हुई है।

महेन्द्र ने पूछा, "आज बात क्या है, मां? इतनी धूमधाम क्यों?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "बहू ने तुझसे कहा नहीं क्या? आज मैंने बिहारी को न्यौता दिया है।"

बिहारी को न्योता! महेन्द्र के नीचे से ऊपर तक आग लग गई। उसने उसी क्षण कहा, "लेकिन, मां, मैं तो आज घर रह नहीं सकूंगा।"

"क्यों?"

"मुझे बाहर जाना है।"

"तो खा-पीकर जाना। ज्यादा देर नहीं होगी।"

"बाहर मुझे न्योते में तो जाना ही है।"

विनोदिनी ने एक क्षण के लिए महेन्द्र की ओर तिरछी नजरें डालते हुए कहा, "इनका न्योता है, तो इन्हें जाने दो न, बुआजी! हर्ज क्या है? बिहारी लालाजी आज अकेले ही खा-पी लेंगे।"

किन्तु अपने हाथ की इतने जतन से बनाई रसोई वे महेन्द्र को न खिला सकें, भला यह कैसे हो सकता है? घर पर ही खाने के लिए महेन्द्र से वे जितना अनुरोध करने लगीं, उतना ही महेन्द्र अकड़ता गया। कहने लगा, "बहुत जरूरी निमन्त्रण है, उसे टाला नहीं जा सकता। बिहारी को न्योता देने के पहले मुझसे सलाह तो कर लेनी चाहिए थी।" इत्यादि इत्यादि। इस तरह नाराज़ होकर महेन्द्र ने मन ही मन मां को सजा देने की ठान ली।

विनोदिनी ने कहा, "बुआजी, तुम कुछ चिन्ता मत करो। लालाजी मुंह से ही गरज रहे हैं, बरसेंगे नहीं। आज ये कहीं नहीं जाने के।"

राजलक्ष्मी ने सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं, बहू, तुम जानती नहीं महेन को, एक बार ज़िद पकड़ लेता है, तो फिर वह उसे पूरी करके ही छोड़ता है।"

महेन्द्र ने समझा कि बिहारी को विनोदिनी ने ही न्योता दिलाया है। इससे उसका दिल ईर्ष्या से जितना ही जलने लगा, उतना ही उसके लिए दूर जाना कठिन हो गया। बिहारी क्या करता है, विनोदिनी क्या करती है, यह बिना देखे वह जाएगा कैसे? देख-देखकर जलेगा, किन्तु देखेगा ज़रूर।

बिहारी ने आज बहुत दिन बाद निमन्त्रित आत्मीय के रूप में महेन्द्र के घर के भीतर प्रवेश किया। बचपन से जो घर उसका सुपरिचित है और जहां वह शुरू से घर के लड़के की तरह बेरोक-टोक प्रवेश करके उधम मचाता रहा है, आज उसी घर के दरवाज़े के पास आकर वह क्षण-भर के लिए ठिठककर खड़ा हो गया। सहसा एक आंसुओं की लहर ने ऊपर उठने के लिए उसके दिल के दरवाजे पर आघात किया। उस आघात को जहां का तहां रोककर अपने को सम्हालते हुए उसने हलकी हंसी के साथ भीतर प्रवेश किया और हाल ही में नहाई हुई राजलक्ष्मी को

प्रणाम करके पांवों की धूल माथे से लगाई। राजलक्ष्मी ने स्नेह के साथ उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया।

राजलक्ष्मी ने आज छिपी हुई सहानुभूति के कारण बिहारी के प्रति पहले से बहुत ज़्यादा लाड़ और स्नेह प्रकट किया। कहा, "क्यों रे बिहारी, तू इतने दिनों से आया क्यों नहीं? मैं रोज़ सोचा करती थी कि आज ज़रूर आएगा, पर तू आया ही नहीं?"

बिहारी ने हंसते हुए कहा, "रोज़ आने से तो तुम बिहारी को रोज़ याद नहीं करतीं, मां। महेन भइया कहां हैं?"

राजलक्ष्मी उदास होकर बोलीं, "महेन का आज कहीं निमन्त्रण है, इससे वह ठहर नहीं सका।"

सुनते ही बिहारी का मन बैठ गया। बचपन से जो प्रेम चला आ रहा है, उसका क्या यही परिणाम है? एक लम्बी साँस छोड़कर, अपने मन से समूची दुखभरी हवा को कम से कम इस समय के लिए उड़ा देने की कोशिश करते हुए बिहारी ने पूछा शिष्टाचार के नाते "आज क्या-क्या बनाया है, मां, सुनूं तो सही!" और फिर वह अपने प्रिय व्यंजनों के विषय में पूछने लगा।

इतने में महेन्द्र आ गया और उसने रूखे स्वर में बिहारी से शिष्टाचार के नाते पूछा, "कहो बिहारी, कैसे हो?"

राजलक्ष्मी ने आश्चर्य के साथ पूछा, "क्यों रे महेन, तू अपने निमंत्रण में नहीं गया?"

महेन्द्र ने अपनी लज्जा ढकने की कोशिश करते हुए कहा, "नहीं, उसे टाल देना पड़ा।"

इतने में नहा-धोकर विनोदिनी आ गई। उसे देखकर बिहारी से कुछ कहते न बना। विनोदिनी और महेन्द्र का जो दृश्य वह उस दिन देख चुका था, उसे अब तक भूला नहीं था।

विनोदिनी बिहारी के पास आकर मीठे स्वर में बोली, "क्यों लाला जी, मुझे पहचान नहीं सके क्या?"

बिहारी ने कहा, "सबको क्या पहचाना जा सकता है?"

विनोदिनी ने कहा, "थोड़ी समझ हो तो क्यों नहीं पहचाना जा सकता?" और फिर उसने खबर दी कि 'खाना तैयार है'।

बिहारी और महेन्द्र दोनों खाने बैठे। राजलक्ष्मी पास बैठके देखने लगीं और विनोदिनी परोसने लगी।

महेन्द्र का खाने में ध्यान नहीं था, वह सिर्फ परोसने वाली के पक्षपात पर ध्यान

देने लगा। उसे ऐसा लगने लगा कि बिहारी को परोसने-खिलाने में विनोदिनी को एक तरह का खास सुख मिल रहा है। बिहारी की थाली में ही खास तौर से जो ज़्यादा मछली का सिरा और दही की मलाई पड़ने लगी, उसकी एक खास कैफियत थी कि 'महेन्द्र घर का आदमी है और बिहारी निमन्त्रित अतिथि है,' किन्तु मुंह खोलकर शिकायत करने का कोई ठोस कारण न होने से ही महेन्द्र और भी ज़्यादा जलने लगा।

भोजन करने के बाद दोनों मित्र उठकर आंगन में आ गए। विनोदिनी ने जल्दी से आकर कहा, "बिहारी लालाजी, जाने की इतनी जल्दी क्या है? चलो, ऊपर के कमरे में चलकर बैठो तो सही ज़रा।"

बिहारी ने कहा, "तुम खाओगे नहीं?"

विनोदिनी ने क़हा, "नहीं, आज एकादशी है।"

तीखे व्यंग्य की एक बारीक हास्य-रेखा बिहारी के होंठों पर दिखाई देकर रह गई, जिसका अर्थ यह था कि 'एकादशी भी पाली जाती है! आचार-अनुष्ठान में कोई गलती नहीं!'

यह व्यंग्यभरी मुस्कराहट विनोदिनी की नज़रों से छिपी नहीं रही, किन्तु उसने जैसे उस दिन की चोट को सह लिया था, उसी तरह यह भी सह लिया। उसने नर्मी से विनती के स्वर में कहा, "तुम्हें मेरे गले की सौगन्ध है, लालाजी, ऊपर चलकर बैठो ज़रा।"

महेन्द्र सहसा गलत ढंग से उत्तेजित होकर बोल उठा, "तुम लोगों को किसी बात का विचार ही नहीं। किसी को कोई काम हो, काज हो, इच्छा हो या न हो, फिर भी बैठना तो पड़ेगा ही। इतना ज़्यादा आदर करने के मानी क्या, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।"

विनोदिनी ठहाका मारकर हंस पड़ी। वह बोली, "बिहारी लालाजी, सुनो ज़रा, अपने भाई साहब की ज़रा बात तो सुनो। 'आदर करने' के मानी हैं आदर करना, कोश में इसके सिवा और कोई मानी तो लिखे नहीं।" और फिर महेन्द्र की तरफ मुड़कर कहने लगी, "तुम कुछ भी कहो, लालाजी, 'ज़्यादा आदर' के मानी बचपन से तुम जितना साफ समझते आ रहे हो, इतना और कोई नहीं समझ सकता।"

बिहारी ने कहा, "महेन भइया, तुमसे एक बात करनी है, ज़रा सुन जाओ।" इतना कहकर वह विनोदिनी के प्रति किसी प्रकार की भली बात किए बिना ही महेन्द्र को साथ लेकर बाहर चला गया।

विनोदिनी बराण्डे में रेलिंग के सहारे चुपचाप खड़ी-खड़ी आंगन के सूनेपन की तरफ देखती रह गई।

बिहारी ने बाहर जाकर महेन्द्र से कहा, "महेन भइया, मैं जानना चाहता हूं, हमारी मित्रता क्या यहीं खतम है?"

"समझौता हो जाने से तुम्हारे लिए विशेष सुविधा हो सकती है, किन्तु मेरे लिए वह कामना की वस्तु नहीं हो सकती। अपनी गृहस्थी में मैं बाहरी आदमी को नहीं घुसाना चाहता। घर के भीतरी हिस्से को मैं भीतर ही रखना चाहता हूं।" महेन्द्र ने उत्तर दिया।

बिहारी बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप चला गया।

२९

आशा ने एक दिन अन्नपूर्णा से पूछा, "अच्छा, मौसी, मौसाजी की तुम्हें याद है?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "मैं ग्यारह बरस की उम्र में विधवा हो गई थी। पति की मूर्ति छाया-सी याद पड़ती है।"

आशा से पूछा, "तो फिर तुम किसका ध्यान किया करती हो, मौसी?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "मेरे पति अब जिनमें मौजूद हैं, उन्हीं भगवान का।"

आशा ने कहा, "उससे तुम्हें सुख मिलता है?"

अन्नपूर्णा स्नेह के साथ आशा के सिर पर हाथ फेरती हुई बोलीं, "मेरे मन की बात तू क्या समझ सकेगी, बेटी! यह तो मेरा मन जानता है या वही जानते हैं, जिनका मैं ध्यान करती हूं।"

आशा अपने मन में सोचने लगी, "मैं जिनकी बात रात-दिन सोचा करती हूं, वे क्या मेरे मन की बात नहीं जानते? मैं तो अच्छी तरह चिट्ठी नहीं लिख सकती, इसलिए नहीं लिख सकी, पर उन्होंने क्यों चिट्ठी लिखना छोड़ दिया?'

आशा को कई दिनों से महेन्द्र की कोई चिट्ठी नहीं मिली। एक गहरी सांस लेकर फिर वह मन ही मन सोचने लगी, 'किरकिरी अगर पास में होती, तो वह मेरे मन की बात सब ठीक तरह से लिख देती।'

मन्दिर से सन्ध्या-आरती के बाद घर लौटकर आशा अन्नपूर्णा के पैरों के पास बैठी धीरे-धीरे पैरों पर हाथ फेरने लगी। बहुत देर चुप रहने के बाद वह बोली, "मौसी, तुम जो कहा करती हो, 'पति की देवता के समान सेवा करना स्त्री का धर्म है,' सो जो स्त्री मूर्ख है, जिसके बुद्धि नहीं, जानती नहीं कि कैसे पति की सेवा की जाती है, उसे क्या करना चाहिए?"

अन्नपूर्णा बोलीं, "बेटी, मैं भी तो मूर्ख हूं, फिर भी तो मैं भगवान की सेवा किया करती हूं।"

आशा ने कहा, "वे जो तुम्हारे मन को जानते हैं, इसीसे प्रसन्न होते हैं। पर मान लो, पति अगर मूर्खा की सेवा से प्रसन्न न हों?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "सबको प्रसन्न करने की शक्ति सबमें नहीं होती, बेटी! स्त्री अगर मन की श्रद्धा-भक्ति से पति की सेवा और गृहस्थी का काम करे, तो पति उसे तुच्छ समझकर भले ही ठुकरा दे, स्वयं जगदीश्वर उसे ज़रूर अपना लेते हैं।"

आशा बिस्तर पर पड़ी-पड़ी बहुत रात तक बहुत बातें सोचती रही, तो भी अच्छी तरह वह कुछ समझ न सकी, किन्तु पुण्यवती मौसी के प्रति उसकी असीम भक्ति थी, इसलिए मौसी की बात को, पूरी तरह समझ में न आने पर भी, उसने एक प्रकार से शिरोधार्य कर लिया। मौसी ने समस्त संसार के ऊपर जिन्हें हृदय में स्थान दिया है, उनके लिए उसने अन्धकार में बिस्तर से उठकर, बैठकर, ढोक देकर प्रणाम किया और कहा, "मैं बालिका हूं, मैं तुम्हें नहीं जानती, मैं केवल अपने पति को जानती हूं,इसके लिए मेरा कोई अपराध न लेना, प्रभु! अपने पति को मैं जो पूजा चढ़ाती हूं, भगवान्, तुम उनसे उसे ग्रहण करने के लिए कहना। वे यदि उसे पैरों से ठुकरा दें, तो फिर मैं जी नहीं सकती। मैं अपनी मौसी जैसी पुण्यवती नहीं हूं, एकमात्र तुम्हारा ही सहारा लेकर मैं नहीं बच सकती।" इतना कहकर आशा बार-बार ढोक देकर नमस्कार करने लगी।

आशा के ताऊ का कलकत्ते लौटने का समय आ गया। विदा होने के पहले दिन शाम को अन्नपूर्णा ने आशा को अपनी गोद में बैठाकर कहा, "चुन्नी, बिटिया मेरी, दुःख, शोक, अमंगल से हमेशा तेरी रक्षा करने की शक्ति मुझमें नहीं है। मेरा यही उपदेश है कि कहीं से भी कितना ही कष्ट क्यों न मिलता रहे, अपने विश्वास को, अपनी भक्ति को तू हमेशा स्थिर रखना, अपने धर्म को तू सदा अटल बनाए रखना।"

आशा ने उनके पांव की धूल माथे से लगाते हुए कहा, "मुझे आशीर्वाद दो, मौसी, भगवान करें ऐसा ही हो।"

३०

आशा कलकत्ता लौट आई। विनोदिनी ने उसपर अभिमान करके कहा, "क्यों किरकिरी, इतने दिन परदेस रह आई, एक चिट्ठी तक नहीं दी?"

आशा ने कहा, "तुमने भी तो नहीं दी, बहन!"

विनोदिनी बोली, "पहले मैं क्यों देती? तुम्हारी ही तो पहले देने की बात थी।"

अन्त में आशा ने सखी के गले से लिपटकर अपना कसूर मंजूर कर लिया। उसने कहा, "तुम तो जानती हो, बहन, मुझे ठीक से लिखना नहीं आता। खासकर तुम जैसी पढ़ी-लिखी पण्डितानी को चिट्ठी लिखने में मुझे बड़ी शर्म आती थी।"

देखते-देखते सखियों के मान-अभिमान का झगड़ा मिट गया और फिर प्रेम उमड़ पड़ा। विनोदिनी ने कहा, "दिन-रात साथ दे-देकर तुमने अपने पति की आदत बिल्कुल ही खराब कर दी है। हर वक्त उनके पास कोई न कोई बना ही रहना चाहिए, इसके बिना उनसे रहा ही नहीं जाता।"

आशा ने कहा, 'इसीलिए तो मैं तुमपर उनका भार सौंप गई थी। कैसे साथ दिया जाता है, यह तुम मुझसे कहीं अच्छा जानती हो!"

"दिन को तो किसी तरह कालेज भेज-भाजकर निश्चिन्त हो जाती थी, पर शाम के बाद फिर छोड़ना किसे कहते हैं! बैठके गप-शप करो या किताब पढ़के सुनाओ। फरमाइशों की होई हद ही नहीं।"

"आखिर अक्ल ठिकाने आ गई न! तुम जो लोगों का मन बहला सकती हो, मोहित कर सकती हो, भला तुम्हें आसानी से कौन छोड़ने लगा!"

"सावधान रहना, किरकिरी! लालाजी ने जैसी ज़्यादती शुरू कर दी है, उससे मुझे अपने पर सन्देह होने लगा है कि शायद वशीकरण विद्या आती है मुझे।"

आशा हंसती हुई बोली, "तुम्हें नहीं आएगी, तो और किसे आएगी भला! तुम्हारी-सी विद्या अगर मुझे ज़रा-सी मिल जाती न, किरकिरी, तो मैं जी जाती।"

काशी से लौटने के बाद पहली ही मुलाकात में महेन्द्र ने आशा से कहा, "तुम्हारी तबीयत तो बहुत अच्छी रही मालूम होती है। खूब मज़े की मोटी-ताज़ी हो आई हो।"

आशा को बड़ी शर्म मालूम होने लगी। उसने मिठास भरे स्वर में कहा, "तुम कैसे थे?"

पहले के दिन होते तो महेन्द्र कुछ मज़ाक और कुछ मन से कह देता, 'मैं तो मर रहा था।' किन्तु आज उससे मज़ाक करते न बना, वह बोला, "अच्छा ही था, बुरा क्या!"

आशा ने महेन्द्र की तरफ गौर से देखा। पहले से वह दुबला हो गया है, चेहरा उसका पीला पड़ गया है, आंखों में एक तरह की तेज़ आग की चमक दिखाई पड़ती है। मानो कोई भीतरी भूख अपनी जबान से उसे चाटे जा रही हो।

महेन्द्र सोचने लगा, अब और क्या बात छेड़ी जाए, और सोचते-सोचते थोड़ी देर बाद वह पूछ उठा, "चाचीजी अच्छी तरह हैं?"

इस प्रश्न के उत्तर में कुशल-समाचार के बाद, आगे कोई दूसरी बात करना उसके लिए कठिन हो गया। पास ही एक फटा-पुराना अखबार पड़ा था, उसे

उठाकर वह अनमन भाव से पढ़ने लगा और आशा नीची निगाह किए हुए सोचने लगी, 'इतने दिन बाद भेंट हुई, पर ये मुझसे अच्छी तरह बोले क्यों नहीं? और तो क्या, मेरे मुंह की तरफ अच्छी तरह देख भी न सके। यह बात क्या है? मैं तीन-चार दिन चिट्ठी नहीं लिख सकी, क्या इसीलिए नाराज़ हैं? या मौसी के कहने से ज़्यादा दिन काशी में बनी रही, इसलिए नाराज़ हैं?' इस तरह आशा बेहद दुखी मन से अपने अपराध का कारण ढूंढने लगी।

कुछ-कुछ गर्मी पड़ने लगी थी। महेन्द्र शाम के वक्त एक पतली चादर ओढ़े छत पर टहलने लगा। उसे बड़ी आशा थी कि आज भी उन लोगों की पढ़ाई चालू रहेगी। 'आनन्द मठ' करीब-करीब खतम हो चला है, सिर्फ दो-तीन अध्याय और बाकी रह गए हैं। विनोदिनी चाहे जितनी कठोर हो, बाकी के अध्याय वह उसे आज ज़रूर सुना जाएगी, किन्तु शाम बीत गई, समय गुज़र गया और अन्त में भारी निराशा के साथ उसे बिस्तर की शरण लेनी पड़ी।

सजी-संवरी और लाज से झुकी हुई आशा ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। देखा कि महेन्द्र पलंग पर सो गया है। अब वह कैसे आगे बढ़े, उसकी कुछ समझ में न आया। दूरी के बाद फिर से मिलने में कुछ देर के लिए एक नई शर्म आ घेरती है, जिस जगह परस्पर एक-दूसरे से अलग होते हैं, ठीक उस जगह मिलने के पहले प्रेमी-प्रेमिका परस्पर एक-दूसरे से नये प्रेमालाप की आशा करते हैं। आशा अपनी उस हमेशा की पहिचानी हुई आनन्द-शय्या पर आज बिना बुलाए कैसे जाए?

दरवाज़े के पास वह बहुत देर तक खड़ी रही, किन्तु महेन्द्र की तरफ से बुलाने का कोई लक्षण ही नहीं दिखाई दिया। आखिर बहुत धीरे-धीरे वह एक-एक कदम आगे बढ़ने लगी। यदि लापरवाही से अचानक कोई गहना बज उठे, तो मारे शर्म के वह मर मिटेगी। कांपते दिल से आशा मसहरी के पास पहुंची, मालूम हुआ कि महेन्द्र सो रहा है। तब उसका अपना ही साज-सिंगार उसके शरीर को घेर कर विद्रूप की हंसी हंसने लगा। उसका जी चाहने लगा कि वह बिजली की तेज़ी से कमरे में से निकलकर कहीं भाग जाए।

आशा बहुत ही संकोच के साथ बड़ी असावधानी से चुपचाप पलंग पर जाकर बैठ गई, फिर भी उससे इतना शब्द हुआ और पलंग भी इतना हिला-डुला कि महेन्द्र अगर सचमुच सोता होता, तो भी जाग जाता, किन्तु आज उसकी आंख नहीं खुली, क्योंकि वह सो नहीं रहा था। महेन्द्र पलंग पर उस किनारे से करवट लिए पड़ा था इसलिए आशा उसकी पीठ की तरफ सो रही। आशा चुपचाप पड़ी हुई आंसू बहा रही है, इतना तो महेन्द्र उस करवट लेटे हुए भी स्पष्ट समझ रहा था। उसकी

अपनी मस्ती उसके दिल का चक्की की तरह पीसकर पीड़ित करने लगी, किन्तु वह क्या बात करे, कैसे प्यार करे, उसकी कुछ समझ में न आया। मन ही मन वह अपने पर चाबुक से बरसाने लगा, उससे उसे चोट तो लगी, किन्तु उपाय नहीं सूझा। सोचने लगा, 'सवेरे तो नींद का बहाना टिक न सकेगा, तब फिर मुकाबला होने पर आशा को क्या जवाब दूंगा?'

किन्तु सवेरा हो भी न पाया कि आशा ने खुद ही महेन्द्र का संकट दूर कर दिया। वह बहुत तड़के ही अपने अपमानित साज-सिंगार को लिए हुए पलंग से उठकर चली गई। वह भी महेन्द्र को मुंह न दिखा सकी।

३१

महेन्द्र आज कुछ जल्दी ही कालेज चला गया। कालेज जाते समय आशा बराबर की खिड़की के पास खड़ी होकर महेन्द्र की गाड़ी की तरफ देखा करती थी, और महेन्द्र भी एक बार मुंह उठाकर आशा की ओर देख लिया करता था, यह इन लोगों का नित्य का नियम था। इस आदत के अनुसार गाड़ी का शब्द सुनते ही आशा खिड़की के पास जा खड़ी हुई। और महेन्द्र ने भी आदत के अनुसार क्षण-भर के लिए एक बार आंख उठाकर ऊपर को देखा। देखा कि आशा खड़ी है, अभी तक वह नहाई-धोई नहीं, मैले कपड़े पहने हैं, बाल बिखर रहे हैं, चेहरा सूखा हुआ है। देखते ही उसी क्षण उसने निगाह नीची कर ली. और हाथ की किताब खोलकर देखने लगा। कहां गयी चार आंखों की सूनी बातचीत और कहां गई वह भाव-भाषापूर्ण मिठास भरी हँसी?

गाड़ी चली गई। आशा जहां की तहां ज़मीन पर बैठ गई। सारा जगत् उसे फीका लगने लगा। मानो उसके जीवन का मज़ा ही बिगड़ गया हो।

सहसा आशा के मन में एंक विचार उठ आया। वह मन ही मन कह उठी, 'अच्छा, अब समझी! बिहारी लालाजी काशी गए थे, उसी बात पर ये नाराज हुए हैं। इसके सिवा इधर और कोई नाराज़ी की बात तो हुई नहीं, पर इसमें मेरा क्या दोष था?'

सोचते-सोचते अचानक एक क्षण के लिए मानो आशा के दिल का धड़कना बन्द हो गया। सहसा उसे ऐसी आशंका हुई है कि शायद उसके पति को शक हुआ है कि बिहारी के काशी जाने के साथ उसका भी कुछ सम्बन्ध है, दोनों की सलाह से यह काम हुआ है, किन्तु सचमुच ही अगर शक का कोई कारण हो, उससे अगर अपराध बन पड़ा हो, तो महेन्द्र उसे साफ तौर से कहता क्यों नहीं? उसका न्याय-विचार करके वह उसे दंड क्यों नहीं देता? किन्तु महेन्द्र तो साफ़-साफ़

कुछ न कहकर बराबर उससे कतराता ही फिरता है। इससे आशा के मन में बार-बार यही बात उठ रही है कि महेन्द्र के मन में ज़रूर ऐसा कोई सन्देह हो रहा है, जिसे वह खुद अन्याय समझता है, किन्तु आशा के आगे स्पष्ट रूप से स्वीकार करने में भी शर्म महसूस कर रहा है। नहीं हो उसका चेहरा ऐसा अपराधी जैसा क्यों होता?

महेन्द्र गाड़ी से जरा देर के लिए आशा का जो फीका चेहरा देख गया था, उसे वह दिन-भर अपने मन से न मिटा सका। कालेज के प्रत्येक लेक्चर में और श्रेणीबद्ध छात्रमण्डली में उसे बार-बार वही झरोखा. आशा का वही चेहरा. वही बिखरे हुए रूखे बाल, वही मैले कपड़े,वही दुखभरी बेचैन नज़रें स्पष्ट रेखाओं में अंकित हो-होकर दिखाई देने लगीं।

कालेज का काम पूरा करके वह गोलदिग्घी के किनारे घूमने लगा। घूमते-घूमते शाम हो आई, किन्तु फिर भी वह किसी तरह निर्णय न कर सका कि आशा के साथ उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। दया भरा छल करे या बिना धोखे की ढिठाई क्या करे? यह विचार ही नहीं उठा उसके मन में कि विनोदिनी को छोड़ देना चाहिए या नहीं। दया और प्रेम दोनों की मांग को वह कैसे निभाए?

अन्त में महेन्द्र ने अपने मन को समझाना शुरू किया कि 'आशा से अब भी मेरा जितना प्रेम है उतना बहुत कम स्त्रियों के भाग्य में होता है। उस स्नेह और प्रेम को पाकर आशा क्यों नहीं संतुष्ट रहेगी? विनोदिनी और आशा दोनों को ही स्थान देने लायक अच्छा दिल मेरे पास है। विनोदिनी के साथ मेरा जो पवित्र प्रेम का सम्बन्ध है, उससे दाम्पत्य नीति में किसी तरह की रुकावट नहीं हो सकती।'

इस तरह अपने को समझाकर महेन्द्र ने मन से एक भारी बोझ उतार दिया और यह सोचकर कि विनोदिनी और आशा दोनों में से किसी को बिना छोड़े ही दो चांदों की सेवा में लगे घर के सामने वह अपना जीवन इसी तरह बिता देगा, उसका मन खिल उठा; और यह निश्चय करके कि आज रात को वह जल्दी से बिस्तर पर जाकर अपने लाड़-प्यार और शीतल बोलचाल से आशा के मन से भारी कसक को क्षण-भर में दूर कर देगा, बड़ी तेज़ी से घर की ओर चल दिया।

भोजन के समय आशा उपस्थित नहीं थी, फिर भी महेन्द्र यह सोचकर कि आखिर सोने तो आएगी ही, अपने कमरे में जाकर पलंग पर लेट गया, किन्तु सन्नाटे भरे कमरे में सूनी शय्या पर वह कौन-सी याद उसके हृदय में जाग उठी? क्या यह आशा के साथ नव-विवाह की रोज की नई प्रेमलीला की याद है? नहीं। वे यादें तो वैसे ही क्षीण हो चली हैं जैसे सूरज के उगने के साथ-साथ रोशनी कमज़ोर होती रहती है। अब तो वहां, उस सरला बालिका की शर्मीली शीतल

छवि को न जाने कहां छिपाकर, एक तेज सुंदर जवान मूर्ति चमक उठी है।

महेन्द्र को विनोदिनी के साथ 'विषवृक्ष' की छीना-झपटी याद आने लगी। और फिर उन दिनों की याद आने लगी जब शाम के बाद विनोदिनी 'कपाल-कुण्डला' पढ़कर सुनाते-सुनाते बहुत रात कर देती, घर के सब सो जाते और रात को उस निभृत कमरे के सन्नाटे भरे सूनेपन में विनोदिनी का गला मानो आवेश में घुटा हुआ और कोमल मिठास भरा हो आता। तब वह सहसा अपने को सम्हालकर पुस्तक पटककर उठ खड़ी होती। फिर महेन्द्र कहता, "मैं तुम्हें नीचे तक पहुंचा आऊँ।" इन सब बातों की बार-बार याद करते-करते महेन्द्र का शरीर, मन खिलने लगा। रात होती गई, महेन्द्र के मन में आशंका-सी होने लगी कि आशा अब आती ही होगी, किन्तुआशा नहीं आई।

महेन्द्र सोचने लगा, "मैं तो कर्तव्य-पालन के लिए तैयार ही था, किन्तु आशा अगर फिजूल नाराज़ होकर न आए तो मैं क्या करूं!' सोचते-सोचते आधी रात में अपने मन में वह विनोदिनी के ध्यान को ही गहरा करने लगा।

घड़ी में जब एक बजा तब फिर महेन्द्र से न रहा गया। वह मसहरी उठाकर पलंग से नीचे उतर आया। कमरे से निकलकर छत पर चला गया। चारों तरफ नजर फैलाकर उसने देखा, गर्मियों की चांदनी रात बेहद सुंदर हो उठी है।

महेन्द्र की बहुत दिनों की रुकी हुई आकांक्षा तब अपने को सम्हाल न सकी। आशा के काशी से लौटने के बाद से विनोदिनी उसके सामने नहीं आई। उजाले के नशे में डूबी सुनसान गहरी रात महेन्द्र को मोह में जकड़ कर विनोदिनी की ओर ढकेलती हुई ले चली।महेन्द्रजीने से उतरकर नीचे पहुंच गया। विनोदिनी के कमरे के सामने वाले बरामदे में जाकर उसने देखा, कमरे का दरवाजा अब तक बन्द नहीं हुआ है। कमरे के भीतर जाकर देखा, बिस्तर बिछा हुआ है, किन्तु उस पर कोई सोया नहीं है। कमरे में किसी के आने की आहट सुनकर दक्षिण की तरफ के खुले हुए बराण्डे से विनोदिनी बोल उठी, "कौन?"

महेन्द्र ने बेचैन भीगे गले से उत्तर दिया, "मैं हू, विनोद!" और फिर वह एकदम सीधा बराण्डे में पहुंच गया।

गर्मियों की रात होने से राजलक्ष्मी भी वहीं विनोदिनी के साथ चटाई पर लेटी हुई थीं, वे पूछ उठीं, "महेन, इतनी रात में तू यहां कैसे?"

विनोदिनी ने अपनी घनी भौहों के नीचे से महेन्द्र पर वज्रबाण छोड़ा और चुप रह गई। महेन्द्र कुछ जवाब न देकर बड़ी तेज़ी से वहां से चलता बना।

दूसरे दिन सवेरे से ही बादलों की घटा छा गई। कुछ दिन असह्य गरमी पड़ने के बाद आज गहरे काले बादलों से तपा हुआ आकाश शीतल हो गया। आज समय होने से पहले ही महेन्द्र कालेज चला गया। उमके उतरे हुए कपड़े ज़मीन पर पड़े थे, और आशा उन्हें गिन-गिनकर उनका हिसाब लिखकर धोबी को दे रही थी।

महेन्द्र स्वभावत: भुलक्कड़ और लापरवाह आदमी ठहरा, इसलिए आशा से उसने कह रखा था कि धोबी को कपड़े डालने के पहले उन सबकी जेब वगैरह वह खूब अच्छी तरह देख लिया करे। देखते-देखते एक कुरते की जेब में हाथ डालते ही आशा को एक चिट्ठी मिली।

बिना लिफाफे की खुली हुई चिट्ठी निकालते ही उसने देखा, विनोदिनी के हस्ताक्षर हैं। जरा देर में उसका चेहरा पीला पड़ गया। चिट्ठी हाथ में लेकर वह बगल के कमरे में चली गई और पढ़ने लगी। उसमें लिखा था:

''कल आधी रात को तुमने जो करतूत कर डाली, उससे भी क्या तुम्हारा पेट नहीं भरा? आज फिर क्यों तुमने मुझे खेमी नौकरानी के हाथ गुप्त चिट्ठी भेजी? छी-छी, वह अपने मन में क्या सोचती होगी? मुझे क्या तुम संसार में किसी के आगे मुंह दिखाने लायक नहीं रहने दोगे?

इस संसार में मेरे लिए प्रेम करने और प्रेम पाने की कहीं भी कोई जगह नहीं। इसीसे मैं खेल-खेलकर प्रेम का दुख मिटा लिया करती हूं। जब तुम्हारे पास अवसर था; तब उस झूठे खेल में तुम भी शामिल हुए थे, किन्तु 'खेल की छुट्टी' क्या खतम नहीं होती? अब तुम्हारे अपने घर में तुम्हारी पुकार हुई है, अब फिर खेल-घर में तुम क्यों ताक-झांक रहे हो? अब धूल झाड़कर अपने घर जाओ। मेरे तो घर नहीं है, मन ही मन अकेली बैठकर खेलती रहूंगी, तुम्हें नहीं बुलाऊंगी।

तुमने लिखा है कि तुम मुझसे प्रेम करते हो। खेल के वक्त ऐसी बात सुनी जा सकती है, किन्तु अगर सच कहूं, तो कहना पड़ेगा कि मैं ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करती। एक समय था, जब तुम समझते थे कि तुम आशा से प्रेम कर रहे हो, वह भी झूठ था और आज तुम समझ रहे हो कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, यह भी झूठ है। असल में तुम सिर्फ अपने को प्यार करते हो। प्रेम की प्यास से मेरा तो हृदय से लेकर छाती तक सब सूख उठा है, उस प्यास को बुझाने की पूंजी तुम्हारे पास नहीं है, इस बात को मैं बहुत अच्छी तरह देख चुकी हूं। मैं तुमसे बार-बार कह चुकी हूं, तुम मुझे छोड़ दो, मेरे पीछे-पीछे न फिरो, खुद बेशर्म होकर मुझे लज्जित न करो। अब तो मेरा खेल का शौक भी मिट चुका है, अब पुकारने पर भी मेरी तरफ से उत्तर नहीं मिलेगा।

अपनी चिट्ठी में तुमने मुझे 'कठोर' कहा है। बात सच हो सकती है, किन्तु मेरे अन्दर कुछ दया भी है, इसी से आज मैं तुम्हें दया करके छोड़ रही हूँ। इस चिट्ठी का अगर उत्तर दो, तो समझूंगी कि बिना यहां से भागे तुम्हारे हाथ से मेरा छुटकारा नहीं।"

चिट्ठी पढ़ते ही आशा के सारे सहारे मानो अलग जा गिरे और शरीर की सारी पेशियां ढीली पड़ गईं। आशा पहले दीवार का, फिर अलमारी का, फिर चौकी का सहारा लेते-लेते अन्त में ज़मीन पर गिर पड़ी। क्षण-भर बाद होश में आकर फिर उसने चिट्ठी पढ़ने की कोशिश की, किन्तु उसका भौंचक मन किसी भी तरह उसका अर्थ न समझ सका। काले-काले अक्षर उसकी आंखों के आगे नाचने लगे। यह क्या? आखिर क्या हुआ? क्यों ऐसा हुआ? यह क्या समूचा सर्वनाश है? अब वह क्या करे, किसे बुलाए, कहां जाए? कुछ भी उसकी समझ में नहीं आ रहा। अन्त में वह छाती पीटकर हांफती हुई पुकार उठी, "मौसी!"

इस प्रेम पगी वार्ता के विकसित होते ही उसकी आंखों से झर-झर आंसू झरने लगे। ज़मीन पर बैठी-बैठी वह बहुत देर तक बार-बार रोती रही और अन्त में जब रोना कुछ थमा तो सोचने लगी, 'इस चिट्ठी का मैं क्या करूं? वे अगर जान गए कि यह चिट्ठी मेरे हाथ पड़ गई है, तो इसके लिए वे बहुत ज़्यादा लज्जित होंगे।' और इस कल्पना से वह बेहद सिकुड़ उठी। अन्त में उसने तय किया कि चिट्ठी को वह उसी कुर्ते की जेब में रखकर कुर्ता जहां का तहां टांग देगी, धोबी को नहीं देगी। तुरन्त वह चिट्ठी हाथ में लिए हुए अपने कमरे में लौट आई। इस बीच में धोबी मैले कपड़ों की गठरी पर सिर रखकर सो गया था। आशा कुर्ता उठाकर उसकी जेब में चिट्ठी रख रही थी कि इतने में आवाज़ आई, "किरकिरी!"

इतना सुनते ही आशा जल्दी से चिट्ठी और कुर्ता पलंग पर डालकर चट से उसके ऊपर बैठ गई। विनोदिनी ने भीतर आकर कहा, "धोबी कपड़े बहुत बदलने लगा है। जिन कपड़ों में निशान नहीं लगा उन्हें मैं लिए जाती हूं, सब पर निशान लगाना है।"

आशा से विनोदिनी के मुंह की तरफ देखा नहीं गया। वह इस डर से कि कहीं मुंह के भाव से मन की बात प्रकट न हो जाए, खिड़की की तरफ मुंह फेरकर आकाश की ओर देखती रही, और होंठ से होंठ दबाए रही, ताकि आंखों से आंसू न निकल पड़ें।

विनोदिनी ठिठककर खड़ी हो गई और आशा को एक बार उसने अच्छी तरह देख लिया। मन ही मन बोली, 'अच्छा, समझ गई। कल रात की बात का इसे पता लग गया मालूम होता है। हुं:, सारा गुस्सा मेरे ही ऊपर, जैसे मेरा ही कसूर हो!'

विनोदिनी ने आशा से बात करने की कोई कोशिश नहीं की। उसने कुछ कपड़े छांट लिए, और तेज़ी के साथ कमरे से वह बाहर चली गई।

विनोदिनी के साथ आशा अब तक जो सीधे मन से मित्रता निभाती रही है, उसकी ‐ इस भयानक दुःख में भी उसके हृदय में इकट्ठी हो उठी। उसके मन में सखी का आदर्श अंकित था उस आदर्श के साथ इस निर्दय पत्र को और एक बार मिला ने की उसकी इच्छा होने लगी। आशा फिर से चिट्ठी खोलकर देख रही थी कि ने में बड़ी तेज़ी से महेन्द्र आ पहुंचा कमरे में।

आशा ने चिट्ठी अपने आंचल में छिपा ली। महेन्द्र भी कमरे में आशा को देखकर ा ठिठककर खड़ा रह गया और फिर उतावली नज़र से कमरे में इधर-उधर ने लगा। आशा समझ गई कि महेन्द्र क्या ढूंढ रहा है, किन्तु उसकी समझ में न या कि कैसे वह हाथ की चिट्ठी को अपनी जगह रखकर वहां से भाग जाए।

महेन्द्र एक-एक करके मैले कपड़े उठा-उठाकर देखने लगा। उसके इस बेकार ी कोशिश को देखकर आशा से रहा नहीं गया; उसने चिट्ठी और कुरता ज़मीन पर क दिया, और दाहिने हाथ से मसहरी का खम्भा थामकर कोहनी में अपना मुंह छपा लिया।

महेन्द्र ने बड़ी तेज़ी से लपककर चिट्ठी उठा ली, फिर क्षण-भरके लिए भौंचक्क होकर आशा की तरफ देखा। इसके बाद, आशा को उस सन्नाटे में ज़ीने की सीढ़ियों से महेन्द्र के उतरने की आवाज़ सुनाई दी।

३३

राजलक्ष्मी ने आज सवेरे से विनोदिनी को नहीं बुलाया। विनोदिनी रोज के नियमानुसार भण्डार-घर में गई, किन्तु राजलक्ष्मी ने उसकी तरफ देखा तक नहीं। फिर भी उसने कहा, ''बुआजी, तुम्हारी तबीयत ठीक नहीं मालूम होती। ठीक रहे भी कैसे! कल रात लालाजी ऐसी करतूत कर बैठे कि जिसका ठीक नहीं। एकदम पागल की तरह चले आए। मझे तो फिर नींद नहीं आई।

राजलक्ष्मी मुंह भारी किए बैठी रहीं. 'हां' या 'ना' कुछ जवाब ही नहीं दिया।

विनोदिनी बोली, ''शायद किरकिरी के साथ कुछ खटपट हो गई होगी,बस, फिर खैर कहां! उसी वक्त नालिश और फैसले के लिए भाभी पर धावा बोल दिया। सवेरे तक वहां सब्र किसको है! कुछ भी कहो, बुआजी. तुम नाराज न होना, तुम्हारे लड़के में और चाहे हजार गुण हों, पर धीरज तो रत्ती-भर भी नहीं है। इसीलिए मुझसे उनकी नहीं बनती।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''बहू, तुम झूठ बक रही हो। आज मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा।''

विनोदिनी बोली ''मुझे भी कुछ अच्छा नहीं लग रहा बुआजी। तुम्हारे मन को

चोट पहुंचेगी, इस डर से झूठी बातों से तुम्हारे लड़के के दोष ढकने की कोशिश कर रही थी मैं, पर बात ऐसी है कि ढकी नहीं जा सकती।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "अपने लड़के के दोष-गुण मुझे सब मालूम हैं, पर तुम ऐसी जादूगरनी हो, यह मैं नहीं जानती थी।"

विनोदिनी कुछ कहने के लिए तैयार हुई और उसी क्षण अपने को संभाल कर बोली, "सो तो बात ठीक है, बुआजी, कोई भी किसीको नहीं जानता। अपने मन को भी क्या सब जानते है? तुमने क्या कभी अपनी बहू से बैर करके इस जादूगरनी के जरिये अपने लड़के का मन बहलाना नहीं चाहा था! एक बार जरा सोचकर देखो।"

राजलक्ष्मी सहसा आग की तरह भड़क उठी, बोलीं, "अभागिन कहीं की! लड़के के सम्बन्ध में मां को तू इस तरह बदनाम करती है! तेरी जीभ क्यों नहीं गल जाती!" मारे क्रोध के राजलक्ष्मी का गला रुक आया, जल्दी से वे वहां से उठकर चली गई।

विनोदिनी उस सुनसान कोठरी में बहुत देर तक स्थिर खड़ी रही, उसकी आँखों से चिनगारियाँ-सी छूटने लगीं।

सवेरे का घर का काम-धन्धा हो चुकने के बाद राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को बुलवा भेजा। महेन्द्र समझ गया कि कल रात की घटना के विषय में उससे पूछताछ की जाएगी। इसके पहले विनोदिनी से उसे अपने पत्र का उत्तर मिल चुका था और उससे उसका मन बहुत बेचैन हो उठा था। उस आघात के प्रतिघात तौर पर उसका समूचा हृदय विनोदिनी की ओर जोर से दौडा चला जा रहा था। उसपर फिर मां के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर करना उसके लिए कठिन था। इसलिए इस समय उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि वह घर से कहीं दूर जाकर सब बातों पर ठीक से विचार कर देखे उसने नौकर से कह दिया, "मां से जाकर कहना, आज कालेज में मुझे एक ज़रूरी काम है, अभी जाना है, लौटूंगा तब मिल लूंगा उनसे।" इतना कहकर वह भगोड़े की तरह उसी वक्त कपड़े पहनकर बिना खाए-पिए घर से भाग खड़ा हुआ।

कुछ देर पहले एक बार ज़ोर की वर्षा हुई और बन्द हो गई थी। अब दिन बदली का सा हो रहा है। विनोदिनी का मन आज बहुत ही उदास है। मन में किसी तरह की अशान्ति या दुःख होता है तो विनोदिनी काम की मात्रा बढ़ा देती है। इसीसे उसने आज दुनिया-भर के कपड़े इकट्ठे करके उनमें निशान लगाना शुरू कर दिया है। आशा के पास जब कपड़े लेने गई, तो आशा का मुंह देखकर उसका और भी मिजाज बिगड़ गया। संसार में अगर अपराधी ही होना है, तो अपराध की सिर्फ लांछना ही क्यों भोगी जाए, उसका जो सुख है, उसे क्यों नहीं भोगा जाए? फिर झमझम वर्षा होने लगी। विनोदिनी अपने कमरे में ज़मीन पर बैठी है। उसके सामने कपड़ों का ढेर पड़ा है। खेमी नौकरानी एक-एक कपड़ा आगे बढ़ाती जाती है। और विनोदिनी उसमें निशान डालने की स्याही से निशान डालती जाती है।

इतने में बिना कुछ कहे-सुने सहसा दरवाज़ा खोलकर महेन्द्र एकदम भीतर चला आया। खेमी दासी हाथ का काम छोड़कर सिर ढकती हुई बाहर भाग गई।

विनोदिनी हाथ का कपड़ा फेंककर बिजली की सी तेज़ी से उठ खड़ी हुई। बोली, "जाओ, मेरे इस कमरे से तुरंत चले जाओ तुम!"

महेन्द्र ने कहा, "क्या किया है मैंने?"

विनोदिनी ने कहा, "क्या किया है?डरपोक! कायर! क्या करने की ताकत है तुममें? न तो तुम प्रेम करना जानते हो,और न कर्तव्य करना? फिर फिज़ूल में मुझे क्यों इस तरह बदनाम कराते हो?"

महेन्द्र ने कहा, "मैं तुमसे प्रेम नहीं करता, यह बात तुम कहती हो!"

विनोदिनी ने कही, "हां, हां, मैं कहती हूं। दुबकाचोरी, दबाना-ढकना, एक बार इधर, तो एक बार उधर, तुम्हारी इन चोर की सी आदतों को देखकर मुझे तुमसे घृणा हो गई है। अब यह सब अच्छा नहीं लगता मुझे। तुम जाओ यहां से।"

महेन्द्र ने कहा, "अब भी प्रार्यश्चित्त करने का समय है, विनोद! मैं अगर अब ढुलमुल न होऊं,सब कुछ छोड़-छाड़कर चलने को तैयार हो जाऊं, तो तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो?" इतना कहकर महेन्द्र ने विनोदिनी के दोनों हाथ पकड़ लिए और ज़बरदस्ती उसे अपनी ओर खींच लिया।

विनोदिनी ने कहा, "छोड़ो, मेरे लग रही है।"

महेन्द्र ने कहा, "लगने दो। बताओ, चलोगी तुम मेरे साथ?"

विनोदिनी ने कहा, "नहीं, मैं नहीं जाऊंगी। हरगिज़ नहीं।"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों नहीं जाओगी? तुम ही मुझे सर्वनाश के मुंह तक खींच लाई हो; अब तुम मुझे छोड़ नहीं सकतीं। तुम्हें मेरे साथ जाना ही होगा।" कहते-कहते उसने बलपूर्वक विनोदिनी को अपनी छाती के पास खींच लिया, और ज़बरदस्ती छाती से लगाए रखने की कोशिश करता हुआ बोला, "तुम्हारी घृणा भी अब मुझे पीछे नहीं हटा सकती, विनोद! मै तुम्हे ले ही जाऊंगा और जैसे भी हो, तुम्हें मुझसे प्यार करना ही होगा।"

विनोदिनी ने काफी जोर लगाकर अपने को अलग कर लिया।

इतने में राजलक्ष्मी चली आई। बोलीं, "यह क्या कर रहा है, महेन?"

महेन्द्र की पगलाई दृष्टि एक क्षण के लिए मां की तरफ फिरी और फिर दूसरे ही क्षण विनोदिनी की तरफ हो गई। उसने कहा, "मैं अपना सब कुछ छोड़कर चल दूंगा, बोलो चलोगी तुम मेरे साथ?".

विनोदिनी ने क्रोध में भरी राजलक्ष्मी के मुंह की ओर एक बार देखा, फिर बढ़कर बिना किसी हिचकिचाहट के महेन्द्र का हाथ पकड़ते हुए उसने कहा, "हां चलूंगी।"

महेन्द्र ने कहा, "तो आज-भर के लिए तुम ठहर जाओ। मैं चल दिया। कल से तुम्हारे सिवा मेरा और कोई भी न होगा।" इतना कहकर वह चला गया।

बिहारी अब तक मेडिकल कालेज में पढ़ रहा था। ठीक परीक्षा के पहले ही उसने कालेज छोड़ दिया। इसपर कोई आश्चर्य प्रकट करता, तो वह कहता, "दूसरों का स्वास्थ्य पीछे देखूंगा, फिलहाल अपना स्वास्थ्य तो ठीक कर लूं।"

कालेज से डिग्री पाकर पहले तो वह शिवपुर इंजीनियरिंग कालेज में भरती हुआ और फिर वहां से जितना ज्ञान प्राप्त करने की उसकी इच्छा थी, उतना ज्ञान और दक्षता प्राप्त करके वह मेडिकल कालेज में भरती हो गया। महेन्द्र उससे साल-भर पहले डिग्री लेकर मेडिकल कालेज में भरती हुआ था।

कालेज के विद्यार्थियों में इन दोनों की मित्रता प्रसिद्ध थी। वे हंसी-हंसी में इन्हें "श्याम देश की जुड़वा जोड़ी कहा करता थे। पिछले साल महेन्द्र परीक्षा में फेल हो गया, और तब से दोनों एक श्रेणी में आकर मिल गए। इस बीच में सहसा इन दोंनो का जोड़ क्यों अलग हो गया, सो विद्यार्थियों की कुछ समझ में न आया। रोज जहां महेन्द्र से भेंट होगी ही, किन्तु पहले जैसी नहीं होगी, वहां बिहारी से किसी भी तरह जाते नहीं बना। सभी जानते थे कि बिहारी अच्छी तरह पास करके ही सम्मान और पुरस्कार प्राप्त करेगा, किन्तु हुआ यह कि उसने परीक्षा के पहले ही कालेज छोड़। दिया।

बिहारी के घर के पास एक कच्चे झोंपड़े में राजेंद्र चक्रवर्ती नाम का एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह छापेखाने में बारह रुपये महीने पर कम्पोज़िटरी का काम करके अपना गुज़र करता था। एक दिन बिहारी ने उससे कहा, "तुम अपने लड़के को मेरे पास रखो, मैं उसे खुद पढ़ा-लिखाकर आदमी बना दूंगा।"

ब्राह्मण मानो जी गया। बड़ी खुशी से उसने अपने आठ साल के लड़के बसन्त को बिहारी के हाथ सौंप दिया।

बिहारी उसे अपने तरीके से शिक्षा देने लगा। अपने मन में उसने तय किया कि 'दस साल की उम्र तक इसे कोई किताब नहीं पढ़ाऊंगा, केवल मौखिक शिक्षा देता रहूंगा।' बिहारी बसन्त को साथ लेकर कभी किले के मैदान में घूमने जाता, कभी उसके साथ खेलता रहता, कभी उसे अजायबघर दिखलाता। इस तरह उसके दिन कटने लगे। बसन्त को वह ज़बानी अंग्रेजी सिखाता और कहानी के रूप में इतिहास सुनाया करता। तरह-तरह से बालक के मन की आदत की परीक्षा करना और उसको नतीजे के लिए उपयुक्त साधन उपस्थित करना, यह उसका दिन-भर का काम था। अपने को वह क्षण-भर के लिए भी छुट्टी नहीं देता।

उस दिन शाम को बाहर निकलना मुश्किल हो गया। दोपहर को वर्षा ज़रा बन्द रही, फिर तीसरे पहर ज़ोर से पानी बरसने लगा। बिहारी अपने ऊपरवाले बड़े

कमरे में बत्ती जलाकर बसन्त के साथ अपने नये तरीके से खेल खेल रहा था। इतने में नौकर ने आकर कहा, "बाबू सा'ब, एक औरत ।"

नौकर की बात खतम भी न हो पाई कि विनोदिनी कमरे के भीतर आ गई। बिहारी दंग रह गया, बोला, "यह क्या, भाभी! बात क्या है?" विनोदिनी ने कहा, "तुम्हारे यहां घर की स्त्रियों में से कोई नहीं है?"

बिहारी ने कहा, "न तो घर की कोई है, न बाहर की। एक बुआ हैं, सो देश रहती हैं।"

विनोदिनी ने कहा, "तो तुम मुझे वहीं अपनी बुआ के पास छोड़ आओ।"

बिहारी ने कहा, "वहां मैं तुम्हें क्या कहके छोड़ आऊं?"

विनोदिनी ने कहा, "दासी कहके। मैं वहां घर का सब काम–काज किया करूंगी।"

बिहारी ने कहा, "बुआजी को लेकिन कुछ आश्चर्य होगा उन्होंने आज तक कभी मुझसे दासी के अभाव की चर्चा नहीं की। पहले यह तो सुनूं कि ऐसा विचार मन में उठा क्यों? बसन्त, ज़ाओ तुम, सो जाओ।"

बसन्त चला गया। विनोदिनी ने कहा, "बाहर की घटना सुनकर तुम भीतर की बात कुछ भी नहीं समझ सकोगे।"

बिहारी ने कहा, "न समझ सका, तो न सही और गलत भी समझा, तो उससे नुकसान क्या?"

"अच्छा, न हो तो गलत ही समझ लेना। महेन्द्र मुझसे प्रेम करता है।"

"यह बात तो नई नहीं और ऐसी भी नहीं कि दुबारा सुनने की इच्छा हो।"

"बार–बार सुनाने की इच्छा मेरी भी नहीं है, इसीलिए तुम्हारे पास आई हूं। तुम मुझे शरण दो।"

"तुम्हारी इच्छा नहीं, तो आज का यह संकट लाया कौन? महेन्द्र जिस रास्ते से जा रहा था, उस रास्ते से उसे भ्रष्ट किसने किया?"

"मैंने किया। तुमसे कोई बात मैं छिपाऊंगी नहीं। यह सब कुछ मेरी ही करतूत है। मैं बुरी होऊं या जैसी भी होऊं, एक बार तुम मेरी स्थिति में आकर मेरी तरह मेरे दिल की बात समझने की कोशिश करो। अपनें दिल की आग से मैंने महेन्द्र का घर जलाया है। एक बार मैंने समझ लिया था कि मैं महेन्द्र से प्यार करती हूं, किन्तु गलत, भूल थी मेरी वह।"

"जो प्यार करता है, सो क्या इस तरह आग लगा सकता है?"

"लालाजी, यह तुम्हारे शास्त्रों की बात है। अभी मेरी वह अवस्था नहीं आई, जब शास्त्र का आदेश पालन करने की बुद्धि पैदा हो जाती है। लालाजी, तुम अपनी पोथी रखकर अंतर्यामी की तरह एक बार मेरे दिल पर नजर डालो। अपनी

भलाई-बुराई सब आज मैं तुम्हारे सामने खोलकर कह देना चाहती हूं।"

"पोथी क्या मैं यों ही खोले रखता हूं, भाभी? दिल को दिल के ही नियमानुसा समझने का भार अंतर्यामी पर ही रहने दो। हम लोग अगर पोथी के नियमानुसार न चलें, तो अंत में ठोकर खाकर गड्ढे में गिरने से रोकेगा कौन हमें?"

"सुनो लालाजी मैं बेशर्म होकर कह रही हूं, तुम मुझे बचा सकते थे। महेन्द्र मुझे चाहता ज़रूर है, किन्तु ठोस अन्धा है, मुझे समझता नहीं। एक बार मुझे ऐसा लगा था कि तुम मुझे समझ गए हो और एक बार शायद तुमने मुझपर श्रद्धा भी की थी। सच कहना, उस बात छिपाने की कोशिश मत करना।"

"सच ही कहता हूँ, मैं तुम पर श्रद्धा करने लगा था।"

"उसमें तुमने गलती नहीं की थी, लालाजी, किन्तु यदि समझ ही लिया था, यदि श्रद्धा ही करने लगे थे, तो वहीं रुक क्यों गए? मुझसे प्रेम करने में तुम्हारे लिए रुकावट क्या थी? मैं आज बेशर्म होकर तुम्हारे पास आई हूं और बेर्शम होकर ही आज तुमसे कहती हूं, तुमने मुझे क्यों नहीं चाहा, क्यों नहीं मुझसे प्रेम किया? मेरी फूटी तकदीर। तुम भी क्या आशा के प्रेम में डूबे हुए थे? नहीं, तुम नाराज़ नहीं हो सकते। बैठो, लालाजी, मैं कोई भी बात ढक के नहीं कहूंगी। तुम आशा से प्रेम करते हो, इस बात को जब तुम खुद भी नहीं जानते थे, तब भी मैं जानती थी, किन्तु आशा के भीतर तुम लोगों ने ऐसी कौन-सी बात पाई है, उसमें क्या देखा है, मेरी कुछ समझ में नहीं आता। अच्छाई कहो या बुराई, उसमें है क्या? विधाता ने क्या पुरुषों की दृष्टि के साथ भीतर झांकने की दृष्टि ज़रा भी नहीं दी? पता नहीं, तुम लोग क्या देखकर कितना-सा देखकर ऐसे मोहित हो जाते हो! भोले हो तुम लोग, अन्धे बिलकुल अन्धे!"

बिहारी उठके खड़ा हो गया, बोला, "आज तुम मुझे जितना भी सुनाना चाहे सुनाओ, मैं सब सुनूंगा, किन्तु जो बात कहने की नहीं उसे मत कहो, तुमसे इतनी मेरी प्रार्थना है।"

विनोदिनी ने कहा, "लालाजी,कहां तुम्हारे चोट पहुंच रही है, मैं जानती हूं, कि जिसकी श्रद्धा मिली थी मुझे और जिसका प्रेम पाने से मेरा जीवन सार्थक हो जा उसके पास रात के समय मैं जो अपना सब कुछ लुटाकर दौड़ी आई हूं, सो कित बड़ी कसक से, उसका ख्याल करके ज़रा धैर्य से काम लो। मैं सच कहती हूं, तुम आशा से प्यार न करते होते, तो मेरे द्वारा आशा का आज ऐसा सर्वनाश हरगि होता।"

बिहारी का चेहरा सफेद-फक पड़ गया। उसने कहा, "आशा का क्या हो ग तुमने उसका क्या कर डाला?"

विनोदनी बोली, "महेन्द्र अपना सब कुछ छोड़कर कल ही मुझे लेकर घर से निकल जाने की तैयारी कर चुका है।"

बिहारी सहसा गरज उठा, बोला, "यह हरगिज़ नहीं हो सकता। नहीं-नहीं, हरगिज़ नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "हूं.. नहीं-नहीं, हरगिज़ नहीं, किन्तु महेन्द्र को आज रोक कौन सकता है?"

बिहारी ने कहा, "तुम रोक सकती हो।"

विनोदिनी कुछ देर तक चुप रही, फिर बिहारी की आंखों में आंखे डालकर बोली, "किसके लिए रोकूं मैं? तुम्हारी आशा के लिए? मेरा अपना सुख-दुःख क्या कुछ भी नहीं? तुम्हारी आशा का भला हो; महेन्द्र के दाम्पत्य और घर-गृहस्थी का भला हो, बस इसीके लिए मैं अपनी इसलोक की सारी इच्छाओं को मिटा दूं? इतनी अच्छी मैं नहीं हूँ, धर्मशास्त्र की पोथियां मैंने इतनी ज़्यादा नहीं पढ़ी। मैं जो कुछ छोड़ूंगी उसके बदले में मैं क्या पाऊंगी?"

बिहारी के चेहरे का भाव धीरे-धीरे बेहद कठिन हो उठा, वह बोला, "तुमने बहुत-सी स्पष्ट बातें कहने की कोशिश की हैं, अब मैं भी एक स्पष्ट बात कहता हूं, सुनो। तुमने आज जो काण्ड कर डाला है और तुम जो बातें कह रही हो, उसका अधिकांश तुमने जो साहित्य पढ़ा है, उससे चुराया हुआ है, उसका बारह आना हिस्सा नाटक-उपन्यास का है, तुम्हारा अपना नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "नाटक! उपन्यास!"

बिहारी ने कहा, "हां, नाटक, उपन्यास। सो भी बहुत ऊंचे दर्जे के नहीं। तुम समझती हो, यह सब तुम्हारी अपनी बातें हैं, यह गलत है। यह सब छापेखाने की गूंज है। तुम अगर बिल्कुल भोली मूर्ख सरला बालिका होतीं, तो भी तुम संसार में प्रेम से वंचित न रहतीं, किन्तु नाटक की नायिका स्टेज पर शोभा देती है, घर में उससे काम नहीं चलता।"

कहां गयी विनोदिनी की वह तेज चमक, कहां गया उसका वह असह्य गर्व? मंत्र से घायल सांपिन की तरह वह भौंचक्क होकर झुक गई। फिर बहुत देर बाद बिहारी के मुंह की तरफ बगैर देखे उसने शान्त-नम्र स्वर में कहा, "तुम मुझे क्या करने को कहते हो?"

बिहारी ने कहा, "असाधारण कुछ करने की कोशिश मत करो। साधारण स्त्री की सच्ची अक्ल जो कहे वही करो। तुम देश चली जाओ।"

विनोदिनी बोली, "कैसे जाऊं?"

बिहारी ने कहा, "मैं तुम्हें ज़नाने डिब्बे में बिठाकर तुम्हारे गांव के स्टेशन तक पहुंचा आऊंगा।"

विनोदिनी ने कहा, "तो आज रात को मैं यहीं रह जाऊं?"

बिहारी ने कहा, "नहीं अपने ऊपर मुझे इतना विश्वास नहीं है।"

सुनते ही उसी क्षण विनोदिनी चौकी से उठकर बिहारी के पैरों के पास लोट गई और उसके पांवों को अपनी छाती से चिपटाकर बोली, "कम से कम इतनी कमजोरी बनाए रखना, लालाजी, एकदम पत्थर के देवता की तरह पवित्र न बन जाना। किसी बुरे से प्यार करके थोड़े बुरे बने रहना।" इतना कहकर विनोदिनी बार-बार उसके पांव चूमने लगी।

बिहारी विनोदिनी के इस अचानक और-कल्पना से परे के व्यवहार से क्षण-भर के लिए मानो अपने को सम्हाल न सका। उसके शरीर-मन की गाठें मानो शिथिल हो आई। विनोदिनी बिहारी के इस स्तब्ध विह्वल भाव अहसास करके उसके पांव छोड़कर घुटनों के बल ऊपर हो उठी और चौकी पर बैठे हुए बिहारी के गले में अपनी बांहे डालकर बोली, "मेरे जीवनसर्वस्व, मैं जानती हूं, तुम मेरे चिरकाल के नहीं हो, किन्तु आज एक क्षण के लिए तुम मुझे प्यार करो। उसके बाद मैं अपने उसी जंगल में चली जाऊंगी। किसीसे कुछ भी नहीं चाहूंगी। मरने तक याद रखने लायक तुम मुझे कुछ तो दो आज।" कहते हुए विनोदिनी ने आंख मींचकर अपने होंठ बिहारी के मुंह की ओर बढ़ा दिए।

क्षण-भर के लिए दोनों जने निश्चल और सारा कमरा सन्नाटे भरा हो रहा। इसके बाद एक गहरी सांस लेकर बिहारी ने धीरे-धीरे विनोदिनी के हाथ अलग कर दिए और उठकर वह दूसरी चौकी पर जा बैठा,फिर उसने अपने रुंधे गले को साफ करते हुए कहा, "रात को एक बजे एक पैसेंजर ट्रेन है।"

विनोदिनी कुछ देर स्थिर बैठी रही, फिर स्पष्ट न हो सकने वाले स्वर में बोली, "मैं उसी गाड़ी से चली जाऊंगी।"

इतने में, नंगे पांव, उघड़े बदन बसन्त अपना पुष्ट गोरा सुन्दर शरीर लिए विनोदिनी की चौकी के पास खड़ा हुआ और विनोदिनी की तरफ देखने लगा। बिहारी ने पूछा, "सोने नहीं गया तू?"

बसन्त कुछ जवाब न देकर अपना गम्भीर चेहरा लिए खड़ा रहा।

विनोदिनी ने उसकी तरफ दोनों हाथ बढ़ा दिए। बसन्त पहले तो कुछ दुविधा में पड़ गया और वह धीरे-धीरे विनोदिनी के पास पहुंच गया। विनोदिनी ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसकी आंखों से झरझर आंसू बहने लगे।

३५

जो असम्भव है वह भी सम्भव हो जाता है और जो असह्य है वह भी सहने योग्य

हो जाता, नहीं तो, महेन्द्र के घर उस दिन की रात ही नहीं कटती। विनोदिनी को तैयार रहने की सलाह देते हुए महेन्द्र ने उसी रात को एक पत्र लिखकर डाक में डाल दिया था, जो दूसरे दिन सवेरे महेन्द्र के घर पहुंचा।

आशा उस समय पलंग पर लेटी हुई थी। नौकर चिट्ठी लेकर ऊपर पहुंचा और बोला, "बहूजी, चिट्ठी है।"

आशा के दिल के रक्त ने धक् से उसके हृदय को धक्का मारा। पल-भर में हजारों आश्वासन और आशंकाएं उसके मन में एकसाथ जाग उठीं। झटपट सिर उठाकर उसने चिट्ठी हाथ में ले ली। महेन्द्र के हाथ की लिखावट है, विनोदिनी का नाम लिखा है। उसी क्षण उसका सिर तकिये पर गिर पड़ा। कोई बात न कहकर उसने चिट्ठी नौकर को लौटा दी।

नौकर ने पूछा, "चिट्ठी किनको देनी होगी, बहूजी?"

आशा ने कहा, "मुझे नहीं मालूम।"

रात के करीब आठ बजे होंगे। महेन्द्र बड़ी तेजी से आंधी की तरह सीधा विनोदिनी के कमरे के सामने जा खड़ा हुआ। देखा, कमरे की बत्ती नहीं जल रही, चारों तरफ अंधेरा है। जेब में से दियासलाई निकालकर जलाकर देखा, कमरा सूना है। विनोदिनी नहीं है और न घर में उसका कोई सामान ही है। दक्षिण की तरफ के बराण्डे में जाकर देखा, बराण्डा सूना है। फिर भी उसने पुकारा, "विनोद!" किन्तु कोई उत्तर नहीं मिला।

फिर वह अपने मन में कहने लगा, भोला हूं मैं, मूर्ख हूं। उसे तो उसी समय मुझे अपने साथ ले जाना चाहिए था। ज़रूर मां ने उसे ऐसा डांटा-फटकारा होगा कि उसके लिए घर में रहना असम्भव हो गया होगा।' और यह कल्पना मन में आते ही उसपर उसे दृढ़ विश्वास भी हो गया।

उसी क्षण वह अधीर होकर मां के पास पहुंचा। वहां भी बत्ती नहीं जल रही थी, किन्तु अंधेरे में भी मालूम हुआ कि राजलक्ष्मी बिस्तर पर लेटी हुई हैं। महेन्द्र तेजी से उनके पास ज़ाकर रूठे गले से बोल उठा, "मां विनोदिनी से क्या कुछ कहा-सुना है?"

राजलक्ष्मी ने कहा, "कुछ नहीं कहा।'"

"तो फिर वह कहां गई?"

"मैं क्या जानूं।"

महेन्द्र अविश्वास के स्वर में बोल उठा, "तुम नहीं जानतीं।'" अच्छा, मैं उसकी खोज में चल दिया। वह कहीं भी हो, मैं उसका पता लगाकर ही रहूंगा। इतना कहकर महेन्द्र वहां से चल दिया।

राजलक्ष्मी झटपट बिस्तर से उठकर उसके पीछे-पीछे दौड़ती हुई कहने लगीं। "महेन। लौट आ, मेरी एक बात सुन जा।"

किन्तु महेन्द्र एक सांस में दौड़ता हुआ घर से बाहर निकल गया।

क्षण-भर बाद ही फिर लौटकर उसने दरबान से पूछा, "बहूजी कहां गई हैं, मालूम है?"

दरबान ने कहा, "हम लोगों से तो वे कुछ कह नहीं गई, बाबू साहब, हम लोगों को कुछ नहीं मालूम।"

महेन्द्र जोर से गरजकर बोला, "कुछ नहीं मालूम?"

दरबान हाथ जोड़कर बोला, "नहीं, बाबू सा'ब, हम लोगों को कुछ नहीं मालूम।"

महेन्द्र ने अपने में सोचा, शायद सबको सिखा-पढ़ा दिया है। उसने कहा, "अच्छा, कोई बात नहीं।"

महानगरी के राजपथ में उस समय गैस के प्रकाश-बाण से बिंधे हुए शाम के अंधेरे में कुलफी-मलाई और मछली वाले तपसी-मछली की फेरी लगा रहे थे। महेन्द्र घर से निकलकर शोरगुल से परेशान जनता में जा घुसा और खो गया।

३६

बिहारी कभी भी अंधेरी रात में अकेला घर में बैठा किसी का ध्यान नहीं करता। आज तक कभी भी उसने अपने को अपना आलोच्य विषय नहीं बनाया। वह हमेशा अपनी पढ़ाई-लिखाई, काम-काज या बन्धु-बान्धवों में व्यस्त रहता था। अपनी अपेक्षा अपने चारों तरफ के संसार को प्रधानता देने में ही उसे अधिक आनन्द आता है, किन्तु आज बिहारी अपने उस मन में बसने वाले को किसी भी तरह से बाधा देकर अलग न रख सका। कल विनोदिनी को वह देश पहुंचा आया है, उसके बाद से वह जिस किसी काम में या जिस किसी आदमी के साथ रहा, बराबर उसका गुफा में सोने वाला छटपटाहट से भरा दिल अपने छिपे हुए सूनेपन की ओर आकर्षित करता रहा।

थकान और दुख ने बिहारी को आज परास्त कर दिया। रात के करीब नौ बजे होंगे। बिहारी के कमरे की सामने वाली दक्षिण की छत पर दिन के आखीर में रमनेवाली गर्मी की हवा बेहद उतावली होकर घूम-फिर रही है। बिहारी बिना चाद के अंधेरे में छत पर आराम कुर्सी डाले बैठा है।

आज शाम को उसने बालक बसन्त को नहीं पढ़ाया, उसे जल्दी छुट्टी दे दी। आज उसका दिल मानो मां के त्यागे हुए बच्चे की तरह तसल्ली के लिए, अपने चिराभ्यस्त

प्रेम रस से शीतल पूर्व जीवन के लिए विश्व-जगत के अंधेरे में दोनों हाथ उठाकर न जाने किसे ढूंढ रहा है! आज उसकी दृढ़ता और कठोर संयम का बांध टूटकर न जाने कहां बह गया है। उसने जिनके विषय में कुछ भी न सोचने का प्रण किया था, आज उसका सारा दिल उन्हीं की ओर दौड़ा जा रहा है, आज उसमें उसे रोकने की रत्ती-भर भी शक्ति नहीं।

महेन्द्र के साथ अपने बचपन के प्रेम से लेकर उस प्रेम की समाप्ति तक के सारे चित्र को, जिसकी लम्बी कहानी तरह-तरह के वर्णों से चित्रित और जल, स्थल, पर्वत नदियों से बंटे मानचित्र की तरह उसके मन में लिपटी हुई थी, बिहारी ने अपने सामने खोलकर रख लिया और उसे गौर से देखने लगा। देखने लगा, जिस छोटे-से जगत पर उसने अपने जीवन की प्रतिष्ठा की थी, वह किस जगह बुरे-ग्रह आघात से बिखर गया? पहले उसमें बाहर से कौन घुसा? डूबते सूरज के समय लाल छटा से प्रकाशित आशा का लाज भरा तरुण चेहरा अंधेरे में उसके सामने अंकित हो उठा और उसके साथ-साथ मंगल-उत्सव की पण्य शंखध्वनि उसके कानों में बजने लगी। यही शुभग्रह न दिखाई पड़ने वाले आकाश के अज्ञात प्रांत से आकर दोनों मित्रों के बीच में खड़ा हो गया था और थोड़ी-सी दूरी ले आया था। कहां से वह ऐसी गहरी टीस ले आया, जिसे मुंह से कहा भी नहीं जा सकता? किन्तु फिर भी यह दूरी यह टीस अपूर्व स्नेह से रगी हुई और मिठास की किरण से ढकी और पूर्ण होकर उसके दिल में बनी ही रही।

उसके बाद जिस शनि ग्रह का उदय हुआ, उसने बन्धुओं के प्रेम को, दम्पति के प्रेम को, घर की शान्ति और पवित्रता को एकदम तहस-नहस कर दिया। बिहारी ने तीव्र घृणा से उस विनोदिनी को पूरे मन से बहुत दूर ढकेल फेंकने की कोशिश की, किन्तु कैसा आश्चर्य है, आघात उसके लिए मानो बहुत ही मीठा हो गया, उसे छू तक नहीं सका। वह परम सुन्दरी पहेली अपनी न भेदी जा सकने वाली रहस्यपूर्ण काले बादलों जैसी एकटक दृष्टि लिए हुए कृष्णपक्ष के अन्धकार में बिहारी के सामने स्थिर होकर खड़ी रही। गर्मी की रात की उच्छ्‌वसित दखिनी हवा उसके घने विश्वास की तरह उसके तन-मन में घुस-घुसकर टकराने लगी। धीरे-धीरे उन पलकहीन नेत्रों की आग जैसी चमक हलकी हो आई, देखते-देखते प्यास से सूखी वह खर दृष्टि आंसुओं से भर और गहरा कर गम्भीर भाव-रस में नष्ट हो उठी और पल-भर में उस मूर्ति ने बिहारी के पैरों के आगे पड़कर उसके दोनों पैरों को प्राण-पण शक्ति से अपनी छाती से लगा दिया, फिर उसने सुन्दर-सुहावनी जादू की बेल की तरह बिहारी को घेर कर हर पल बढ-बढ़कर तभी-तभी खिली महक भरी फूलों की बेल के समान अपना एक चुम्बन की चाहत भरा मुख बिहारी के होंठों के आगे बढ़ा दिया। बिहारी आंख मींचकर उस कल्प-मूर्ति को अपने स्मृति-लोक से

निकाल देने की कोशिश करने लगा, किन्तु किसी भी तरह उसपर आघात करने के लिए मानो उसका हाथ ही नहीं उठा, एक अधूरा बेचैन चुम्बन उसके मुंह के आगे निरन्तर बना रहा और अपने पुलक से उसने उसे भाव में लपेट लिया।

बिहारी से फिर छत के उस सूने अंधेरे में न रहा गया और किसी तरफ मन लगाने के लिए वह जल्दी से अपने दीये से रोशन कमरे में लौट आया।

कोने वाली तिपाई पर रेशमी वस्त्र के आवरण से ढका एक मढ़ा हुआ फोटोग्राफ रखा था। बिहारी उस चित्र को उठाकर बीच कमरे में बत्ती के पास जाकर बैठ गया और फिर उसे अपनी गोद में रखकर ध्यान से देखने लगा।

ब्याह के बाद लिया हुआ महेन्द्र और आशा के जोड़े का चित्र था वह। उसपर महेन्द्र के हाथ से 'महेन भइया' और आशा के हाथ से 'आशा' लिखा हुआ था। चित्र में नयी-शादी का मधुर दिन ज्यों का त्यों बना हुआ है। महेन्द्र कुर्सी पर बैठा है और उसके चेहरें पर नये विवाह का सरस नया भावावेष स्पष्ट दिखाई दे रहा है। उसके पास ही आशा खड़ी है। फोटो उतारने वाले ने उसे घूंघट नहीं काढ़ने दिया, किन्तु उसके चेहरे पर से वह लज्जा नहीं हटा सका। आज महेन्द्र अपनी पीछे चलने वाली आशा को रुलाकर कितना दूर चला जा रहा है। किन्तु जड़ चित्र ने महेन्द्र के चेहरे से नये प्रेम की एक रेखा तक नहीं बदलने दी, कुछ भी न समझते हुए भी उसने मूढ़ की तरह मानो अनदेखे के परिहास को स्थायी कर रखा है;

उस चित्र को गोद में लिए हुए बिहारी ने विनोदिनी को धिक्कार और तिरस्कार से बहुत दूर निकाल देना चाहा, किन्तु विनोदिनी के प्रेम में डूबने और यौवन से कोमल दोनों हाथ बिहारी के पैर पकड़े ही रहे। बिहारी मन ही मन बोला, ऐसा सुन्दर प्रेम का जीवन तूने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।' किन्तु विनोदिनी का उस दिन का वह ऊपर उठता हुआ बेचैन चुम्बन-निवेदन मौन भाषा में बार-बार उससे यही कहने लगा कि 'मैं तुमसे प्रेम करती हूं, सारे संसार में एकमात्र तुम्हीं को मैंने वरण किया है।'

तस्वीर को गोद में लिए हुए ऐसी-ऐसी नाना बातें वह एकाग्र मन से सोच रहा था, इतने में किसीके पैरों की आहट सुनकर वह चौंक पड़ा। आंख उठाकर देखता है तो महेन्द्र खड़ा है। चौंककर उठते ही उसकी गोद में से तस्वीर नीचे कारपेट पर गिर पड़ी, उसपर उसका ध्यान ही नहीं गया।

महेन्द्र एकदम पूछ उठा, "विनोदिनी कहां है?"

बिहारी ने आगे बढ़कर महेन्द्र का हाथ पकड़ते हुए कहा, "जरा बैठो, भाई साहब, मैं सब बता दूंगा।"

महेन्द्र ने कहा, "बैठकर बातें करने का मेरे पास समय नहीं है। बताओ विनोदिनी कहां है?"

बिहारी ने कहा, "तुम जो बात पूछ रहे हो, उसका जवाब एक बात में नहीं दिया जा सकता। तुम्हें जरा स्थिर होकर बैठना होगा।"

महेन्द्र ने कहा, "उपदेश दोगे? उपदेश की बातें मैंने बचपन में बहुत पढ़ ली हैं।"

बिहारी ने कहा, "नहीं उपदेश देने का मुझे अधिकार भी नहीं और शक्ति भी नहीं।"

महेन्द्र ने कहा, "तो तिरस्कार करोगे? मैं जानता हूं कि मैं पाखण्डी हूं और भी तुम जो कुछ भी कहना चाहो, मैं सब कुछ हूं, किन्तु तुम यह बताओ, तुम जानते हो या नहीं कि विनोदिनी कहां है?"

"जानता हूं।"

"मुझे नहीं बताओगे?"

"नहीं।"

"तुम्हें बताना ही होगा। तुमने उसे चुराकर छिपा रखा है। वह मेरी है, उसे लौटा दो मुझे।"

बिहारी क्षण-भर स्तब्ध रहा, फिर दृढ़ स्वर से बोला, "वह तुम्हारी नहीं है। मैं उसे चुराकर नहीं लाया, वह खुद मेरे पास आई है।"

महेन्द्र गरज उठा, "झूठी बात है।" और फिर बगल के बन्द कमरे के दरवाज़े पर जोर-जोर से मुक्का मारता हुआ चिल्लाने लगा, "विनोद। विनोद।"

भीतर से रोने की आवाज सुनकर वह बोल उठा, "डरो मत, विनोद। मैं महेन्द्र हूं, मैं तुम्हारा उद्धार करके ले जाऊंगा कोई तुम्हें बन्द करके नहीं रख सकता।"

इतना कहकर महेन्द्र ने ज्योंही ज़ोर से एक धक्का मारा, दरवाज़ा खुल गया। महेन्द्र बड़ी तेज़ी से भीतर घुसा, देखा कि बिल्कुल अंधेरा है। हलकी छाया की तरह उसे ऐसा दिखाई दिया कि बिस्तर पर मानो कोई डर के मारे सिकुड़कर सिसकता हुआ तकिये से चिपट गया है।

बिहारी ने जल्दी से उस कमरे में जाकर बसन्त को गोद में उठा लिया और तसल्ली के स्वर में कहने लगा, "कोई डर नहीं, बसन्त, कोई डर नहीं, तुम डरो मत।"

महेन्द्र बड़ी तेज़ी से बाहर निकल आया और फिर ऊपर-नीचे, इधर-उधर चारों तरफ विनोदिनी को ढूंढ़ते परेशान हो गया। जब वह लौटकर बिहारी के पास आया, तब भी बसन्त भय के जोर से रह-रहकर रो रहा था और बिहारी उस कमरे में बत्ती जलाकर, उसे बिछौने पर लिटाकर, देह पर हाथ फेरकर उसे सुलाने की कोशिश कर रहा था।

महेन्द्र ने कहा, "विनोदिनी को कहां छिपा रखा है?"

बिहारी ने कहा, "भाई साहब, इस तरह शोर मत मचाओ। तुमने बेमतलब इस बच्चे को इतना डरा दिया है कि यह बीमार पड़ सकता है। मै कहता हूं, विनोदिनी की खबर से तुम्हें कोई मतलब नहीं।"

महेन्द्र बोल उठा, "साधु, महात्मा! अब तुम मेरे सामने धर्म का आदर्श मत खड़ा करो! मेरी स्त्री की इस तस्वीर को गोद में रखकर आधी रात को तुम किस देवता के ध्यान में कौन -सा पुण्य-मन्त्र जप रहे थे? पाखण्डी!"

इतना कहकर उसने हाथ की तस्वीर ज़मीन से दे मारी और उसे जूते-शुदा पैरों से कुचलकर उसका कांच चूर-चूर कर दिया और फ्रेम में से फोटो निकालकर उसके टुकड़े-टुकड़े करके, बिहारी के मुंह पर फेंक दिए।

महेन्द्र की बौखलाई हालत देखकर बसन्त फिर डरकर रोने लगा। बिहारी का गला रूंध आया, उसने दरवाज़े की तरफ हाथ का इशारा करके कहा, "जाओ!"

महेन्द्र आंधी की तरह तेज़ रफ्तार से बाहर चला गया।

३७

विनोदिनी जब यात्री- शून्य ज़नाने डब्बे में बैठी-बैठी खिड़की में से जुते हुए खेत और बीच-बीच में छाया लिपटे एक-एक गांव देखने लगी तब उसके मन में स्निग्ध-निभृत ग्राम्य जीवन का चित्र जाग उठा। सोचने लगी, अब वह गांव के पेड़ की छाया से घिरे अपने बनाए कल्पना के घरौंदे में, नगर वास के सारे दुःख जलन और टूटी कसक से छुटकारा पाकर, अपनी प्रिय पुस्तकों के साथ शान्ति से रहेगी और फिर गर्मी के मौसम के फसल से शून्य दिशाओं में फैले धूल भरे खेतों के पीछे सूरज डूबने का दृश्य देखकर सोचने लगी, 'अब मुझे किसी की भी ज़रूरत नहीं।'

इस तरह अपने प्यासे दिल में शान्ति की आशा लिए हुए विनोदिनी ने गांव में जाकर अपनी कुटिया में प्रवेश किया। वह जब घर पहुंची तब शाम हो रही थी। घर बेरौनक और अंधेरे से भरा हुआ था। किसी तरह उसने बत्ती बटकर और तेल डालकर मिट्टी का दीया जलाया तो उसके धुएं और धीमे प्रकाश से घर की दीनता फट पड़ी। पहले जो हालत उसे पीड़ा नहीं देती थी, आज वह उसे असह्य मालूम होने लगी और उसका समूचा अन्तरमन विद्रोही होकर ज़ोर से बोल उठा, 'यहां तो एक घड़ी भी नहीं कट सकती।' आले में पहले की दो-चार धूल से भरी पुस्तकें और मासिक पत्रिकाएं पड़ी थीं किन्तु उन्हें छूने तक की उसकी इच्छा नहीं हुई। बाहर अंधेरे से भरे बे हवा आम के बाग में झींगुरों की झनकार और मच्छरों की भनभनाहट सुनाई दे रही थी।

विनोदिनी की जो बूढ़ी अभिभाविका थी, वह घर में ताला बन्द करके अपनी लड़की को देखने उसकी ससुराल दूर गांव चली गई थी। विनोदिनी पड़ोसिन के घर गई। वे उसे देखकर चौंक पड़ीं। परस्पर एक-दूसरे से कानाफूसी करने लगीं, 'देखा, विनोद का रूप-रंग कैसा निखर गया है! कपड़े-लत्ते कैसे चुस्त दुरूस्त रखने लगी है, जैसे मेम साहब हो!' और न जाने क्या-क्या इशारे करके कभी विनोदिनी की तरफ और कभी आपस में एक-दूसरे के मुंह की तरफ देखने लगीं। मानो जो बात इधर कुछ दिनों से फैली हुई थी, उन्हें उसके अब लक्षण मिल रहे हों।

डाकघर का एक बूढा डाकिया विनोदिनी का बचपन का परिचित था। दूसरे दिन विनोदिनी जब तालाब में नहाने जा रही थी तब रास्ते में चिट्ठियों का बैग लिए हुए डाकिया मिल गया। उसे देखकर विनोदिनी से रहा न गया, वह जल्दी से उसके पास जाकर पूछने लगी, "पंचू दादा, मेरी कोई चिट्ठी है क्या?"

बूढ़े ने कहा, "नहीं तो।"

विनोदिनी व्यग्र होकर बोली, "हो भी सकती है। दिखाना ज़रा।"

कहते हुए उसने जल्दी-जल्दी बहुत-सी चिट्ठियां उलट डालीं, किन्तु उसकी कोई नहीं निकली। उदास मुंह लिए हुए वह नहाने चली गई। तालाब के घाट पर पहुंचते ही उसकी एक सखी ने ठिठोली में तिरछी नज़र के साथ कहा, "क्यों री बन्नो, चिट्ठी के लिए तू इतनी फड़फड़ा क्यों रही थी?"

एक दूसरी प्रौढ़ा ने कहा, "वाह री वाह, तू भी खूब है! डाक से चिट्ठी आवे, ऐसे भाग्य भी तो होने चाहिए! हमारे तो प्रति, देवर, भाई सब परदेस में काम करते हैं, पर डाकिया की कभी हमपर दया ही नहीं होती!"

इस तरह बात-बात में मज़ाक साफ और तिरछी नजर तेज़ होने लगी।

शत्रु और मित्रों की कृपा से विनोदिनी से यह छिपा न रहा कि महेन्द्र के साथ उसके अनुचित सम्बन्ध की निन्दा गांव में घर-घर फैल गई है। उसके लिए यहां शांति कहां हैं?

विनोदिनी गांव वालों से अपने को अलग रखने की कोशिश करने लगी। इससे गांव वाले उसपर और भी ज़्यादा नाराज़ हो गए। उन्हें पसंद नहीं कि पातकिनी उनसे अलग रहकर उन्हें घृणा और निन्दा करने के विलास—सुख से भी अलग रखे।

छोटे-से गांव में अपने को सबकी दृष्टि से छिपा रखने की कोशिश बेकार है। यहां टूटे दिल को लेकर किसी कोने में जाकर एकान्त—अन्धेरे में उसकी सेवा करने की फ़ुर्सत नहीं। इधर—उधर से सबकी तीखी उत्सुक नजर आकर टूटे स्थन पर पड़ती ही है। विनोदिनी की अन्दर की हालत टोकरी के भीतर की सजीव मछली की तरह जितनी ही छटपटाने लगी, उतनी ही चारों तरफ की संकीर्णता से टकराकर अपने को वह बार-बार घायल करने लगी। वह समझ गई कि यहां स्वतंत्रता से पूरी तरह टीस

सहने का भी स्थान नहीं।

दूसरे दिन चिट्ठी पाने का समय गुज़रते ही विनोदिनी घर का दरवाज़ा बन्द करके चिट्ठी लिखने बैठ गई। उसने लिखाः

"लालाजी, डरने की कोई बात नहीं है, मैं तुम्हें प्रेम की चिट्ठी लिखने नहीं बैठी। तुम मेरे विचारक हो, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूं। मैंने जो पाप किया है, तुमने उसका कठिन दण्ड दिया है। तुम्हारा आदेश पाते ही मैंने उसे सिर माथे ले लिया है। दुःख सिर्फ इतना ही है कि दण्ड कितना कठोर है, सो तुम देख न सके। अगर तुम देखते या जान पाते, तो तुम्हारे मन में दया आ जाती किन्तु मैं उससे भी वञ्चित रह गई। तुम्हारा स्मरण करके और मन ही मन तुम्हारे चरणों के पास सिर रखके मैं इसे भी सह लूंगी, किन्तु प्रभु, जेलखाने के कैदी को क्या खाने–पीने को भी नहीं मिलता? शौक की खुराक नहीं, जी के लिए जितने की ज़रूरत होती है उतनी ख़ुराक तो उसे मिलती ही है। तुम्हारी दो–चार पंक्ति की चिट्ठी मेरे इस निर्वासन की खुराक है, वह भी अगर न मिले, तब तो यह मेरा केवल निकाले जाने का दण्ड ही नहीं, प्राणदण्ड है। मेरी इतनी ज़्यादा परीक्षा मत करो, मेरे दण्डदाता! मेरे इस पापी मन के अहंकार की सीमा नहीं थी मैंने कभी यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि किसी के भी आगे मुझे इस तरह सिर झुकाना पड़ेगा। तुम्हारी जय हुई है, प्रभु, मैं विद्रोह नहीं करूंगी, किन्तु तुम मुझपर दया करो, मुझे जीने दो। इस वनवास में जीने के लिए थोड़ी–बहुत पूंजी तो मुझे भेज दिया करो, फिर तुम्हारे शासन से मुझे कोई भी किसी भी तरह टला नहीं सकता। बस, इतनी-सी दुःख की बात तुम्हें जता दी है और जो–जो बातें मन में जमा हो रही हैं, उन्हें कहने के लिए छाती फटी जा रही है, किन्तु उन्हें कहने के लिए मैं प्रतिज्ञा कर चुकी हूं और उस प्रतिज्ञा की मैं रक्षा कर रही हूं।

तुम्हारी-विनोदा भाभी"

विनोदिनी चिट्ठी डाकखाने में छोड़ आई। गांव के लोग 'छी–छी' करने लगे। कहने लगे, 'अब तो घर का दरवाज़ा बन्द किए रहती है, चिट्ठी लिखा करती है चिट्ठी पाने के लिए डाकिया पर टूट पड़ती है! दो दिन कलकत्ते क्या रह आई, लज्जा–धर्म सब कुछ खो आई!'

इसके दूसरे दिन भी कोई चिट्ठी नहीं आई। विनोदिनी दिन–भर चुपचाप बैठी रही, उसका चेहरा कठोर हो उठा। भीतर–बाहर चारों तरफ के आघात और अपमान के मथने से उसके दिल के अन्धेरे–समुद्र के नीचे से निर्दय मार करने वाली शक्ति कठोर मूर्ति धारण करके बाहर निकलने को बेचैन हो गई। उस निदारूण निर्दयता के जन्मने का अनुभव करके विनोदिनी ने मारे डर के घर का दरवाज़ा ही बन्द कर लिया।

उसके पास बिहारी की कोई भी निशानी नहीं थी। न तस्वीर थी और न चिट्ठी, कुछ भी नहीं था। फिर भी उस अकेलेपन में माने वह कुछ ढूंढने लगी। बिहारी की किसी एक निशानी को छाती से लगाकर वह अपनी सूखी आंखों में पानी लाना चाहती है और उस आंसुओं के पानी से दिल की समूची कठिनता को गलाकर विद्रोह अग्नि को बुझाकर बिहारी के कठोर आदेश को वह अपने दिल के कोमलतम सिंहासन पर बिठाए रखना चाहती है।

विनोदिनी ने सुना था कि एकाग्र मन से ध्यान करते हुए जिसे पुकारा जाता है, वह बिना आए रह नहीं सकता। इसलिए वह हाथ जोड़कर और आंखें मीचकर बिहारी को पुकारने लगी 'मेरा जीवन खाली है, मेरा हृदय खाली है, मेरे चारों तरफ सब कुछ खाली है, इस खालीपन में एक बार तुम आ जाओ, एक क्षण के लिए आओ, तुम्हें आना ही होगा, मैं किसी भी तरह तुम्हें नहीं छोड़ सकती।'

बिहारी के ध्यान में जब शाम के दीप–शून्य अंधेरे से घर निविड़ रूप से पूर्ण हो उठा और जब समाज–संसार, गांव–शहर, समस्त त्रिभुवन प्रलय में डूब गया, तब विनोदिनी सहसा बाहर से किसी के दरवाज़ा खटखटाने की आवाज़ सुनकर बड़ी फुर्ती से उठ खड़ी हुई और शक से परे विश्वास के साथ दौड़कर दरवाज़ा खोलकर बोली, "आ गए, प्रभु!"

उसे दृढ़ विश्वास हो गया था कि इन क्षणों में इस संसार का और कोई भी उसके द्वार पर नहीं आ सकता।

महेन्द्र ने कहा, "आ गया, विनोद!"

विनोदिनी असीम विराग और भारी धिक्कार के साथ बोल उठी, "जाओ, जाओ तुम यहां से। अभी तुरन्त चले जाओ!"

महेन्द्र अकस्मात् स्तम्भित–सा रह गया। इतने में, "क्यों री बन्नो, तेरी ददिया सास अगर कल" कहती हुई कोई प्रौढ़ा पड़ोसिन दरवाज़े के पास आ गई और महेन्द्र को देखते ही "ओ मेरी मैया!" कहकर लम्बा घूंघट खींचकर तुरन्त वहां से भाग गई।

३८

गांव–भर में बड़ा भारी तहलका–सा मच गया। गांव के बड़े–बूढ़े लोग चौपाल में पंचायत करने बैठ गए, 'यह हरगिज़ नहीं सहा जा सकता। कलकत्ते में क्या हुआ, क्या नहीं हुआ, सो सुना–अनसुना किया जा सकता था, किन्तु गांव में रहकर इतनी हिम्मत कि चिट्ठी पर चिट्ठी लिखकर महेन्द्र को गांव बुलाकर इस तरह खुल्लम–खुल्ला बेहयाई! इस भ्रष्टा को अब गांव में हरगिज़ नहीं रखा ज सकता।'

विनोदिनी को पक्की आशा थी कि आज बिहारी का पत्रोत्तर उसे जरूर मिल जाएगा, किन्तु नहीं आया। वह मन ही मन कहने लगी, 'मुझपर बिहारी का क्या अधिकार है? मैंने क्यों उसका आदेश पालन किया? मैंने क्यों उसे यह जानने दिया कि वह मेरे लिए जैसा विधान देगा, मैं उसी को सिर-माथे लगा लूंगी? उसे तो अपनी प्यारी आशा को बचाने के लिए जितने की ज़रूरत है, मेरे साथ उसका सिर्फ उतना ही सम्बन्ध है, फिर ईर्ष्या के विष से विनोदिनी का सम्पूर्ण दिल भर उठा, मन ही मन वह कहने लगी, 'और किसीके भी लिए इतना दुःख सहा जा सकता है, किन्तु आशा के लिए हरगिज़ नहीं। यह दीनता, यह वनवास, यह लोक निन्दा—ऐसी, अवज्ञा, जीवन की ऐसी सब तरह की अपरितृप्ति केवल आशा के लिए मुझे वहन करनी होगी, इतना धोखा मैंने क्यों उठाया? क्यों मैं अपने सर्वनाश का व्रत वहां की वहीं सम्पूर्ण नहीं कर आई? मूर्ख हूं मैं, भोली हूं मैं। मैंने क्यों बिहारी से प्रेम किया?'

विनोदिनी जब कठपुतली की तरह सख्त होकर अपने घर में बैठी थी, ठीक उसी समय उसकी ददिया सास अपने दामाद के यहां से घर लौटी। उसने घर में कदम रखते ही विनोदिनी से कहा, "कलमुंही, गांव—भर में यह सब क्या सुन रही हूं?"

विनोदिनी ने कहा, "सब ठीक ही सुन रही हो।"

ददिया सास बोली, "तो इस कलंक को गांव में लाने की क्या ज़रुरत थी? यहां तू क्यों आई?"

रुके हुए गुस्से से विनोदिनी चुप बैठी रही। ददिया सास ने कहा, "अब तेरा यहां रहना नहीं हो सकता, मैं कहे देती हूं। जले भाग्य से मेरे सब मर गए, उसका दुःख मैंने सह लिया, पर अब यह सब मुझसे नहीं सहा जाएगा। छी-छी-छी, तैंने गांव में मुझे मुंह दिखाने लायक नहीं छोड़ा। तू इसी वक्त यहां से काला मुंह कर ज़ा।"

विनोदिनी ने कहा, "मैं इसी वक्त चली जाऊंगी।"

इतने में महेन्द्र बिना नहाए, बिना खाए, रुखे बाल और रुखा चेहरा लिए सहसा वहां आ पहुंचा। रात-भर की अनिद्रा से उसकी आंखे लाल-सुर्ख हो रही थीं, चेहरा सूखा हुआ था। उसका संकल्प था कि अंधेरा रहते खूब भोर में आकर वह विनोदिनी को ले चलनें के लिए दूसरी बार कोशिश करेगा, किन्तु विनोदिनी के कल के नफरत प्रहार से उसके मन में तरह-तरह की दुविधा होने लगी। क्रमशः जब दिन चढ़ गया और रेल समय होने लगा, तब स्टेशन की यात्री-शाला से निकलकर मन से सब तरह की दुविधा ज़बरदस्ती दूर करके वह घोड़ागाड़ी में बैठकर एकदम विनोदिनी के घर के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ।

महेन्द्र ने किसी तरफ देखा तक नहीं। वह एकदम सीधा विनोदिनी के पास जाकर बोला, "विनोद, तुम मुझे ऐसा कायर न समझ लेना कि मैं तुम्हें यहां लोक निन्दा के भाड़ में छोड़कर चला जांऊगा। जैसे भी हो, तुम्हें यहा से ले जाना ही होगा। उसके

बाद तुम मुझे त्यागना चाहो, तो त्याग देना। मैं ज़रा भी रुकावट न डालूंगा। मैं आज तुम्हें छूकर प्रतिज्ञा करता हूं कि तुम जब जैसा चाहोगी, मैं वैसा ही करुंगा। तुम दया करोगी, तो मैं जीवित रहूंगा, नहीं करोगी, तो मैं तुम्हारे रास्ते से दूर हट जाऊंगा। मैंने संसार में अनेक अविश्वास के काम किए है, किन्तु आज तुम मुझपर अविश्वास मत करो, विनोद। हम दोनो आज प्रलय के सामने खड़े हैं यह छलना करने का समय नहीं हैं।''

विनोदिनी ने बेहद स्वाभाविक भाव से स्थिर स्वर में कहा, ''मुझे तुम अपने साथ ले चलो। तुम्हारे साथ गाड़ी है?''

महेन्द्र ने कहा, ''हां'' है।''

इतने में विनोदिनी की ददिया सास बाहर निकल आई और बोली, ''महेन्द्र तुम मुझे नहीं पहचानते, पर तुम हमारे गैर नहीं हो। तुम्हारी मां राजलक्ष्मी इसी गांव की लड़की है। गांव के नाते मैं उसकी मामी लगती हूं। भला मैं पूछती हूं, ये सब तुम्हारे क्या ढंग हैं? घर में तुम्हारे बहू है, मां है और तुम ऐसे बेहया हो गए हो कि मतवाले की तरह पराई बहू-बेटियों के पीछे-पीछे फिर रहे हो। अरे, जरा सोचो तो सही, समाज के चार भले आदमी सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? कैसे तुम उनके आगे अपना मुंह दिखाओगे।''

इस अज्ञात सुदूर गांव में एक अपरिचित घर के द्वार पर महेन्द्र को ऐसी बात सुननी पड़ेगी, इसकी उसने पहले कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी। महेन्द्र के जीवन-चरित्र में ऐसा भी एक अद्भुत अध्याय लिखा गया, जिसमें वह दिनदहाड़े गांव में आकर किसी भद्र घर की विधवा बहू को घर से निकाले लिए जा रहा है, फिर भी उसके मां है, स्त्री है और चार भले आदमियों का समाज भी है।

महेन्द्र जब निरुतर होकर खड़ा रहा, तब बुढ़िया फिर बोली, ''जाना हो तो अभी जाओ, दूर हो यहां से। हमारे घर के दरवाजे पर मत खड़े रहो बस, चले जाओ यहां से, जल्दी जाओ।'' इतना कहकर बुढ़िया घर के भीतर चली आई और भीतर से किवाड़ बन्द कर लिए।

विनोदिनी बिना नहाए, बिना खाए, मैले कपड़े पहने, रीते हाथ गाड़ी में बैठ गई। महेन्द्र जब गाड़ी में चढ़ने लगा, तो उसने कहा, ''नहीं, तुम पैदल आओ, स्टेशन दूर नहीं है।''

महेन्द्र ने कहा, ''गांव के सब लोग देखेंगे मुझे।''

विनोदिनी ने कहा, ''अब भी तुम्हारे अन्दर शर्म बाकी है?'' कहते हुए उसने गाड़ी का दरवाजा बन्द कर लिया और कोचवान से कहा, ''स्टेशन चलो।''

कोचवान ने पूछा, ''बाबू नहीं चलेंगे?''

महेन्द्र बगलें झांकने लगा, उसकी हिम्मत ही नहीं हुई कुछ कहने की। गाड़ी

चली गई। महेन्द्र सिर नीचा किए हुए गांव का रास्ता छोड़कर खेतों में होकर घूमता हुआ स्टेशन की तरफ चल दिया।

३९

महेन्द्र कहां चला गया, इस आशंका में राजलक्ष्मी का खाना-पीना, सोना सब कुछ छूट गया। साधुचरण सम्भव-असम्भव सभी जगह उसे ढूंढते फिर रहे हैं, कहीं कुछ पता नहीं लग रहा है। इतने में महेन्द्र विनोदिनी को लेकर कलकत्ता आ गया और पटलडांगा में एक किराये के मकान में विनोदिनी को रखकर, वह अपने घर पहुंचा।

मां के कमरे में जाकर उसने देखा, कमरे में अंधेरा है, लैम्प की बत्ती बिल्कुल नीची करके उसके आगे गत्ते से आड़ कर दी गई है। राजलक्ष्मी रोगी की तरह बिस्तर पर पड़ी हैं और आशा उनके तलवों पर धीरे-धीरे हाथ फेर रही है। इतने दिनों बाद बहू को सास के चरणों पर अधिकार मिला है। महेन्द्र के आते ही आशा चौंककर उठ खड़ी हुई और तुरन्त बाहर चली गई।

महेन्द्र ने ज़बरदस्ती अपनी सब दुविधाओं को दूर करते हुए कहा, "मां, यहां मेरी पढ़ाई ठीक से नहीं होती। मैंने कालेज के पास एक कमरा ले लिया है। अब मैं वहीं रहा करूंगा।"

राजलक्ष्मी ने अपने बिस्तर के एक किनारे की ओर उंगली से इशारा करते हुए कहा, "तू बैठ तो सही ज़रा।" महेन्द्र संकोच के साथ बिस्तर पर बैठ गया।

राजलक्ष्मी ने कहा, "बेटा, तेरी जहां तबीयत आये, तू वहीं रह, पर तू मेरी बहू रानी को मत सता। मेरी तकदीर ही फूटी है, इसी से मैं ऐसी लक्ष्मी बहू को नहीं पहचान सकी।" कहते-कहते उनसे रहा नहीं गया, वे रोने लगीं।

महेन्द्र वहां से भाग सके, तो जी जाए, किन्तु भाग न सका। मां के बिस्तर पर एक किनारे अंधेरे में चुपचाप बैठा रहा। बहुत देर बाद राजलक्ष्मी ने कहा, "आज रात को तू यहीं रहेगा न?"

महेन्द्र ने कहा, "नहीं।"

राजलक्ष्मी ने पूछा, "कब जाएगा?"

महेन्द्र ने कहा, "अभी।"

राजलक्ष्मी बड़ी मुश्किल से उठ के बैठ गईं। बोलीं, "अभी! एक बार बहू से अच्छी तरह मिलके भी नहीं जाएगा?"

महेन्द्र ने कुछ जवाब नहीं दिया। राजलक्ष्मी ने कहा, "बहू के ये कई दिन कैसे कटे हैं, सो क्या तू ज़रा भी नहीं समझ सकता अरे ओ बेशर्म, तेरी निठुराई से मेरी छाती फटी जा रही है।"

इतना कहकर राजलक्ष्मी कटी हुई डाली की तरह बिस्तर पर गिर पड़ीं। महेन्द्र मां के बिस्तर से उठकर बाहर चला गया और फिर बहुत धीरे-धीरे दबे पांव जीने से चढ़ता हुआ ऊपर अपने कमरे में पहुंचा। वह नहीं चाहता कि आशा से उसकी भेंट हो।

महेन्द्र ने ऊपर जाते ही देखा, उसके कमरे के सामने जो पटी हुई छत है, आशा वहीं जमीन पर पड़ी है। उसे महेन्द्र के आने की आहट नहीं मालूम हुई थी। अब सहसा पति को अपने सामने खड़ा देख वह जल्दी से अपने कपड़े सम्हालती हुई उठकर बैठ गई। इस समय महेन्द्र यदि एक बार 'चुन्नी' कहकर पुकारता, तो उसी क्षण वह महेन्द्र के सारे अपराध स्वयं सिर माथे ले कर क्षमाप्राप्त अपराधिनी की तरह महेन्द्र के पांवों से लिपटकर अपने जीवन का सारा रोना रो लेती, किन्तु महेन्द्र उस प्रिय नाम से न पुकार सका। आशा मारे संकोच के गड़ी हुई बैठी रही। उठके खड़े होने, चले जाने या और किसी प्रकार की गति की कोशिश तक करने में उसे शर्म मालूम होने लगी।

महेन्द्र कोई बात न करके छत पर चहलकदमी करने लगा। वह सोचने लगा काश, इधर बीच के कुछ दिनों की उथल-पुथल को इस आकांश भरे अंधेरे से पोंछकर अगर पहले की तरह फिर इस खुली छत पर चटाई बिछाकर आशा के पास उसी तरह सहज-स्वाभाविक भाव से बैठ सकता। काश कोई सवाल न होता, कोई जवाब न होता, पहले का सा विश्वास, वही प्रेम और वही सहज आनन्द होता।' किन्तु हाय, इतने बड़े संसार में ठीक उसी जगह लौटने का अब रास्ता ही नहीं रहा। महेन्द्र विनोदिनी को अपने हाथ से समाजवृक्ष से तोड़ लाया है। अब विनोदिनी को कहीं भी रखने की, कहीं भी लौटाने की जगह नहीं। अब तो महेन्द्र ही उसका एकमात्र सहारा है। अब तो इच्छा हो या न हो, विनोदिनी का सारा भार उसे ढोना ही पड़ेगा।

महेन्द्र ने एक गहरी सांस ली और फिर आशा की तरफ देखने लगा। आशा अपनी खामोश रुलाई से छाती भरकर निश्चल बैठी थी, और रात के अन्धकार ने जननी के आंचल की तरह उसकी शर्म और टीस को ढक रखा था।

महेन्द्र चहलकदमी करते-करते सहसा रुककर खड़ा हो गया, और मालूम नहीं क्या कहने के लिए एकदम आशा के पास जा खड़ा हुआ। आशा के सारे शरीर का खून उसके कानों में आवाज करने लगा। उसने अपनी आंख मींच लीं। महेन्द्र क्या कहने आया था, कुछ तय न कर सका। आखिर वह कह ही क्या सकता था? किन्तु कुछ न कहे बिना लौट भी न सका। उसने कहा, "चाबियों का गुच्छा कहां है?"

चाबियों का गुच्छा रखा था गद्दी के सिरहाने के नीचे। आशा उठकर कमरे के भीतर गई, महेन्द्र भी उसके पीछे-पीछे गया। गद्दी के नीचे से गुच्छा निकालकर आशा ने महेन्द्र

के सामने रख दिया। महेन्द्र उसे उठाकर अपनी आलमारी के ताले में एक-एक चाभी लगाकर देखने लगा। आशा से रहा नहीं गया, उसने धीरे से कहा, "इस आलमारी की चाबी तो मेरे पास नहीं थी।"

किसके पास चाभी थी, यह बात आशा के मुंह से नहीं निकली, किन्तु महेन्द्र समझ गया। आशा जल्दी से कमरे से निकलकर बाहर चली गई। उसे डर लगने लगा कि कहीं उसका रोना महेन्द्र के आगे फूट न निकले। अंधेरी छत के एक कोने में जाकर दीवार की तरफ मुंह करके वह अपने उमड़ते हुए रोने को जी-जान से रोकती हुई रोने लगी।

किन्तु ज़्यादा देर रोने का समय नहीं था। अचानक उसे याद आई, महेन्द्र के खाने का समय हो गया है। वह जल्दी से नीचे चली गई।

राजलक्ष्मी ने आशा से पूछा, "महेन्द्र कहां है, बहू?"

आशा ने कहा, "ऊपर हैं।" राज लक्ष्मी ने कहा, "फिर तुम क्यों चली आई?"

आशा ने सिर झुकाए हुए कहा, "उनका खाने का"

राजलक्ष्मी ने कहा, "खाने का इन्तज़ाम मैं कर रही हूं,बहू, तुम जाओ, जरा **मुंह-हाथ साफ करके ठीक से कपड़े पहन लो। तुम्हारी वो ढाके की साड़ी कहां है, पहनकर** जल्दी आओ मेरे पास, मैं तुम्हारे बाल बांध दूं।"

सज-धजकर आशा अत्यन्त धीरे-धीरे दबे पांव जीने से चढ़ती हुई ऊपर पहुंची। जीने के दरवाजे से झांककर देखा, महेन्द्र छत पर नहीं है। धीरे-धीरे कमरे के दरवाजे के पास जाकर देखा, कमरे में भी महेन्द्र नहीं है। उसकी परोसी हुई थाली ज्यों की त्यों पड़ी है।

चाबी के अभाव में आलमारी का ताला तोड़कर वह कुछ जरूरी कपड़े और कालेज की किताबें लेकर चला गया है।

४०

पहली रात को महेन्द्र जब विनोदिनी को पटलडांगा के मकान में छोड़कर अपने कपड़े वगैरह लेने घर गया था, विनोदिनी तब कलकत्ता में विश्रामहीन जन-तरंग के कोलाहल में अकेली बैठी हुई अपने विषय में विचार कर रही थी। संसार में उसका आश्रय-स्थल किसी भी समय काफी बड़ा नहीं था, फिर भी, उसके लिए एक करवट गर्म हो उठने पर दूसरी करवट सोने की जरा-सी जगह थी किन्तु आज उसका आश्रय स्थान बेहद सिकुड़ गया है। आज वह जिस नाव पर बैठी बहाव में बह रही है, वह नाव इतनी हलकी और इतनी छोटी है कि जरा भी दाहिने-बायें झुकते ही उसका डूबना निश्चित है, इसलिए उसे इस नाव की पतवार को बड़ी स्थिरता और सावधानी से पकड़े रहना चाहिए जरा-सी गलती होते ही, जरा-सा हिलते-डुलते ही

उसी क्षण वह गहरे पानी में जा पड़ेगी। इस हालत में किस रमणी का हृदय नहीं कांपेगा ? पराये मन को पूरी तरह वश में रखने के लिए जितने छल-बल और हाव-भाव की जरूरत है, इस संकीर्णता में उतने के लिए अवकाश कहां है ? एकदम महेन्द्र के मुकाबले में रहकर उसे सारा जीवन बिताने के लिए तैयार रहना होगा । दोनों में भेद इतना ही है कि महेन्द्र के पास किनारे लगने का उपाय है और विनोदिनी के पास कुछ भी नहीं है ।

विनोदिनी अपनी इस असहाय हालत को जितना ही स्पष्ट रूप से समझने लगी, उतना ही वह अपने मन में ताकत इकट्ठा करने लगी। कोई न कोई तरकीब तो उसे करनी ही पड़ेगी, इस तरह निरुपाय होकर वह कैसे रह सकती है।

जिस दिन से विनोदिनी ने बिहारी के आगे अपना प्रेम प्रकट किया है, उसी दिन से उसके धैर्य का बांध टूट गया है। जिस बेचैन चम्बक को वह बिहारी के मुंह के आगे से लौटा लाई है, उसे संसार में और कहीं भी उससे उतारकर रखते नहीं बन रहा है, उसे वह पूजा के अर्घ्य के समान देवता के लिए अहोरात्र ढोती ही फिर रही है। अब विनोदिनी का मन किसी भी अवस्था में एकदम पतवार छोड़ना नहीं चाहता। निराशा को वह स्वीकार ही नहीं करता। उसका मन प्राणों की बाजी लगाकर बार-बार यही कह रहा है, 'मेरी यह पूजा बिहारी को स्वीकार करनी ही होगी।'

गांव से आते वक्त विनोदिनी ने महेन्द्र से कहकर स्टेशन से लगे हुए डाकघर में सूचना दिलवा दी थी कि उसके नाम की चिट्ठी-पत्री आवे, तो कलकत्ता के नये पते पर भेज दी जाया करे। बिहारी उसके पत्र का बिलकुल उत्तर ही न देगा, ऐसा विनोदिनी नहीं समझती थी। उसने अपने मन में कहा, 'मैं सात दिन तक धीरज धर के चिट्ठी की प्रतीक्षा करूंगी, उसके बाद जैसा होगा देखा जाएगा।' और फिर वह अंधेरे में खिड़की खोलकर गैस-बत्ती से रोशन कलकत्ता की ओर अनमनी दृष्टि से देखती रही।

इस तरह सोचते-सोचते जब रात के नौ-दस बज गए तब धीरे-धीरे महेन्द्र आ पहुंचा। इधर के कई दिन उसने नींद न आने और अनियम के कारण उत्तेजित अवस्था में बिताए हैं, आज काम पूरा कर विनोदिनी को अपने अधीन घर में रखने के बाद दुख और थकान ने उसे अभिभूत कर डाला है। आज ससार और अपनी हालत के साथ लड़ने की ताकत मानो उसमें रही ही नहीं। उसके सम्पूर्ण भार से दबे अगले जीवन की क्लान्ति मानो आज से ही उसपर हमला कर बैठी हो।

बन्द दरवाजे के पास खड़े होकर द्वार खटखटाने में महेन्द्र को बेहद शर्म महसूस होने लगी। जिस में उसने सारी पृथ्वी को कुछ नहीं समझा, वह आज कहां गई? आज रास्ते के अपरिचित लोगों की दृष्टि के सामने भी उसका सारा शरीर सिकुड़ जाता है?

भीतर नया नौकर सो रहा था। दरवाजा खुलवाने में उसे बड़ी परेशानी उठानी

पड़ी। अजनबी नये मकान में अंधेरे में घुसते ही महेन्द्र का मन दहल गया। मा का लाड़ला बेटा महेन्द्र हमेशा से विलास के सामानों के बीच पला था। आज इस नये मकान के नये आयोजन में उन कीमती सामानों का अभाव उस शाम के अंधेरे में अत्यन्त परिस्फुट हो उठा। इन सब कमियों की उसे स्वयं पूर्ति करनी होगी, क्योंकि इसका भार एकमात्र उसी पर है। महेन्द्र ने आज तक कभी भी अपने या पराये के लिए चिन्ता नहीं की, किन्तु आज से एक नयी बसाई अधूरी गृहस्थी का सब कुछ उसी को करना पड़ेगा।.

जीने के आले में एक मिट्टी के तेल की ढिबरी उजाले की जगह सिर्फ जोर से धुआ उगल रही थी। उसे देखते ही महेन्द्र सोचने लगा, 'कल ही लालटेन वगैरह का इन्तजाम करना है।' आंगन पार करके जीने का रास्ता नल के पानी से गन्दा हो रहा था। महेन्द्र ने मन ही मन कहा, 'कल ही राज बुलाकर आंगन ठीक कराना है।' नीचे सड़क की तरफ के दो कमरों में जूते के दुकानदार रह रहे थे, उन्होंने अभी कमरे खाली नहीं किए। इसके लिए मकान मालिक से लड़ना पड़ेगा। ये सब काम महेन्द्र को खुद ही करने पड़ेंगे, यह सोचते हुए उसका मन थकान के बोझ से व्यथित हो उठा।

महेन्द्र ने ज़ीने के पास कुछ देर खड़े रहकर अपने को सम्हाल लिया और विनोदिनी से उसका जो प्रेम था उसे उत्तेजित कर लिया। उसने अपने को समझाया कि इतने दिन सारे संसार को भूलकर उसने जिसे चाहा था, आज वह उसे मिल गई है, आज दोनों के बीच कोई भी रुकावट नहीं रही। आज उसके लिए आनन्द का दिन है, किन्तु कोई भी रुकावट नहीं, यही तो सबसे बड़ी रुकावट है, आज महेन्द्र आप ही अपनी रुकावट बन गया है।

विनोदिनी ने महेन्द्र को सड़क से आते हुए देख लिया था। देखते ही अपने ध्यान आसन से उठकर उसने कमरे की बत्ती जला दी और एक कसीदा हाथ में लेकर सिर झुकाए उसे काढ़ने लगी। यह कसीदा काढ़ना विनोदिनी के लिए एक पर्दा है, इसके अन्तराल में मानो उसका कोई सहारा हो।

महेन्द्र ने कमरे में घुसते हुए कहा, "विनोद, यहां तुम्हें दिक्कत तो ज़रूर हो रही होगी?"

विनोदिनी ने कसीदा काढ़ते हुए ही कहा, "नहीं तो, कोई दिक्कत नहीं।"

महेन्द्र ने कहा, "दो ही चार दिन में मैं पूरा असबाब और जरूरी सामान ले आऊंगा, तब तक के लिए तुम्हें और भी जरा तकलीफ उठानी पड़ेगी।"

विनोदिनी ने कहा, "नहीं, ऐसा तुम हरगिज़ नहीं कर सकते। अब तुम्हें यहां कुछ भी लाने की जरुरत नहीं। जो है यहां, वही मेरे लिए जरूरत से बहुत ज्यादा है।"

महेन्द्र ने कहा, "आभागा मैं भी क्या उस 'जरूरत से ज्यादा' में शामिल हूं?"

विनोदिनी बोली, "अपने को 'इतना ज्यादा' नहीं समझना चाहिए। जरा नर्मी रखना अच्छा है।"

इस सुनसान दीये के उजाले में सर झुकाए काम करती हुई विनोदिनी की आत्मा में बैठी हुई मूर्ति देखकर महेन्द्र के मन में क्षण में फिर पहले जैसा मोह बह चला।

अपना घर होता, तो महेन्द्र विनोदिनी के पैरों के पास जा पड़ता। किन्तु यह तो उसका घर नहीं, इसलिए उससे ऐसा करते नहीं बना। विनोदिनी आज असहाय है, अकेले रूप से वह महेन्द्र की मुट्ठी में है। आज अपने को संयत न रखना महेन्द्र के लिए बड़ी शर्म और कायरता की बात होगी।

विनोदिनी ने कहा, "यहां तुम अपने कपड़े-लत्ते और कालेज की किताबें क्यों ले आए?"

महेन्द्र ने कहा, "इन्हें मैं अपनी जरूरी चीजों में समझता हूं। ये 'जरूरत से ज्यादा' वाली चीजों में नहीं हैं।"

विनोदिनी ने कहा, "मुझे मालूम है, पर यहां ये सब क्यों?"

महेन्द्र ने कहा, "तुम्हारी बात तो ठीक है। यहां कोई ज़रूरी चीज़ शोभा नहीं दे सकती, किन्तु विनोद किताबें भले ही तुम उठा कर फेंक देना मैं आपत्ति नहीं करूंगा, पर उनके साथ मुझे भी मत फेंक देना।" यह कहते हुए उसने ज़रा आगे बढ़कर अपनी किताबों का बण्डल विनोदिनी के पैरों के पास रख दिया।

विनोदिनी ने बिना मुंह उठाए ही गम्भीरता के साथ कसीदा काढ़ते हुए कहा, "लालाजी, यहां तुम्हारा रहना नहीं हो सकता।"

महेन्द्र अपने तुरन्त जगे हुए आग्रह के मुंह पर तमाचा-सा खाकर बेचैन हो उठा, गद्‌गद कण्ठ से बोला, "क्यों विनोद, क्यों तुम मुझे दूर रखना चाहती हो? तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ने के बाद क्या मुझे यही मिलेगा?"

विनोदिनी ने कहा, "मैं अपने लिए तुम्हें सब कुछ छोड़ने नहीं दूंगी।"

महेन्द्र कह उठा, "अब यह तुम्हारे हाथ में नहीं रहा। सारा संसार मेरे चारों तरफ से बिखर चुका है, केवल तुम्हीं अकेली बची हुई हो, विनोद। विनोद। विनोद।" कहते-कहते वह जमीन पर औंधा लेट गया और बेहद छटपटाहट के साथ विनोदिनी के पैरों से लिपटकर उसके फूल जैसे पैरो को बारम्बार चुम्बन करने लगा।

विनोदिनी अपने पांव छुड़ाकर उठके खड़ी हो गई, बोली, "महेन्द्र तुमने क्या प्रतिज्ञा की थी, याद है?"

अपनी सम्पूर्ण शक्ति का प्रयोग करके महेन्द्र ने अपने को सम्हाल लिया और कहा, "याद है। प्रतिज्ञा की थी कि जैसी तुम्हारी इच्छा होगी, मैं वैसा ही करूंगा। मैं कभी भी तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कोई काम न करूंगा। अपनी उस प्रतिज्ञा की मैं

रक्षा करूंगा, विनोद। मुझे क्या करना होगा, बताओ।"

विनोदिनी ने कहा, "तुम्हें अपने घर जाकर रहना होगा।"

महेन्द्र ने कहा, "तो क्या मैं ही अकेला तुम्हारी अनिच्छा का शिकार हूं, विनोद? अगर यही बात थी, तो तुम मुझे इस तरह क्यों खींच लाईं? जो तुम्हारे भोग की वस्तु नहीं, उसका शिकार करने की तुम्हें क्या ज़रूरत थी ? सच - सच बताओ, विनोद मैंने क्या अपनी इच्छा से तुम्हारा हाथ थामा है, या तुमने जान-बूझकर अपनी इच्छा से मुझे थामा है? मुझे तुम अपनी खुशी का खिलौना बनाकर इस तरह खेल खेलती रहोगी, यह भी क्या मुझे सहना पड़ेगा? फिर भी, मैं अपनी प्रतिज्ञा का पालन करता रहूंगा। जिस घर में मैंने अपने स्थान को लात मारकर नष्ट कर दिया है, उसी घर में जाकर रहूंगा।"

महेन्द्र उस समय कमरे के बाहर चला गया, और थोड़ी देर बाद फिर भीतर आकर बोला, "मैं नहीं रहूंगा, तो यहां अकेले में तुम्हारी रक्षा कौन करेगा?"

विनोदिनी ने कहा, "इसके लिए तुम ज़रा भी मत डरो। बुआजी ने खेमी को निकाल दिया है, आज से वह यहीं काम करने लगी है। भीतर से दरवाजा बन्द करके हम दोनों स्त्रियां यहां बेखटके रहा करेंगी।"

महेन्द्र को भीतर ही भीतर जितना गुस्सा आने लगा, उतना ही विनोदिनी के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता गया। उसकी इच्छा होने लगी इस अटल मूर्ति को वह वज्र-बल से छाती से चिपटाकर चूर-चूर कर डाले। और फिर वह इस निदारुण इच्छा से बच निकलने के लिए जल्दी दौड़कर बाहर चला गया।

रास्ते में घूमते-घूमते महेन्द्र प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनी की इस उपेक्षा के बदले वह भी उसके प्रति उपेक्षा ही दिखाएगा। जिस अवस्था में इस विश्व-जगत में विनोदिनी का एकमात्र भरोसा महेन्द्र है, उस अवस्था में भी महेन्द्र की ऐसी खामोश और निडर, ऐसी सख्त और साफ उपेक्षा। ऐसा प्रत्याख्यान। इतना बड़ा अपमान क्या कभी किसी पुरुष के भाग्य में बदा था? महेन्द्र का गर्व चूर—चूर हो गया, किन्तु किसी भी तरह मरा नहीं, वह बार-बार पीड़ित और दलित होने लगा। महेन्द्र अपने-आपसे कहने लगा, 'मैं क्या इतना अपदार्थ हूं, इतना तुच्छ हूं। मेरे साथ ऐसी स्पर्धा का व्यवहार करने का उसे साहस कैसे हुआ? मेरे सिवा अब उसका है ही कौन?'

सोचते-सोचते सहसा ख्याल आया, बिहारी है। क्षण-भर के लिए सहसा उसके दिल का सारा रक्त-प्रवाह मानो सन्नाटे में आ गया। 'बिहारी के बूते पर ही विनोदिनी उसे अपने खेल का खिलौना बनाए हुए है।' वह सोचने लगा 'मैं तो उसका सिर्फ उपलक्ष्य-मात्र हूं, कदम रखकर चढ़ने की सीढ़ी हूं, कदम-कदम पर लतियाए जाने का स्थान हूं, बस और कुछ नहीं। बिहारी के बूते पर ही आज वह इतनी इठला

रही है, उसीके भरोसे आज वह मेरी इतनी अवज्ञा करने की हिम्मत कर रही है। महेन्द्र को सन्देह होने लगा कि 'बिहारी के साथ विनोदिनी का जरूर पत्र-व्यवहार चल रहा है और विनोदिनी को जरूर उसकी तरफ से कुछ न कुछ तसल्ली मिली है।'

तब फिर महेन्द्र धीरे-धीरे बिहारी के घर की तरफ चल दिया। जब उसने बिहारी के घर जाकर दरवाजा खटखटाया तब ऐसी कुछ ज़्यादा रात नहीं हुई थी। कई बार कड़ा खटखटाने के बाद नौकर ने भीतर से दरवाजा खोल दिया, और कहा, "बाबू साहब तो यहां हैं नहीं।"

महेन्द्र ने बिहारी के पुराने और परिचित नौकर से पूछा, "भज्जू, बाबू कब गए हैं बाहर?"

भज्जू ने कहा, "उन्हें तो यहाँ से गए आज चार-पांच दिन हो गए, साब! पछांह की तरफ कहीं हवा बदलने गए हैं।"

सुनकर महेन्द्र के जी में जी आ गया। उसने सोचा, 'अब यहीं पड़कर सो रहूं। रात-भर कहां घूमता फिरूंगा।' इसके बाद ऊपर जाकर बिहारी के कमरे में कोच पर पड़ रहा और पड़ते ही उसे नींद आ गई।

महेन्द्र ने जिस रात को बिहारी के घर आकर बखेड़ा खड़ा किया था, उसके दूसरे ही दिन बिहारी यह तय किए बगैर ही कि कहां जाना है, पश्चिम की तरफ रवाना हो गया था। उसने सोचा कि यहां रहने से मित्र के साथ किसी दिन उसका संघर्ष ऐसा भयानक हो उठेगा कि फिर जीवन-भर के लिए भुनते रहने का कारण बन जाएगा, इसलिए वह कलकत्ता छोड़कर चला ही गया।

दूसरे दिन महेन्द्र की जब आंख खुली तब दिन के ग्यारह बज चुके थे। उठते ही सामने की तिपाई पर उसकी नजर पड़ी। देखा कि विनोदिनी के हाथ का लिखा बिहारी के नाम का एक लिफाफा पत्थर के 'पेपर-वेट' के नीचे दबा रखा है। चट से उसने लिफाफा उठा लिया देखा कि अब तक वह खोला नहीं गया है। बाहर गए बिहारी के लिए वह तिपाई पर पड़ा इन्तजार कर रहा था। कांपते हुए हाथों से महेन्द्र जल्दी से उसे खोलकर पढ़ने लगा। यही चिट्ठी विनोदिनी ने अपने गांव से बिहारी को लिखी थी और अभी तक इसका उसे कोई जवाब नहीं मिला था।

चिट्ठी का प्रत्येक अक्षर महेन्द्र को बिच्छू की तरह डंक मारने लगा। महेन्द्र को भी विनोदिनी की दो-चार चिट्ठियां मिली हैं, किन्तु बिहारी की इस चिट्ठी के आगे वे बिल्कुल बनावटी हैं, सिर्फ बेवकूफ को बहलाने का कोरा छल हैं, और कुछ नहीं।

पूर्व प्रथा के अनुसार मालिक की अनुपस्थिति में भी भज्जू नौकर ने महेन्द्र के लिए चाय बनाई और बाजार से जलपान ले आया। महेन्द्र नहाना-निबटना भूल गया। गरम बालू पर मुसाफिर जैसे जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ चलता है, महेन्द्र उसी तरह क्षण-क्षण में विनोदिनी की आग भरी चिट्ठी पर जल्दी-जल्दी आंखें फेरने

लगा।

महेन्द्र ने चिट्ठी जेब में रख ली और शाम से कुछ पहले वह पटलडांगा के मकान में पहुंचा। महेन्द्र की बुरी हालत देखकर विनोदिनी को दया आ गई। वह समझ गई कि महेन्द्र कल रात को घर न जाकर रात-भर शायद इधर-उधर फिरता रहा है। उसने पूछा, ''कल रात को घर नहीं गए थे क्या?''

महेन्द्र ने कहा, ''नहीं।''

विनोदिनी ने व्यस्तता के साथ कहा, ''अब तक कुछ खाया-पिया भी नहीं क्या?'' इतना कहते हुए सेवापरायणा विनोदिनी उसी क्षण भोजन का प्रबन्ध करने को तैयार हो गई।

महेन्द्र ने कहा, ''रहने दो, मैं खा आया हूं।''

विनोदिनी ने पूछा, ''कहाँ खा आए?''

महेन्द्र ने कहा, ''बिहारी के घर।''

क्षण-भर के लिए विनोदिनी का चेहरा पीला पड़ गया। क्षण-भर निरुत्तर रहकर अपने को सम्हालते हुए उसने पूछा, ''बिहारी लालाजी अच्छे तो हैं?''

महेन्द्र ने कहा, ''हां, अच्छा ही है। पछाँह की तरफ हवा बदलने चला गया है।''

महेन्द्र ने यह बात ऐसे कही जैसे बिहारी आज ही रवाना हुआ हो।

विनोदिनी का चेहरा और एक बार पीला पड़ गया और फिर उसने अपने को सम्हालते हुए कहा, ''ऐसे चंचल आदमी मैंने बहुत कम देखे हैं। हमारी सब बातें उन्हें मालूम हो गई मालूम होती हैं। बहुत नाराज थे क्या?''

महेन्द्र ने कहा, ''नहीं तो ऐसी सख्त गरमी में क्या शौक से कोई पश्चिम घूमने जाता है!''

विनोदिनी ने कहा, ''मेरे विषय में कुछ कह रहे थे क्या?''

महेन्द्र ने कहा, ''कहने को क्या था! यह लो, बिहारी की चिट्ठी।''

इतना कहकर विनोदिनी के हाथ में चिट्ठी देकर महेन्द्र तीखी नज़र से उसके चेहरे का भाव देखने लगा।

विनोदिनी ने जल्दी से चिट्ठी ले ली। खुली हुई चिट्ठी थी और लिफाफे पर उसीके हाथ का बिहारी का पता लिखा हुआ था। उसने लिफाफे में से चिट्ठी निकालकर देखी, उसीकी लिखी हुई चिट्ठी है। उलट-पुलटकर देखने लगी, किन्तु कहीं भी बिहारी के हाथ का लिखा हुआ कोई जवाब उसे नहीं दिखाई दिया। थोड़ी देर चुप रहकर विनोदिनी ने महेन्द्र से पूछा, ''यह चिट्ठी तुमने पढ़ ली है?

विनोदिनी के चेहरे का भाव देखकर महेन्द्र के मन में डर बढ़ने लगा। वह चट से झूठ कह बैठा, ''नहीं।''

विनोदिनी ने चिट्ठी के टुकड़े-टुकड़े कर डाले, और फिर उन टुकड़ों को भी

रत्ती–रत्ती फाड़कर खिड़की से नीचे फेंक दिया।

महेन्द्र बोला, "मैं घर जा रहा हूं।"

विनोदिनी ने उसकी बात का कोई ,उत्तर नहीं दिया।

महेन्द्र ने कहा, "तुम जैसा चाहती थीं, मैं वैसा ही करूंगा। सात दिन मैं अपने घर ही में रहूंगा। कालेज जाते वक्त रोज़ एक बार यहां की देखभाल करके खेमी को समझा जाया करूंगा। तुमसे मिलकर अब मैं तुम्हें परेशान न करूंगा।"

महेन्द्र अपना सामान लेकर चलता बना। विनोदिनी सूने कमरे में बहुत देर तक जड़–सी बैठी रही। अन्त में अपने को मानो जी–जान से सचेत करने के लिए छाती की चोली फाड़कर अपने–आपको बेरहमी के साथ पीटने लगी। इस तरह विनोदिनी अपने को मार–पीट कर खुले झरोखे के नीचे सारी रात बेहोश–सी पड़ी रही।

सवेरे कमरे में सूरज की रोशनी के प्रवेश करते ही सहसा उसे संदेह हुआ, बिहारी अगर न गया हो? महेन्द्र ने अगर उसे भरमाने के लिए झूठ कहा हो? उसी क्षण उसने खेमी को बुलाकर कहा, "खेमी, तू अभी जा। बिहारी लालाजी के घर जाकर पता लगाकर आ कि वे कहां हैं।"

खेमी ने घण्टे–भर बाद वापस आकर कहा, "बिहारी बाबू के घर के तो सब दरवाज़े–जंगले बन्द थे। दरवाज़ा खटखटाने पर नौकर ने भीतर से कहा, बाबू घर नहीं हैं, पश्चिम की तरफ घूमने गए हैं।"

विनोदिनी के मन का सन्देह दूर हो गया।

४१

महेन्द्र रात को ही उठकर चला गया, यह सुनकर राजलक्ष्मी बहू पर बहुत नाराज़ हुई। उन्होंने समझा, आशा की बेवकूफी से ही महेन्द्र चला गया है।

राजलक्ष्मी ने आशा से पूछा, "महेन्द्र कल रात को चला क्यों गया?"

आशा ने कहा, "मुझे कुछ नहीं मालूम, मां!"

राजलक्ष्मी ने सोचा, यह भी अभिमान की बात है। उन्होंने नाराज़ी के साथ कहा, "तुम्हें क्यों मालूम होने लगा! उससे कुछ कहा था तुमने?" आशा सिर्फ 'नहीं' कहकर चुप रह गई।

राजलक्ष्मी को विश्वास नहीं हुआ। 'भला यह भी कभी सम्भव को सकता है?' उन्होंने पूछा, "कल वो कब गया था?"

आशा ने संकुचित होकर कहा, "मालूम नहीं।"

राजलक्ष्मी बेहद गुस्से से भर उठीं बोलीं, "तुम्हें कुछ भी नहीं मालूम!

नन्ही–सी बच्ची हो न! सब तुम्हारी ही करामात है।"

राजलक्ष्मी ने तेज़ स्वर में यह भी ज़ाहिर कर दिया कि आशा के ही व्यवहार और आदत के दोष से महेन्द्र घर छोड़कर चला गया है। आशा ने सिर झुकाए सास की डांट–फटकार सह ली, और फिर वह अपने कमरे में जाकर रोने लगी।

शाम का वक्त हैं। ज्योतिषीजी और उनकी बहन घर पर आई हुई हैं। राजलक्ष्मी ने लड़के के ग्रहों की शान्ति के लिए इन्हें बुलवा भेजा था। उन्होंने बहू की जन्मपत्री और हाथ देखने के लिए ज्योतिषी से अनुरोध किया। इसके लिए उन्होंने आशा को भी बुला लिया था। दूसरों के सामने अपने दुर्भाग्य की आलोचना के संकोच से बेहद कुण्ठित होकर आशा किसी तरह अपना हाथ निकालकर बैठी ही थी कि इतने में राजलक्ष्मी को अपने कमरे के सामने वाले बिना दीये के बरामदे में किसी के जूते की दबी हुई आवाज सुनाई दी, मानो कोई दबे पांव भीतर चला जा रहा हो। राजलक्ष्मी ने पुकारा, "कौन है?"

कुछ जवाब नहीं मिला तो उन्होने फिर पुकारा, "कौन जा रहा है?" इतने में चुपके से महेन्द्र आ पहुंचा। राजलक्ष्मी ने जब धीरे, से कहा, "बहू, पार्वती से कह दो, महेन की थाली ले आवे।" तब आशा से रहा न गया। उसने कहा, "मैं लिए आती हूं।" घर के दास-दासियों की नजर से भी वह अपने पति को बचाए रखना चाहती है।

इधर ज्योतिषी और उनकी बहन को देखकर महेन्द्र भीतर ही भीतर बेहद गुस्से से भर उठा। उसकी मां और स्त्री दैव की सहायता से उसे वश में करने के लिए इन अनपढ़ मूर्खों के साथ बैठी बेशर्म भाव से साजिश कर रही है, यह महेन्द्र के लिए सहन से परे हो उठा। उसने मां से कहा, "मां ज़रा ऊपर जा रहा हूं।"

मां ने सोचा, महेन्द्र शायद अपने कमरे में जाकर अकेले में बहू से बातचीत करना चाहता है। उन्होने बहुत खुश होकर जल्दी से रसोई में जाकर बहू से कहा, "जाओ, जाओ, तुम जल्दी से ज़रा ऊपर चली जाओ, महेन्द्र ऊपर गया है, शायद उसे कोई ज़रूरी काम है।"

आशा कांपते हुए दिल से बेहद संकोच से पैर रखती हुई ऊपर चली गई। सास की बात से उसने यही समझा था कि शायद महेन्द्र ने उसे बुलाया है, किन्तु कमरे के भीतर सहसा उससे घुसा नहीं गया। घुसने के पहले वह अंधेरे में दरवाजे की ओट में खड़ी-खड़ी महेन्द्र को देखने लगी।

महेन्द्र तब बड़े खाली दिल से नीचे के गद्दे पर तकिये के सहारे लेटा हुआ छत की कड़ियों की जाँच कर रहा था। वही महेन्द्र है, वही सब कुछ, किन्तु कैसा बदलाव है।

आशा अंधेरे में खड़ी-खड़ी जितना ही महेन्द्र को गौर से देखने लगी, उतना ही उसे ऐसा लगने लगा कि महेन्द्र अभी तुरंत विनोदिनी के पास से आ रहा है, उसके

शरीर में उसी विनोदिनी का स्पर्श है, उसकी आंखों में उसी विनोदिनी की मूर्ति है, उसके कानों में उसी विनोदिनी का कण्ठ-स्वर है और उसके मन में उसी विनोदिनी की वासना लिपटी हुई है। इस महेन्द्र को आशा कैसे अपनी पवित्र भक्ति दे और कैसे एकाग्र मन से कहे कि 'आओ मेरे अनन्यपरायण, मेरे दिल में आ विराजो, मेरे अटलनिष्ठ सती-प्रेम के उजाले कमल पर अपने दोनों चरण रखकर मुझे धन्य कर दो।'

विनोदिनी का महेन्द्र आशा के लिए मानो पर-पुरुष है, मानो पर-पुरुष से भी बढ़कर है, और ऐसी शर्म का विषय मानो बहुत अपरिचित भी नहीं हो सकता। आशा ये किसी भी तरह कमरे के भीतर नहीं जाया गया।

इतने में महेन्द्र की अनमनी नजर कड़ियों से सामने की दीवार पर उतर आई। उसकी नजर का पीछा करके आशा ने देखा कि सामने की दीवार पर महेन्द्र की तस्वीर के पास ही आशा की तस्वीर लटक रही है। उसका जी चाहने लगा कि उसे वह आंचल से ढक दे या उतारकर फेंक दे। आदतन क्यों उसपर अब तक उसकी नजर नहीं पड़ी और क्यों अब तक उसे उसने उतारा नहीं, इस बात का ख्याल कर-करके वह अपने को धिक्कारने लगी।

अन्त में रोष से पीड़ित महेन्द्र की नजर दीवार से भी उतर आई। आशा अपनी मूर्खता मिटाने के लिए आजकल शाम के बाद काम-काज और सास की सेवा से छुट्टी पाते ही बहुत रात अकेली बैठी पढ़ा करती है। उसकी पढ़ने की किताबें और कापी वगैरह एक तरफ रखी हुई थी। सहसा महेन्द्र की उनपर नज़र पड़ गई और वह अलस भाव से उनमें से एक कापी खींचकर उसे देखने लगा। आशा को ऐसा जी करने लगा कि वह चीखकर, चिल्लाकर, झपटकर महेन्द्र के हाथ से उसे छीन लाए। अपनी कच्ची और भद्दी लिखावट पर महेन्द्र की हृदयहीन व्यंग्य-दृष्टि की कल्पना करके उससे फिर वहां एक क्षण भी खड़ा नहीं रहा गया। वह बड़ी तेज़ी से नीचे भाग गई। उसने अपने पैरों की आहट छिपाने की भी कोशिश नहीं की।

महेन्द्र के लिए खाना बिल्कुल तैयार था। राजलक्ष्मी सोच रही थी कि महेन्द्र ऊपर बहू के साथ प्यार की बातें कर रहा होगा और इसलिए उन्होंने भोजन की थाली ले जाकर बीच में रंगभंग करना उचित नहीं समझा। अब आशा को नीचे आते देख उन्होंने महेन्द्र को खाने के लिए नीचे बुलवा भेजा।

महेन्द्र के नीचे आते ही आशा दौड़ी-दौड़ी ऊपर पहुंची। उसने अपनी तसवीर उतारकर उसे तोड़-फाड़कर छत की दीवार के ऊपर से बाहर फेंक दिया और अपनी किताब-कापियां उठाकर जल्दी से नीचे ले आई।

भोजन करने के बाद महेन्द्र अपने सूने कमरे में जाकर बैठ गया। राजलक्ष्मी इधर-उधर बहू को ढूढ़ने लगीं, आसपास कहीं भी उसका पता नहीं चला। अन्त में

रसोईघर में जाकर देखा कि वह उनके लिए दूध गरम कर रही है। राजलक्ष्मी ने कहा, "यह क्या, बहू, तुम यहां क्यों? जाओ, ऊपर जाओ।"

आशा ऊपर तो गई, पर बीच की मंजिल में सास के कमरे में ही रह गई। राजलक्ष्मी बहू के इस व्यवहार से बहुत नाराज़ हो उठीं। उन्होने तेज फटकार के स्वर में कहा, "तुम्हारा यह क्या ढंग है, बहू। भाग्य से पति घर आया तो अब तुम हंडिया-सा मुंह बनाके ठनगन दिखाने लगीं।"

आशा अपने को अपराधिनी समझकर अंकुश से घायल मन से ऊपर चली गई और मन को हिचकिचाहट का मौका न देकर एक सांस में सीधी अपने कमरे में जा पहुंची।

दस बज चुके हैं। महेन्द्र चिन्तित मुख से पलंग के सामने खड़ा हुआ अनावश्यक लम्बे समय तक मसहरी झाड़ रहा था। विनोदिनी के प्रति उसके मन में तीव्र अभिमान का उदय हो रहा था। वह मन ही मन प्रतिज्ञा करने लगा, विनोदिनी के इस साहस का वह विरोध करेगा, और जैसे भी हो आशा के प्रति अपने दिल को सही करके वह विनोदिनी के द्वारा किए गए इस अपमान का बदला लेकर ही रहेगा।

आशा के कमरे में प्रवेश करते ही महेन्द्र का अनमने भाव से मसहरी झाड़ना बन्द हो गया। 'क्या कहकर आशा से वह बात शुरू करे,' इस समस्या का हल करना उसके लिए बड़ा कठिन हो उठा।

महेन्द्र ने सूखी हंसी हंसते हुए, सहसा जो बात उसकी ज़बान पर आई, कह डाली। उसने कहा, "तुम भी आजकल, मालूम होता है, मेरी ही तरह पढ़ने में मशगूल हो रही हो। तुम्हारी किताबें-कापियां अभी जो यहां देखी थीं वे कहां गईं?"

उसकी बात सिर्फ बेतुकी ही सुनाई दी हो सो बात नहीं, उसने मानो आशा को थप्पड़-सा मार दिया। मूर्ख आशा, जो शिक्षित होने की कोशिश कर रही है, यह उसकी अपनी छिपी बात है। आशा की धारणा थी कि यह उसके लिए बड़ी हंसी की बात है। उसके लिए अपने इस शिक्षा प्राप्त करने के संकल्प को अगर किसीके भी हास्य विद्रूप के जरा-से आभास से छिपाने की ज़रूरत है, तो वह विशेष रूप से महेन्द्र से ही। वही महेन्द्र जब इतने दिन बाद अपनी पहली बोलचाल में हंसते हुए उसी बात को उतार लाया तो बेरहमी से बेंत की मार खाए बच्चे की कोमल देह की तरह आशा का समूचा मन सिकुड़कर दुखी हो उठा। वह कुछ जवाब न देकर मुंह फेरकर तिपाई से लगके खड़ी हो गई।

महेन्द्र भी मुंह से बात निकलते ही समझ गया था कि उसकी बात बिलकुल संगत और समय पर उपयोग करने वाली नहीं हुई। किन्तु वर्तमान अवस्था में उपयोगी बात क्या हो सकती है, यह भी उससे तय करते नहीं बना। वह वैसे ही मसहरी के सामने खड़ा-खड़ा मन ही मन अपने वक्तव्य और कर्तव्य की परख करने लगा।

इतने में एक बहुत हलका-सा शब्द सुनकर महेन्द्र ने मुंह फेरकर देखा, आशा कमरे में नहीं है।

४२

दूसरे दिन सवेरे महेन्द्र ने मां से कहा, "मां, पढ़ने-लिखने के लिए मुझे एक अलग कमरा चाहिए। चाची जिस कमरे में रहती थीं, मैं उसी में रहूंगा।"

मां प्रसन्न हो उठी, "तो महेन्द्र घर में ही रहेगा। मालूम होता है बहू से अब मेल-मिलाप हो गया। मेरी सोने की गुड़िया बहू का भला महेन्द्र क्या हमेशा निरादर कर सकता है? घर की ऐसी लछमी को छोड़कर भला उस जादूगरनी डाइन के फेर में कब तक फंसा रह सकता है।"

राजलक्ष्मी तुरंत कह उठीं, "हां-हां, ठीक है, बेटा, तुम उसीमें रहा करना।" कहते हुए उसी वक्त उन्होने चाबियों का गुच्छा निकालकर बन्द कमरे को खुलवाकर उसे झड़वाने-पुंछवाने की धूम मचा दी।

राजलक्ष्मी ने कहा, "जाओ तो बहू, एक साफ जाजिम निकाल लाओ। इस कमरे में टेबल नहीं है, एक टेबल भी चाहिए। इस बत्ती से तो काम नहीं चलेगा, ऊपर से लैम्प भी भेज देना।" इस तरह दोनों ने मिलकर घर के राजाधिराज के लिए अन्नपूर्णा के कमरे में बड़ा भारी राजासन प्रस्तुत कर दिया। महेन्द्र गम्भीरता के साथ अपनी किताबें और नोटबुक आदि लेकर कमरे में जा बैठा और समय की जरा सी भी फिजूल खर्ची न करके उसी क्षण उसने पढना-लिखना शुरू कर दिया।

शाम को नाश्ता करने के बाद महेन्द्र फिर पढ़ने बैठ गया। वह,ऊपर अपने कमरे में सोएगा या नीचे पढ़ने के कमरे में, किसी की कुछ समझ में न आया। राजलक्ष्मी ने बड़े जतन से आशा को गुमसुम जड़ तितली-सी सजाकर कहा, "जाओ तो, बेटी, महेन्द्र से जाकर पूछ आओ, उसके बिछौने क्या ऊपर होंगे?"

इस प्रस्ताव ने आशा के पैरों को मानो कील दिया, वह चुपचाप सिर झुकाए खड़ी रही। नाराज़ राजलक्ष्मी उसे बहुत डांटने-फटकारने लगीं। आशा हथेली पर जान रखकर बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे महेन्द्र के दरवाजे तक गई किन्तु उससे आगे नहीं बढ़ा गया। राजलक्ष्मी दूर से बहू का व्यवहार देखकर बराण्डे के कोने में खड़ी-खड़ी गुस्से से इशारा करने लगीं। आशा एक सांस में ऐसे भीतर घुस पड़ी, जैसे उसने अपने को भट्टी में झोंक दिया हो।

महेन्द्र अपने पीछे पैरों की आहट सुनकर किताब से नजर बगैर उठाए ही कह उठा, "मुझे अभी देर है. फिर कल भोर में ही उठकर पढ़ना है, मैं यहीं सोऊंगा।"

आशा के कमरे से बाहर निकलते ही राजलक्ष्मी ने नाराजी के स्वर में पूछा, "क्या हुआ क्या?"

आशा ने कहा, "अभी पढ़ रहे है। नीचे ही सोएंगे।"

इतना कहकर वह सीधी अपने अपमानित सोने के कमरे में चली गई। थोड़ी रात बीतने के बाद अचानक किसी ने आशा के कमरे का दरवाज़ा खटखटाना शुरू कर दिया। बाहर से आवाज़ आई, "बहू, बहू, ज़रा दरवाज़ा खोलना।"

आशा ने जल्दी से उठकर दरवाज़ा खोल दिया। राजलक्ष्मी अंदर घुसते ही गद्दे पर बैठ गई और भर्राए हुए गले से बोलीं, "बहू, ये क्या ढंग हैं तुम्हारे! ऊपर आकर किवाड़ बन्द करके सो रही हो जो? यह क्या इस तरह गुस्सा-गुस्सी करने का समय है? इतना दुःख उठाने पर भी तुम्हें ज़रा अकल नहीं आई? जाओ, नीचे जाओ।"

आशा ने धीरे से कहा, "उन्होंने तो कहा है, वे अकेले रहेंगे।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "उन्होंने कहा है! उसने कह दिया और तुमने सुन लिया? गुस्से में उसने क्या कहा और क्या नहीं कहा, इन सब बातों को लेकर इतनी अकड़ दिखाना ठीक नहीं, बहू। इतना मान-गुमान करने से काम नहीं चलता। जाओ, जल्दी जाओ।"

आवेग के साथ बात करते-करते राजलक्ष्मी की फिर सांस फूल आई। किसी तरह अपने को सम्हालती हुई वे उठीं और आशा भी कुछ न कहकर सहारा देकर उन्हें नीचे ले गई। नीचे ले जाकर आशा ने राजलक्ष्मी को उनके बिस्तर पर बिठा दिया और पीठ के पीछे कई तकिये लगा दिए।

राजलक्ष्मी ने कहा, "रहने दो। सुधिया को भेज दो। तुम जाओ, अब देर मत करो।"

आशा इस बार ज़रा भी हिचकिचाई नहीं। सास के कमरे में से निकलकर वह सीधी महेन्द्र के कमरे में चली गई। महेन्द्र के सामने टेबल पर किताब खुली पड़ी थी और वह टेबल पर दोनों पैर फैलाकर कुर्सी की पीठ पर सिर रखे एकाग्र मन से कुछ सोच रहा था। पीछे से किसी के आने की आहट सुनकर महेन्द्र चौंककर पीछे देखने लगा। मानो वह किसी के ध्यान में डूबा था और अब सहसा उसे ऐसा भ्रम हुआ कि मानो वह जिसके ध्यान में बैठा था वही आ पहुंची है। आशा को देखकर महेन्द्र संयत होकर पैर नीचे उतारकर बैठ गया और किताब उठाकर उसने अपनी गोद में रख ली।

आशा महेन्द्र के सामने आकर स्थिर भाव से खड़ी हो गई। तब फिर महेन्द्र से पढ़ने का बहाना करते नहीं बना, उसने आंख उठाकर उसकी तरफ देखा। आशा ने साफ़ आवाज़ में कहा, "मां की सांस फूल रही है, तुम चलकर एक बार उन्हें देख लो तो अच्छा हो।"

महेन्द्र ने कहा, "मां कहां हैं?"

आशा ने कहा, "अपने सोने के कमरे में हैं। उन्हें नींद नहीं आ रही है, तकलीफ ज्यादा मालूम होती है।"

महेन्द्र ने कहा, "तो चलो, देख आऊं।"

आशा राजलक्ष्मी के दरवाज़े के पास आकर खड़ी हो गई। महेन्द्र भीतर चला गया। महेन्द्र को असमय में अपने पास आते देख राजलक्ष्मी ने कहा, "क्यों महेन, अभी तक तू सोया नहीं?"

महेन्द्र ने कहा, "क्यों मां, तुम्हारी सांस फिर उखड़ आई। तकलीफ ज़्यादा है क्या?"

इतने दिन बाद पुत्र के मुंह से ऐसा प्रश्न सुनकर मां को मन ही मन बड़ा अभिमान हुआ। वे समझ गईं कि बहू ने जाकर कहा है, तब महेन्द्र मां की खबर लेने आया है। इस अभिमान के आवेग से उनका दिल और भी ज़्यादा धड़क उठा। बड़ी तकलीफ से शब्द उच्चारण करते हुए बोलीं, "जा तू, सोने जा। मुझे कुछ नहीं हुआ।"

महेन्द्र ने कहा, "नहीं मां, एक बार अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी है। यह रोग लापरवाही बरतने का नहीं है।"

महेन्द्र जानता था कि उसकी मां का हृदय बहुत कमज़ोर है, इसलिए और उनके चेहरे का लक्षण देखकर वह बहुत परेशान हो उठा।

मां ने कहा, "तुझे परीक्षा करने की ज़रूरत नहीं। अब मेरा यह रोग अच्छा होने का नहीं है।"

महेन्द्र ने कहा, "अच्छा तो, आज रात-भर के लिए नींद की एक दवा मंगाए देता हूं, किन्तु कल अच्छी तरह परीक्षा कर देखनी होगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "बहुत दवा खा चुकी हूं, अब दवा-दारू की कुछ ज़रूरत नहीं। जा तू, बहुत रात हो चुकी है, अब सो जाकर।"

महेन्द्र ने कहा, "तुम्हारी तबीयत ज़रा ठीक हो ले, तब मैं जाऊंगा।"

तब अभिमानिनी राजलक्ष्मी ने द्वार के बीच में खड़ी बहू को सम्बोधित करते हुए कहा, "बहू, क्यों तुम इतनी रात में महेन्द्र को फिज़ूल हैरान करने के लिए यहां ले आईं?" कहते-कहते फिर उनकी सांस की तकलीफ़ बढ़ गयी और वे बेचैन हो उठीं।

तब फिर आशा ने भीतर आकर मीठे किन्तु दृढ़ स्वर में महेन्द्र से कहा, "जाओ, तुम सोने जाओ, मैं हूं मां के पास।"

महेन्द्र ने आशा को एक तरफ बुलाकर कहा, "मैं एक दवा मंगाए देता हूं। शीशी में दो खुराक दवा होगी एक खुराक पिलाने के बाद भी अगर नींद न आए, तो घण्टे-भर बाद दूसरी खुराक भी पिला देना। रात को तकलीफ बढ़े तो मुझे जगा लेना, भूलना नहीं।" इतना कहकर महेन्द्र अपने नये कमरे में सोने चला गया।

राजलक्ष्मी यह सोचकर कि बहू को उनका इतना ख्याल है कि वह चट से जाकर महेन्द्र को बुला लाई, मन ही मन बहू पर बहुत खुश हुई, किन्तु मुंह से बोलीं, "बहू, मैंने तुम्हें सोने के लिए भेजा था और तुम जाकर महेन्द्र को घसीट लाईं।"

आशा उनकी बात का कुछ जवाब न देकर पंखा हाथ में लेकर उनके पीछे बैठी-बैठी हवा करने लगी।

४३

राजलक्ष्मी ने स्पष्ट रूप से देख लिया कि आशा से महेन्द्र के मन को बांधते नहीं बनता और तब उन्हें ऐसा लगा कि 'कम से कम मेरी बीमारी के कारण ही महेन्द्र का अगर घर में रहना हो, तो वह भी अच्छा।' उन्हें डर लगने लगा कि कहीं उनका रोग बिल्कुल ही अच्छा न हो जाए और इसलिए वे आशा से छिपाकर दवा फेंक देने लगीं।

एक दिन शाम के वक्त राजलक्ष्मी की तकलीफ काफी बढ़ गई, तब उन्हें बिहारी की याद हो आई। कितने दिनों से बिहारी नहीं आया, जिसका कोई ठीक नहीं। उन्होंने आशा से पूछा, "बहू, आजकल बिहारी कहां है?"

आशा समझ गई और सोचने लगी, 'हमेशा से रोग-धोग और दुःख-कष्ट में बिहारी लालाजी ही मां की सेवा करते आए हैं। इसीसे मां को आज तकलीफ के समय उनकी याद आ रही है। हाय-हाय, इस घर के अटल सेवक-सहायक हमेशा के वे ही बिहारी लालाजी भी आज दूर चले गए हैं। वे होते तो इस बुरे समय में मां की बहुत सेवा करते। इनकी तरह वे हृदयहीन नहीं हैं। सोचते-सोचते आशा के दिल से एक लम्बी सांस निकल आई।

राजलक्ष्मी ने कहा, "बिहारी के साथ महेन्द्र ने शायद झगड़ा कर लिया है? बड़े अन्याय की बात है, बहू! उस जैसा भला चाहने वाला मित्र महेन्द्र को और कोई मिलेगा नहीं।" कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू भर आए।

एक के बाद एक आशा को बहुत-सी बातें याद आने लगीं। अंधी मूर्ख आशा को समय पर होशियार करने के लिए बिहारी ने कितनी तरह से कोशिश की थी। उन कोशिशों की वजह से वह आशा का कितना अप्रिय हो उठा था, उन सब बातों की याद कर-करके आशा आज मन ही मन तीव्र रूप से अपने को अपमानित करने लगी।

बहुत देर तक चिन्तित और स्थिर रहकर राजलक्ष्मी फिर सहसा कह उठीं, "बहू, आज बिहारी अगर होता तो इस बुरे समय में वह ज़रूर हमारी रक्षा कर सकता था। मामला इतना आगे नहीं बढ़ पाता।" आशा सन्नाटे में डूबी सोचने लगी।

राजलक्ष्मी ने एक गहरी सांस लेते हुए कहा, "उसे अगर मालूम हो जाए कि मैं बीमार हूं, तो वह बगैर आए नहीं रह सकता।"

आशा समझ गई कि राजलक्ष्मी की इच्छा है, बिहारी को खबर पहुंचा दी जाए। बिहारी के अभाव में वे आज बिल्कुल ही असहाय हो गई हैं।

कमरे की बत्ती बुझाकर महेन्द्र चांदनी में खिड़की के पास चुपचाप खड़ा था। पढ़ने में अब उसका जी नहीं लगता। घर में उसे कोई सुख नहीं। जो अपने गहरे आत्मीय हैं, उनके साथ सहज-स्वाभाविक सम्बन्ध दूर हो जाने पर भी उन्हें गैरों की तरह आसानी से छोड़ा नहीं जा सकता और न प्रियजनों की तरह आसानी से अपनाया ही जा सकता है। इस तरह भला कैसे किसी के दिन कट सकते हैं! महेन्द्र ने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि कम से कम सात दिन तक तो वह विनोदिनी से बिल्कुल ही न मिलेगा। अभी दो दिन और बाकी हैं। ये दो दिन अब कैसे कटें?

महेन्द्र ने पीछे से किसी के पैरों की आहट सुनी। समझ गया कि आशा आई है, किन्तु वह ऐसा भाव दिखाकर कि उसे कुछ मालूम ही नहीं, चुपचाप खड़ा रहा। आशा उसके इस भाव को ताड़ गई, किन्तु फिर भी वह वापस नहीं गई। महेन्द्र के पीछे खड़ी होकर बोली, ''एक बात है, उसे सुन लो, फिर मैं चली जाऊंगी।''

महेन्द्र ने उसी तरफ मुंह फेरकर कहा, ''क्यों, चली क्यों जाओगी, बैठ ही जाओ ज़रा।''

आशा उसकी इस भलमनसी पर विशेष ध्यान न देकर सीधी खड़ी रही। बोली, ''बिहारी लालाजी को मां की बीमारी की खबर दे देनी चाहिए।''

बिहारी का नाम सुनते ही महेन्द्र के गहरे टूटे दिल पर एकाएक ऐसी चोट पहुंची कि वह तिलमिला उठा, फिर भी उसने अपने को सम्हालते हुए कहा, ''क्यों, क्यों दे देनी चाहिए जी? मेरे इलाज पर विश्वास नहीं हो रहा होगा शायद?''

आशा का हृदय इस ग्लानि से भर उठा था कि उसके पति मन लगाकर मां का ठीक-ठीक इलाज नहीं कर रहे हैं,इसलिए अचानक ही उसके मुंह से निकल गया, ''तो फिर उनकी तबीयत ठीक क्यों नहीं हो रही दिन-दिन बीमारी बढ़ती ही क्यों जा रही है?''

इस साधारण-सी बात की भीतरी गर्मी को महेन्द्र समझ गया। महेन्द्र को ऐसी सख्त फटकार आशा ने पहले कभी भी नहीं दी। महेन्द्र अपने अहंकार में घायल होकर चकित विद्रूप के साथ बोल उठा, ''तो अब मुझे तुमसे डाक्टरी सीखनी पड़ेगी मालूम होता है!''

महेन्द्र के इस विद्रूप वाक्य से आशा की इकट्ठी हुई टीस पर अचानक ऐसी चोट पहुंची कि जिसकी उसे आशा नहीं थी। उस पर घर में अंधेरा था, इसलिए आज वह हमेशा की निरुत्तर आशा बिना किसी संकोच के तेज चमक के साथ कह उठी, ''डाक्टरी मुझसे भले ही न सीखो, पर मां की सेवा करना तो सीख सकते हो!''

आशा के मुंह से ऐसा जवाब सुनकर महेन्द्र के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ऐसे तेज वाक्य सुनने का आदी नहीं होने के कारण महेन्द्र एकाएक कठोर हो उठा, बोला, ''तुम्हारे बिहारी लालाजी को क्यों इस घर में आने की मनाही की गई है, सो क्या तुम्हें मालूम नहीं?

मुझे क्या फिर से याद दिलाना पड़ेगा?" आशा बड़ी तेज़ी से कमरे से बाहर निकल गई। शर्म की आंधी मानो उसे ढकेल ले गई हो।

आशा के चले जाते ही महेन्द्र अपनी समूची हार का अहसास करने लगा। आशा किसी भी समय किसी भी हालत में उसे इस तरह धिक्कार दे सकती है, इसकी महेन्द्र ने कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी। महेन्द्र ने देखा, जहां उसका सिंहासन था, वहां वह आज धूल में लोट रहा है। इतने दिन बाद उसे आशंका होने लगी, शायद आशा की कसक नफरत में बदल रही है।

रात को राजलक्ष्मी की तकलीफ ज़्यादा बढ़ गई। उनसे रहा नहीं गया, उन्होंने खुद ही महेन्द्र को बुलाकर कहा, "महेन, बिहारी को देखने की मेरी बड़ी इच्छा है। बहुत दिनों से वह आया नहीं है।"

आशा सिरहाने के पास बैठी सास को पंखे से हवा कर रही थी। वह मुंह नीचा किए रही।

महेन्द्र ने कहा, "वह यहां नहीं है, पछांह की तरफ कहीं घूमने गया है।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मेरा मन कह रहा है कि वह यहीं कहीं है। तुमसे रूठा हुआ है, इसलिए नहीं आ रहा है। तुझे अपनी मां की सौगन्ध है, कल तू एक बार उसके घर जाकर देख आ।"

महेन्द्र ने कहा, "अच्छा, जाऊंगा।"

४४

दूसरे दिन बड़े तड़के ही महेन्द्र बिहारी के घर पहुंचा। देखा, दरवाज़े के आगे बहुत-सी बैलगाड़ियां खड़ी हैं और उन पर असबाब लादा जा रहा है। महेन्द्र ने भज्जू से पूछा, "क्या बात है, भज्जू?"

भज्जू ने कहा, "बाबू साहब ने बाली-उत्तरपाड़ा में गंगा-किनारे एक बगीचा लिया है, वहीं सब सामान जा रहा है।"

महेन्द्र ने पूछा, "बाबू घर में हैं क्या?"

भज्जू ने कहा, "वे सिर्फ दो-तीन दिन कलकत्ते रहकर कल बाली के बगीचे चले गए हैं।"

सुनकर महेन्द्र का मन आशंका से भर गया। वह अनुपस्थित था और इस बीच में ज़रूर विनोदिनी और बिहारी आपस में मिल चुके होंगे, इसमें उसे ज़रा भी शक न रहा। वह अपनी कल्पना की आंखों से देखने लगा, विनोदिनी के मकान के सामने भी इस समय बैलगाड़ियों पर सामान लादा जा रहा होगा और फिर अपने मन में कहने लगा, 'इसलिए मुझ बेवकूफ को विनोदिनी ने अपने पास से दूर हटा रखा है।' एक

क्षण भी देर न करके महेन्द्र अपनी गाड़ी में बैठ गया और कोचवान से बोला, "चलो।"

उसके ख्याल में घोड़े काफी ज़ोर से नहीं चल रहे थे और इसके लिए बीच-बीच में वह कोचवान को फटकारने लगा। गाड़ी जब पटल डांगा की उस गली में पहुंची तो महेन्द्र ने दूर से ही देखा कि वहां मकान छोड़कर जाने की कोई हलचल ही नहीं। उसे भय हुआ कि शायद उसके आने के पहले ही विनोदिनी अपना काम पूरा कर चुकी है।

महेन्द्र गाड़ी से उतरकर ज़ोर-ज़ोर से दरवाजा खटखटाने लगा। भीतर से एक बूढ़े ने दरवाज़ा खोल दिया। महेन्द्र ने पूछा, "सब ठीक तो है?"

नौकर ने कहा, "जी हां, सब ठीक है।"

महेन्द्र ने ऊपर जाकर देखा, विनोदिनी नहाने गई है। उसके सूने सोने के कमरे में जाकर महेन्द्र उस बिस्तर पर लेट गया, जिस पर वह कल रात सोई थी, फिर उसने दोनों बाहुओं से उस नर्म बिछौने को समेटकर अपनी छाती के नीचे दबा लिया और उसे सूंघकर उस पर मुंह फेरकर कहने लगा, "कठोर! कठोर!"

इस तरह वह अपने दिल से निकली सांस को छोड़कर बिछौने से उठकर बेहद उतावला होकर विनोदिनी की प्रतीक्षा करने लगा। फिर कमरे में इधर से उधर टहलते-टहलते उसने देखा कि फर्श के गद्दे पर एक अखबार खुला हुआ पड़ा है। वक्त काटने के लिए उसने कुछ अनमने भाव से उसे उठा लिया। उठाते ही जहां उसकी नज़र पड़ी, वहां बिहारी का नाम देखकर वह चौंक पड़ा। क्षणभर में उसका समूचा मन अखबार के उसी स्थान पर केन्द्रित होकर झुक पड़ा। कोई एक पत्र **प्रेषक** लिख रहा है, "कम वेतन पाने वाले क्लर्कों के इलाज और तीमारदारी के लिए बाली-उत्तरपाड़ा में गंगा के किनारे बिहारी बाबू ने एक बगीचा लिया है, वहां एकसाथ पांच रोगियों के लिए व्यवस्था की गई है।" इत्यादि।

महेन्द्र सोचने लगा, 'विनोदिनी इस समाचार को पढ़ चुकी है। पढ़कर उसका कैसा भाव हुआ होगा? अवश्य ही उसका मन भागने को फड़फड़ा रहा होगा।' सिर्फ इसीलिए महेन्द्र बेचैन हुआ हो सो बात नहीं, वह सोचने लगा, 'बिहारी के इस संकल्प से विनोदिनी का मन उसके प्रति ज़रूर पहले से ज़्यादा खिंचा होगा और अनुराग भी बढ़ गया होगा।' महेन्द्र को ऐसा लगा कि बिहारी ने उस पर यह भी एक चाल चली है।

विनोदिनी के आने की आहट सुनते ही महेन्द्र ने जल्दी से अखबार मोड़कर अपने नीचे रख लिया। तभी-तभी नहाई हुई विनोदिनी के कमरे में घुसते ही महेन्द्र उसके चेहरे की ओर देखकर चकित हो उठा। 'उसमें यह कैसा अनोखा सुन्दर बदलाव है! वह मानो इधर कई दिनों से अग्नि-तपस्या कर रही हो। उसका शरीर दुबला हो

गया है और उस दुबलेपन को भेदकर उसके गोरे चेहरे पर मानो एक प्रकार की चमक दमक रही है।

विनोदिनी के थके हुए पीले चेहरे को देखकर महेन्द्र के मन में ईर्ष्या की आग जल उठी। उसमें क्या ऐसी कोई शक्ति नहीं है जिससे वह बिहारी की चिन्ता से इस तपस्विनी को ताकत से उखड़ा हुआ कर सके? ईगल पक्षी जैसे भेड़ के बच्चे को क्षण में झपट्टा मारकर अपने दुर्गम बादलों को भेदने वाले पहाड़ के घोंसले में ले जाता है, वैसे ही क्या ऐसा बादलों से ढका पूरी तरह से भुलाया हुआ कोई स्थान नहीं है, जहां अकेला महेन्द्र अपने इस कोमल सुन्दर शिकार को अपनी छाती के नीचे छिपाकर रख सके?

'बिछोह की तपिश औरत के सौन्दर्य को नाजुक कर देता है,' यह बात महेन्द्र ने संस्कृत साहित्य में पढ़ी थी। आज विनोदिनी को देखकर वह इस बात का जितना ही अनुभव करने लगा, उतना ही सुख मिले दुःख की बहुत तेज हिलोरों से उसका दिल मथने लगा।

विनोदिनी ने क्षण-भर स्थिर रहकर महेन्द्र से पूछा, "तुम क्या घर से चाय पी के आए हो?"

महेन्द्र बोला, "मान लो, पी ही आया हूं, इसके मानी यह नहीं कि तुम अपने हाथ से और एक प्याला देने में कंजूसी करो, 'प्याला मोहि भर दे रे'?"

विनोदिनी ने शायद जान-बूझकर ही बड़े कठोर भाव से महेन्द्र के इस प्रकरण पर सहसा चोट की, बोली, "अच्छा, बिहारी लालाजी कहां हैं, मालूम है?"

सुनते ही क्षण-मात्र में महेन्द्र का रंग उतर गया। वह बोली, "वो तो अभी कलकत्ता से बाहर है कहीं।"

"उनका पता क्या है?"

"वो तो किसी को बताना ही नहीं चाहता।"

"किसी तरह पता नहीं लगाया जा सकता?"

"मुझे तो इसकी कोई खास ज़रूरत नहीं मालूम होती।"

"ज़रूरत ही क्या दुनिया में सब कुछ है? बचपन की मित्रता क्या कुछ भी नहीं?"

"बिहारी मेरा बचपन का मित्र ज़रूर है, किन्तु तुम्हारे साथ उसकी मित्रता दो दिन की है, फिर भी तकाज़ा तुम्हारा ही बहुत ज़्यादा मालूम होता है।"

"इसी से तुम्हें शर्मिंदा होना चाहिए। मित्रता कैसे की जाती है, सो तुम ऐसे मित्र से भी न सीख सके!"

"इसके लिए मैं इतना दुखी नहीं हूं। दुःख तो मुझे इस बात का है कि 'धोखा देकर स्त्रियों का कैसे मन चुराया जाता है', यह विद्या मैं उससे न सीख सका। सीख लेता तो आज वह मेरे काम आती।"

"वह विद्या सिर्फ इच्छा रहने से ही नहीं सीखी जा सकती, उसके लिए शक्ति

चाहिए।"

"ऐसे गुरुदेव का ठिकाना अगर तुम्हें मालूम हो, तो बता दो, इस उम्र में एक बार उनके पास जाकर दीक्षा ले आऊं, उसके बाद शक्ति की परीक्षा हो जाएगी।"

"अपने मित्र का पता अगर न लगा सको, तो प्रेम की बातें तुम मेरे आगे न किया करो। बिहारी लालाजी के साथ तुमने जैसा बरताव किया है, उसे देखकर कौन तुम पर विश्वास कर सकता है!"

"मुझपर अगर पूरा विश्वास न करती होतीं, तो मेरा तुम इतना अपमान नहीं कर सकती थीं। मेरे प्रेम के विषय में अगर तुम इतनी संदेह रहित नहीं होतीं, तो मुझे शायद इतना न सहा जा सकने वाला दुःख न उठाना पड़ता। बिहारी किसी के वश में न आने की विद्या जानता है। वह विद्या अगर इस अभागे को सिखा देता, तो उसकी मित्रता का सबसे बड़ा काम होता।"

"बिहारी जो मनुष्य ठहरा, इसी से वह किसी के वश में नहीं आता।" इतना कहकर विनोदिनी अपने खुले हुए बालों को पीठ पर फैलाकर खिड़की के पास जैसे खड़ी थी वैसे ही खड़ी रही।

महेन्द्र सहसा उठके खड़ा हो गया और ज़ोर से दोनों मुट्ठियां बांधकर गुस्से से गरजते स्वर में बोल उठा, "क्यों तुम बार-बार इस तरह मेरा अपमान करने का साहस करती हो? इतने अपमान का तुम्हें कोई प्रतिफल नहीं मिलता, सो क्या **तुम्हारी शक्ति से या मेरे गुण से? मुझे अगर तुमने पशु ही समझ रखा हो, तो खूंखार** पशु ही समझना! मैं आघात करना बिल्कुल जानता ही नहीं, इतना बड़ा कायर मुझे मत समझ लेना!"

इतना कहकर और क्षण-भर चुप रहकर वह विनोदिनी के मुंह की तरफ देखता रहा, उसके बाद कहने लगा, "विनोद, अब यहां से और कहीं चलो। हम लोग बाहर चलें तो अच्छा। पश्चिम की तरफ, पहाड़ पर, जहां तुम्हारी इच्छा हो चलो। यहां जीने की जगह नहीं। मैं मरा जा रहा हूं।"

विनोदिनी ने कहा, "चलो, अभी चलो। पश्चिम की तरफ घूमा जाए।"

महेन्द्र ने कहा, "पश्चिम में कहां चलोगी?"

विनोदिनी ने कहा, "कहीं भी नहीं। एक जगह दो-चार दिन नहीं ठहरना, बराबर घूमते-फिरते रहना है।"

महेन्द्र ने कहा, "अच्छी बात है, चलो आज रात को ही चल दें।"

विनोदिनी राज़ी हो गई और फिर महेन्द्र के लिए रसोई बनाने की तैयारी करने चली गई। महेन्द्र ने समझा कि बिहारी की खबर पर विनोदिनी की नज़र नहीं पड़ी। अखबार पढ़ने में मन लगाने योग्य ध्यान शक्ति विनोदिनी में अभी नहीं है, फिर भी दैव-संयोग से विनोदिनी की उसपर नज़र न पड़ जाए, इसके लिए महेन्द्र दिन-भर

सावधान बना रहा।

४५

बिहारी की खबर लेकर महेन्द्र वापस आ रहा होगा, इस धारणा से घर में उसके लिए रसोई बनी थी। बहुत देर होते देख रोग-पीड़ित राजलक्ष्मी बेचैन होने लगीं। रात-भर नींद न आने से वे वैसे ही बहुत थकी-थकाई थीं, उस पर महेन्द्र की उत्सुकता ने उन्हें और भी कठिन कर दिया। इससे आशा बेचैन हो उठी। उसने पता लगाने के लिए नौकर को भेजा तो मालूम हुआ कि गाड़ी लौट आई है। कोचवान से पता चला कि बाबू बिहारी बाबू के घर होते हुए पटलडांगा किसी के यहां गए हैं।' सुनते ही राजलक्ष्मी दीवार की तरफ करवट लेकर खामोश होकर सो रहीं। आशा उनके सिरहाने के पास चित्र की तरह स्थिर बैठी पंखे से हवा करती रही। और-और दिन राजलक्ष्मी आशा से ठीक समय खा आने के लिए कहती थीं, आज उन्होंने कुछ भी नहीं कहा।

कल रात को मां की कठिन पीड़ा देखकर भी महेन्द्र जब आज सवेरे ही विनोदिनी के मोह में दौड़ा चला गया, तब फिर राजलक्ष्मी के लिए इस संसार में किसीसे कुछ पूछने को, चेष्टा करने को, इच्छा करने को रह ही क्या गया! वे समझ गईं कि महेन्द्र ने उनकी बीमारी को मामूली बात समझा है। वह यह समझकर इतमीनान से है कि मां को तो कई बार ऐसा हुआ है और फिर वे अच्छी हो गई हैं, अब की बार भी वैसा ही हुआ है और वे अच्छी हो जाएंगी, किन्तु महेन्द्र का इस तरह आशंका और उद्वेग से खाली रहना ही राजलक्ष्मी को बहुत कष्ट देने वाला मालूम होने लगा। वे सोचने लगीं, 'महेन्द्र अपने इस प्रेम के पागलपन में किसी आशंका को, किसी कर्तव्य को अपने मन में जगह ही नहीं देना चाहता। वह मां के कष्ट को, मां के रोग को इतनी हलकी बात समझता है! कहीं उसे मां की रोग-शय्या के आसपास घिर न जाना पड़े, इस डर से वह ऐसा बेशर्म होकर ज़रा-सी फुर्सत पाते ही विनोदिनी के पास भाग गया!' अपने स्वास्थ्य के प्रति राजलक्ष्मी का ज़रा भी उत्साह न रहा। वे मारे अभिमान के यही चाहने लगीं कि उनका रोग कभी भी अच्छा न हो और महेन्द्र जान जाए कि उसकी समझ कितनी गलत है।

करीब दो बजे आशा ने कहा, "मां, दवा पीने का समय हो गया।"

राजलक्ष्मी कुछ जवाब न देकर चुप रहीं। आशा जब दवा लाने के लिए उठने लगी, तब उन्होंने कहा, "दवा की अब कोई ज़रूरत नहीं बहू, तुम जाओ।"

आशा सास का अभिमान समझ गई और उस अभिमान ने संक्रामक होकर उसके दिल की उथल-पुथल को दूना कर दिया। आशा से रहा नहीं गया, उसने अपने रोने

को काफी दबाया, किन्तु फिर भी वह घुमड़-घुमड़कर रोने लगी। राजलक्ष्मी ने धीरे से आशा की तरफ करवट लेकर उसके हाथ पर अपना दया और स्नेह भरा हाथ फेरते हुए कहा, "बहू, रानी बिटिया मेरी, तुम्हारी उम्र अभी कम है। सुख का मुंह देखने के लिए तुम्हारे हाथ में अब भी काफी समय है। मेरे लिए अब तुम कोशिश-जतन करना छोड़ दो, बेटी। मैं बहुत दिन जी चुकी हूं, अब जीकर क्या होगा?"

सुनते ही आशा का रोना एकाएक ऐसा उमड़ पड़ा कि उसे आंचल से अपना मुंह बन्द कर लेना पड़ा।

इस तरह रोगी के घर का वह दिन धीमी रफ्तार से बिना आनंद के बीत गया। हालांकि अभिमान के बावजूद दोनों नारियों को भीतर ही भीतर यह आशा थी कि अब भी महेन्द्र आ सकता है। ज़रा-सी आहट होते ही दोनों की दोनों चौंक उठती थीं और इस बात को दोनों ही समझ रही थीं।

धीरे-धीरे दिन की समाप्ति का प्रकाश धुंधला हो आया। कलकत्ते के घरों में जो गोधूलि की आभा है, उसमें न तो प्रकाश की खुशी है और न अंधेरे का पर्दा ही। वह तो केवल दुख को भारी और निराशा को आंसू से अलग कर डालती है, कार्य और आश्वासन की शक्ति चुरा लेती है, किन्तु विश्राम और वैराग्य की शान्ति नहीं लाती। रोगी के घर की उस रूखी और बेरौनक शाम में आशा चुपचाप उठकर एक बत्ती जलाकर ले आई।

राजलक्ष्मी ने कहा, "बहू, रोशनी मुझे अच्छी नहीं लगती, बत्ती तुम बाहर ही रख दो।"

आशा बत्ती उठाकर बाहर रख आई। अंधेरा जब घना बनकर उस छोटे-से कमरे में बाहर की अनन्त रात को ले आया, तब आशा ने सास से मीठे स्वर में पूछा, "मां, आदमी भेजकर उन्हें खबर पहुंचा दूं?"

राजलक्ष्मी ने दृढ़ स्वर में कहा, "नहीं, बहू, तुझे मेरी सौगन्ध है। तू महेन्द्र को खबर मत देना।"

सुनकर आशा चुप्पी रह गई। उसमें रोने की भी शक्ति नहीं थी।

बाहर से नौकर ने कहा, "बाबू साहब ने एक चिट्ठी भेजी है।"

सुनकर क्षण में राजलक्ष्मी को ऐसा लगा कि महेन्द्र की अचानक शायद तबीयत खराब हो गई है, इसी से खुद नहीं आ सका है, चिट्ठी भेज दी है। वे खिन्न और व्यस्त होकर बोलीं, "देखो तो बहू, महेन्द्र ने क्या लिखा है।"

आशा ने बाहर बत्ती के पास जाकर कांपते हुए हाथ से चिट्ठी पढ़ी। महेन्द्र ने लिखा है: कुछ दिन से यहां उसे अच्छा नहीं लग रहा है, इसलिए वह पश्चिम की तरफ घूमने जा रहा है। मां की बीमारी के बारे में ज़्यादा कुछ चिन्ता करने की

ज़रूरत नहीं। उन्हें नियमित रूप से देखते रहने के लिए उसने डाक्टर नवीन से कह दिया है। रात को नींद न आये या सिर में दर्द हो तो कब क्या करना चाहिए, सो भी चिट्ठी में लिख दिया है और साथ ही हलके और ताकत देने वाले लाभकारी भोजन के दो डब्बे भी भेज दिए हैं। चिट्ठी के अन्त में फिलहाल गिरिडीह के पते से बराबर मां की सेहत का समाचार भेजते रहने का भी अनुरोध किया है।

चिट्ठी पढ़कर आशा भौंचक्क रह गई। तेज़ धिक्कार उसके दुःख को भी लांघ गया। यह क्रूर समाचार मां को कैसे सुनाये?

आशा की इस देरी से राजलक्ष्मी और भी ज़्यादा बेचैन हो उठीं। वे बोलीं, "बहू, महेन्द्र ने क्या लिखा है, जल्दी बताओ मुझे।" कहते-कहते वे आग्रह के मारे बिस्तर पर उठकर बैठ गईं।

आशा ने तब भीतर आकर धीरे-धीरे पूरी चिट्ठी सुना दी। राजलक्ष्मी ने कहा, "अपनी तबीयत के बारे में उसने क्या लिखा है, ज़रा उस जगह फिर से पढ़कर सुनाना।"

आशा फिर से पढ़कर सुनाने लगी, "कुछ दिन से मुझे यहां अच्छा नहीं लग रहा है, इसलिए मैं...।"

राजलक्ष्मी कहने लगीं, "रहने दो, आगे पढ़ने की ज़रूरत नहीं। यहां अच्छा लगेगा कैसे? बूढ़ी मां मरती भी तो नहीं, बीमार पड़ी सिर्फ उसे जलाया ही करती है। क्यों तुमने उसे बीमारी की खबर दी? घर में था, एक कोने में बैठा पढ़ता-लिखता था, अच्छा था, किसी से कुछ लेन-देन नहीं था। बीच में मां की बीमारी की बात छेड़कर उसका घर छुड़ाने से तुम्हें क्या सुख मिल गया? मैं यहां मरी पड़ी रहूं तो उससे किसी का क्या नुक़सान है? इतने दुःख में भी तुम्हारे दिमाग में जरा अकल नहीं आई, बहू!' इतना कहकर वे खाट पर पड़ रहीं।

इतने में बाहर जूतों की आवाज़ सुनाई दी। नौकर ने आकर खबर दी, "डाक्टर साहब आए हैं।" और साथ ही साथ डाक्टर ने खांसते हुए कमरे में प्रवेश किया। आशा झटपट घूंघट काढ़कर खाट के पीछे की तरफ खड़ी हो गई। डाक्टर ने राजलक्ष्मी से पूछा, "आपको क्या तकलीफ है, बताइए तो?"

राजलक्ष्मी क्रोध के स्वर में बोल उठीं, "तकलीफ क्या होगी! किसी को मरने भी न दोगे? तुम्हारी दवा लेने से ही क्या मैं अमर हो जाऊंगी?"

डाक्टर ने सान्त्वना के स्वर में कहा, "अमर तो कोई भी किसी को नहीं कर सकता, पर कष्ट दूर करने की कोशिश तो—"

राजलक्ष्मी बोल उठीं "कष्ट दूर करने का सबसे अच्छा इलाज था तब, जब विधवाएं चिता में जल मरती थीं, अब तो सिर्फ बांध के मारना रह गया है। जाओ डाक्टर बाबू, तुम जाओ, मुझे अब और ज़्यादा परेशान न करो! मैं ज़रा अकेली

रहना चाहती हूं।"

डाक्टर ने डरते हुए कहा, "एक बार आपकी नाड़ी...।"

राजलक्ष्मी अत्यन्त विरक्ति के स्वर में कह उठीं, "मैं कहती हूं, तुम जाओ। मेरी नाडी बहुत अच्छी है। यह नाड़ी जल्दी छूटने की नहीं।" डाक्टर लाचार होकर बाहर चला गया और फिर आशा को बुला भेजा। आशा से उसने सारा हाल जान लिया और फिर कमरे में आकर राजलक्ष्मी से बोला, "देखिए, महेन्द्र बाबू मुझपर विशेष रूप में भार दे गए हैं। मुझे अगर आप इलाज नहीं करने देंगी, तो उन्हें बड़ा कष्ट होगा।"

महेन्द्र को कष्ट होगा! राजलक्ष्मी को यह बात महज़ मज़ाक सी प्रतीत हुई। उन्होंने कहा, "महेन्द्र के लिए तुम चिन्ता मत करो। कष्ट तो संसार में सभी को भोगना पड़ता है। इतने से कष्ट से महेन्द्र को बहुत ज्यादा सदमा नहीं पहुंचेगा। तुम अब जाओ, डाक्टर! मुझे ज़रा सोने दो।"

डाक्टर समझ गया कि रोगी को इस समय ज़्यादा परेशान करना ठीक नहीं। वह धीरे-धीरे बाहर निकल गया और आशा को बुलवाकर, 'रोगी के लिए उसे क्या-क्या करना चाहिए' सब समझाकर घर चला गया।

आशा के भीतर आते ही राजलक्ष्मी ने उससे कहा, "जाओ, बेटी, तुम अपने कमरे में जाकर थोड़ा आराम करो। दिन-भर से रोगी के पास बैठी हो। जाके तुम हरिया की मां को भेज दो, वह बगल के कमरे में बैठी रहेगी।"

आशा राजलक्ष्मी को जानती थी। यह उनका स्नेह का अनुरोध नहीं, आदेश है। पालन करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं। हरिया की मां को भेजकर वह अपने अंधेरे कमरे में जाकर ठंडी ज़मीन के बिछौने पर पड़ रही।

दिन-भर के उपवास और कष्ट से उसका शरीर, मन थका और निढाल हो गया था। मोहल्ले के एक घर में उस दिन रह-रहकर ब्याह के बाजे बज रहे थे। इस समय फिर शहनाई ने रागिनी छेड़ दी। उस रागिनी के आघात से रात का समूचा अंधेरा मानो कांप कर बार-बार आशा को आघात देने लगा। उसकी विवाह रात की प्रत्येक छोटी से छोटी घटना ने सजीव होकर रात के आकाश को सपने की छांव से भर दिया। उस दिन की रोशनी, शोर-शराबा और भीड़-भड़क्के ने, उस दिन के माला-चन्दन, नये वस्त्र और होम-धूप की खुशबू ने, उस दिन की नयी दुल्हन के शंकाओं में डूबे, लाज भरे आनंद से भरपूर-दिल की गुप्त कंपकपाहट ने, उस दिन की सारी की सारी याद ने जितना उसे चारों तरफ से घेरकर पकड़ना चाहा, उतना ही उसके दिल का दुख प्राण पाकर उस पर शक्ति-प्रयोग करने लगा। भयावह-अकाल में भूखा बालक जैसे कुछ खाने को देने के लिए मां को बार-बार दोनों हाथों से पीटता रहता है, उसी तरह जागे हुए सुख की याद अपने भूखे पेट के लिए आशा की छाती

पर बार-बार रो-रोकर थप्पड़े मारने लगी। सुन्न-सी हो आई आशा को फिर उसने पड़ा नहीं रहने दिया। वह उठके बैठ गई और दोनों हाथ जोड़कर देवता के आगे प्रार्थना करने लगी, तो इस संसार में उसकी अकेली मौजूद देवी मौसी की पवित्र-शीतल मूर्ति उसके आंसुओं की भाप्र भरे दिल में जिंदा हो उठी। अब तक आशा यही प्रण किए बैठी थी कि अब वह अपनी घर-गृहस्थी के दुःख-संकट में उस तपस्विनी को कभी नहीं बुलाएगी, किन्तु उसे अपनी मौसी के सिवा संसार में और कहीं भी कोई उपाय नहीं सुझाई दिया। आज उसके चारों तरफ जमे हुए गहरे दुःख में ज़रा भी कहीं कोई छेद-भर नहीं था। इसलिए आज वह कमरे में बत्ती जलाकर अपनी पालथी पर कापी-कागज़ रखकर बार-बार आंसू पोंछती हुई मौसी को चिट्ठी लिखने बैठ गई। उसने लिखाः

"श्रीचरणकमलेषु,

मौसी, आज तुम्हारे सिवा मेरा और कोई नहीं है। एक बार आकर इस दुखिया को अपनी गोद में उठा लो। नहीं तो मैं कैसे जीऊंगी? ज़्यादा और क्या लिखूं, मैं नहीं जानती। तुम्हारे चरणों में मेरा हज़ार प्रणाम पहुंचे।

तुम्हारी स्नेह की—चुन्नी।"

४६

अन्नपूर्णा काशी से कलकत्ते आ गई और धीरे-धीरे राजलक्ष्मी के कमरे में प्रवेश करके उन्होंने राजलक्ष्मी को प्रणाम करके चरणों की धूल माथे से लगाई। बीच का विरोध-अलगाव भूलकर राजलक्ष्मी उनसे ऐसे मिलीं जैसे खोया हुआ धन उन्हें फिर से मिल गया हो। भीतर ही भीतर अपने अनजाने में वे अन्नपूर्णा को चाह रही थीं। अन्नपूर्णा से मिलते ही इस बात को वे समझ गईं। बहुत दिन बाद आज राजलक्ष्मी ने इस बात का अहसास किया कि इतने दिनों से उनके अन्दर जो दुःख और घबराहट इकट्ठी हो रही थी, उसका कारण केवल अन्नपूर्णा का अभाव ही था। क्षण-भर में उनका दर्द-भरा दिल अपनी पहली जगह पर आ गया। महेन्द्र के जन्म से भी पहले इन दोनों देवरानी-जिठानी ने जब दुल्हन के रूप में इस परिवार के समूचे सुख-दुःख को एक होकर प्राप्त किया था, पूजा के उत्सव में, दुःख और शोक में, दोनों जब एकसाथ इस गृहस्थी के रथ में यात्रा कर रही थीं, तब के उस गहरे सखीपन ने राजलक्ष्मी के दिल को आज जरा देर में छा लिया। जिनके साथ बहुत पीछे अतीत में एकसाथ जीवन-यात्रा आरम्भ की थी, तरह-तरह के आघातों के बाद तब की वह बचपन की सहेली ही आज गहरे दुःख के दिनों में उनकी पार्श्ववर्तिनी हुई। उन दिनों के सारे सुख-दुःख और प्रिय घटनाओं की कोई याद रह गई है, तो वह अन्नपूर्णा ही

है। जिसके लिए राजलक्ष्मी ने अन्नपूर्णा को चोट पहुंचाई थी, वह आज कहां है?

अन्नपूर्णा ने बीमार जिठानी के पास बैठकर उनका दाहिना हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा, ''जीजी!''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''मझली बहू!'' इसके आगे वे और कुछ भी न कह सकीं। उनकी दोनों आंखों से आंसू बहने लगे। यह दृश्य देखकर आशा से रहा नहीं गया। वह बगल के कमरे में जाकर रोने लगी।

अन्नपूर्णा को राजलक्ष्मी या आशा से महेन्द्र के सम्बन्ध में कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। अन्त में साधुचरण को बुलाकर उन्होंने पूछा, ''मामा, महेन्द्र की क्या ख़बर है?''

साधुचरण ने महेन्द्र और विनोदिनी का सारा किस्सा कह सुनाया.

अन्नपूर्णा ने पूछा, ''बिहारी की क्या खबर है?''

साधुचरण ने कहा,''बहुत दिनों से वे यहां नहीं आए। उनके विषय में तो मुझे विशेष कुछ मालूम नहीं।''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''एक बार बिहारी के घर जाकर पता तो लगाओ।''

साधुचरण ने जाकर पता लगाया और वापस आकर कहा, ''वे घर में नहीं हैं। बाली-उत्तरपाड़ा में गंगा-किनारे एक बगीचा लिया है, वहां गए हैं।''

अन्नपूर्णा ने फिर नवीन डाक्टर को बुलवाकर उनसे बीमार की सब हालत पूछी। डाक्टर ने कहा,''दिल की कमज़ोरी के साथ जलोदर भी हो गया है। अचानक कब क्या हो जाए, कुछ कहा नहीं जा सकता।''

शाम के बाद राजलक्ष्मी की तकलीफ जब बहुत बढ़ने लगी, तब अन्नपूर्णा ने उनसे कहा, ''जीजी, एक बार डाक्टर को बुलवा लिया जाए, तो अच्छा रहे।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''नहीं, मंझली बहू, डाक्टर से मेरा कुछ नहीं होने का।''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''तो तुम किसे बुलाना चाहती हो, बताओ!''

राजलक्ष्मी न कहा, ''बिहारी को एक बार खबर पहुंचा दो, तो अच्छा हो।''

अन्नपूर्णा के हृदय को बड़ी गहरी चोट पहुंची। उस दिन दूर-परदेस में बिहारी को उन्होंने रात के अंधेरे में घर के दरवाज़े से ही अपमान करके विदा कर दिया था, उस कसक को वे आज तक भूल नहीं सकी हैं। बिहारी अब कभी भी उनके दरवाज़े पर नहीं आएगा। इस जीवन में बिहारी के उस अनादर का अब वे कभी भी बदला चुका सकेंगी, इसकी कोई आशा ही नहीं थी।

अन्नपूर्णा एक बार ऊपर गई महेन्द्र के कमरे में। घर-भर में यह कमरा ही एक दिन आनन्द मनाने की कुटी थी। आज उस कमरे में कोई सौन्दर्य नहीं। सारा सामान बिखरा पड़ा हुआ है, साज-सज्जा बेढंकी हो रही है। छत के गमलों में कोई पानी तक नहीं देता. पौधे सब सूख गए हैं।

मौसी छत पर गई हैं, यह मालूम होते ही आशा भी धीरे-धीरे ऊपर पहुंच गई। अन्नपूर्णा ने उसे छाती से लगा लिया और उसका माथा चूमा। आशा दोनों हाथों से उनके पांव पकड़कर बार-बार उनपर अपना सिर छुआने लगी। कहने लगी, "मौसी, मुझे आशीर्वाद दो, मुझे शक्ति दो। आदमी इतना कष्ट सह सकता है, इसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मैया री, इस तरह अब और कितने दिन सहती रहूंगी!"

अन्नपूर्णा वहीं ज़मीन पर बैठ गईं, आशा उनके पैरों के पास सिर रखकर लोट गई। अन्नपूर्णा ने उसका सिर अपनी गोद में उठा लिया और मुंह से कोई बात न कहकर वे खामोश भाव से हाथ जोड़कर भगवान का स्मरण करने लगीं।

अन्नपूर्णा के स्नेह टंके मौन आशीर्वाद ने आशा के गंभीर दिल में प्रवेश करके बहुत दिन बाद उसमें शान्ति ला दी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसका चाहा हुआ अब मिलने वाला ही है। देवता उस जैसी मूर्ख की अवहेलना कर सकते हैं, किन्तु मौसी की प्रार्थना को नहीं ठुकरा सकते।

इस तरह आशा अपने दिल में भरोसा और बल पाकर बहुत देर बाद एक लम्बी सांस छोड़कर उठके बैठ गई और बोली, "मौसी, बिहारी लालाजी को एक चिट्ठी लिखकर बुला लो तो अच्छा हो।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "नहीं, चिट्ठी लिखने से काम नहीं चलेगा।"

आशा ने कहा, "तो फिर उन्हें खबर कैसे दोगी?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "कल मैं ही खुद बिहारी से मिलने के लिए जाऊंगी।"

४७

बिहारी जब पश्चिम में घूम रहा था, तब वह अनुभव करने लगा था कि किसी एक काम में बिना लगे उसे शान्ति नहीं मिल सकती। यही सोचकर उसने कलकत्ते के गरीब क्लर्कों की चिकित्सा और सेवा का भार अपने ऊपर लिया है।

कलकत्ते के उस पार बाली-उत्तरपाड़ा में गंगा के किनारे उसने एक बगीचा लेकर चीनी बढ़इयों से उसमें छोटे-छोटे सुन्दर झोंपड़े बनवाना शुरू कर दिया, किन्तु उसका मन शान्त नहीं हुआ। काम में जुटने के दिन ज्यों-ज्यों निकट आने लगे, त्यों-त्यों उसका मन अपने संकल्प से टूटने लगा। उसका मन बार-बार यही कहने लगा कि 'इस काम में कोई सुख नहीं, कोई रस नहीं, कोई सौन्दर्य नहीं, यह केवल सूखा बोझ भर है।' काम की कल्पना ने बिहारी को इसके पहले कभीभी इस तरह दुख नहीं दिया। एक दिन था, जब बिहारी को खास किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं थी। उसके सामने जो भी कुछ आता था, उसमें वह अनायास ही अपने को लगा सकता

था। अब उसके मन में कैसी तो एक भूख सी पैदा हो गई है, पहले उसे मिटाए बिना उसका और किसी बात में मन नहीं लग रहा है। पहले की आदत के कारण वह काम छेड़ता ज़रूर है, पर दूसरे ही क्षण सब छोड़-छाड़कर छुटकारा पाना चाहता है।

बिहारी के भीतर जो यौवन चुपचाप सोया हुआ था, जिसके बारे में उसने कभी कुछ सोचा तक नहीं, विनोदिनी की 'जादू की लकड़ी' के स्पर्श से आज वह जाग उठा है और तुरत पैदा हुए गरुड़ की तरह वह अपनी खुराक के लिए सारी दुनिया छाने डाल रहा है। इस भूखे प्राणी के साथ बिहारी का पहले कोई परिचय नहीं था, किन्तु अब उसके मारे वह हैरान-परेशान है। अब वह कलकत्ते के थेक-टूटे कम उम्र क्लर्कों को लेकर क्या करेगा?

आषाढ़ की गंगा सामने से बही चली जा रही है। गंगा के उस पार नीले बादलों की घनघोर घटा घने वृक्षों के ऊपर भार से झुकी आ रही है। सारा नदी-तल फौलाद की तलवार की तरह कहीं चमकता काला रंग धारण किए हुए है, तो कहीं आग की तरह चमक-चमक उठता है। नयी वर्षा के इस समारोह पर ज्योंही बिहारी की नज़र पड़ती है, त्योंही उसके दिल का दरवाज़ा खोलकर आकाश के इस नीले ठंडे प्रकाश में न जाने कौन तो अकेली निकल आती है! न जाने कौन अपने नहाए हुए बादलों से लहराते बाल खोलकर सामने आ खड़ी होती है और वर्षा आकाश से चूर हुए बादलों में से बिछड़ी बिखरी हुई सारी सूरज की किरणों को बटोरकर न जाने कौन एकमात्र उसीके मुंह पर एकटक दृष्टि की चमक से डरी प्रार्थना-सी फैला जाती है!

पहले जो जीवन उसका सुख-संतोष से बीता है, आज उसे वह गहरा नुकसान समझ रहा है। ऐसी कितनी ही बादल छाई शामें और कितनी ही पूर्णिमा की रातें बिहारी के जीवन में आई हैं और वे उसके खाली दिल के दरवाजे के पास आकर सुधापात्र हाथ में लिए हुए चुपचाप लौट गई हैं। उस दुर्लभ शुभ घड़ी में कितने संगीत शुरू हुए बिना और कितने उत्सव पूर्ण हुए बिना रह गाए हैं, उनका कोई ठींक है! बिहारी के मन में जो पुरानी यादें थीं, विनोदिनी उस दिन के प्रस्तुत चुम्बन की लाल आभा से उन्हें आज ऐसी फीकी और ऐसी छोटी कर गई! महेन्द्र की छाया के रूप मे उसके जीवन के अधिकांश दिन कैसे कट गए थे, उनमें क्या चरितार्थता थी? प्रेम की पीड़ा में समूचे जल-थल-आकाश के केन्द्र कण्ठ से ऐसी रागिनी, ऐसी वंशी बजती है, इसका तो खोया हुआ बिहारी पहले कभी अंदाज़ा भी न कर सका था। जिस विनोदिनी ने दोनों बाहुओं में लपेट कर क्षण-भर में अचानक उसे ऐसे अनोखे सौन्दर्य-लोक में पहुंचा दिया है, उसे वह अब कैसे भूलेगा? विनोदिनी की वह नज़र और उसकी वह इच्छा आज जो उसके चारों तरफ फैल चुकी है। विनोदिनी की उन बेचैन घनी सांसों ने बिहारी के रक्त के सोते को आज तो तरंगित कर रखा है और उसके ---र्न की कोमल तपिश ने बिहारी के पुलक से भरे दिल को आज जो फूल की तरह खिला

रखा है, उसे अब वह कैसे भूलेगा? किंतु फिर भी उस विनोदिनी से बिहारी आज इतना दूर क्यो है? इसका कारण यह है कि विनोदिनी ने जिस सौन्दर्य-रस से बिहारी को सींच दिया है, संसार में विनोदिनी के साथ उस सौन्दर्य के योग्य किसी सम्बन्ध की वह कल्पना नहीं कर सकता। कमल को उसके जन्म देने वाले तालाब से अलग करने में उसके साथ थोड़ा कीचड़ भी निकल आता है। किस तरह उसे वह ऐसी जगह स्थापित कर सकता है, जहां सुन्दर भयावह न हो उठे? इसके सिवा, महेन्द्र से कहीं अगर छीना-झपटी हो गई, तो सारा कुछ ऐसा बुरा आकार ओढ़ लेगा कि उसकी सम्भावना को भी बिहारी अपने मन में स्थान नहीं दे सकता। इसीलिए बिहारी एकान्त निभृत गंगा-तट पर विश्व संगीत के बीच में अपनी मानस प्रतिमा को प्रतिष्ठित करके अपने दिल को धूप की तरह जला रहा है। इसलिए वह चिट्ठी लिखकर विनोदिनी की कोई खबर-सुध नहीं ले रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई ऐसा समाचार मिले जिससे उसका सुख-सपनों का जाल बुरी तरह बिखर जाए।

बादल छाए सवेरे में बिहारी अपने बगीचे के दक्षिण की तरफ फल से भरे जामुन के पेड़ के नीचे पड़ा-पड़ा अलस भाव से गंगा की नावों का जाना-आना देख रहा था। धीरे-धीरे दिन चढ़ने लगा। नौकर ने आकर रसोई के बारे में पूछा तो बिहारी ने कह दिया, "अभी रहने दो।" मिस्तिरियों के सरदार ने आकार कुछ खास सलाह के लिए उसे काम देखने के लिए ले जाना चाहा, तो उसने कह दिया, "अभी नहीं, थोड़ी देर बाद।"

इतनें में बिहारी सहसा चौंक उठा, देखा कि सामने अन्नपूर्णा खड़ी हैं। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और दोनों हाथों से अन्नपूर्णा के पांव पकड़कर ज़मीन से मस्तक लगाकर बहुत देर तक उन्हें प्रणाम करता रहा। अन्नपूर्णा गहरे स्नेह के साथ उसके माथे और पीठ पर अपना दाहिना हाथ फेरती रहीं, और फिर आंसुओं से भरे स्वर में बोलीं, "बेटा बिहारी, तू इतना दुबला कैसे हो गया?"

बिहारी ने कहा, "फिर से अपनी चाची का स्नेह पाने के लिए, चाची!" सुनकर अन्नपूर्णा की आंखों से झरझर आंसू झरने लगे।

बिहारी ने चंचल होकर कहा, "चाची, तुमने अभी खाया-पिया नहीं होगा?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "नहीं, अभी मेरा समय नहीं हुआ।"

बिहारी ने कहा, "चलो, मैं चलकर रसोई की तैयारी कर दूं। आज बहुत दिन बाद मैं तुम्हारे हाथ की रसोई और तुम्हारी थाली का प्रसाद पाऊंगा।"

महेन्द्र और आशा के सम्बन्ध में बिहारी ने कोई बात ही नहीं छेड़ी। अन्नपूर्णा ने एक दिन अपने हाथ से बिहारी के लिए उधर का दरवाज़ा बन्द कर दिया था। अभिमान के साथ बिहारी ने उस सख्त निषेध का पालन किया है।

भोजन करने के बाद अन्नपूर्णा ने कहा, "नाव घाट में लगी हुई है, तुझे एक बार कलकत्ता चलना पड़ेगा।"

बिहारी ने कहा, ''कलकत्ते में मेरा क्या काम है, चाची?''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''जीजी बहुत बीमार हैं, तुझे देखना चाहती हैं।''

सुनकर बिहारी चकित हो उठा। बोला, ''महेन भइया कहां हैं?''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''वह कलकत्ते में नहीं है. पश्चिम की तरफ घूमने गया है।''

सुनते ही बिहारी का चेहरा फक् पड़ गया, वह चुप रहा, कुछ बोला नहीं। अन्नपूर्णा ने पूछा, ''तुझे क्या सब बातें मालूम नहीं?''

बिहारी ने कहा, ''कुछ-कुछ तो मालूम हैं; पर अन्त में क्या हुआ सो मुझे नहीं मालूम।''

तब अन्नपूर्णा ने विनोदिनी को लेकर महेन्द्र के पश्चिम भाग जाने की बात बता दी। बिहारी की नजर में उसी क्षण जल-थल-आकाश का सारा रंग ही बदल गया। उसके कल्पना-भंडार में इकट्ठा सारा रस क्षण-मात्र में कड़वा हो उठा। 'तो क्या जादूगरनी विनोदिनी उस दिन की शाम मेरे साथ महज़ एक खेल खेल गई! उसका वह प्रेम भरा आत्मसमर्पण महज़ एक छल था! वह अपना गांव छोड़कर बेशर्म भाव से महेन्द्र के साथ अकेली पश्चिम भाग गई। धिक्कार है उसे और धिक्कार है मुझे। मैं मूर्ख हूं, जो एक क्षण के लिए भी मैंने उसका विशवास किया।'

४८

बिहारी सोच रहा था, दु:खिनी आशा के मुंह की तरफ वह देखेगा कैसे? ड्योढ़ी के भीतर जब वह घुसा तो नाथहीन घर के बेशर्म घने हो आए दुख ने उसे उसी क्षण घेर लिया। घर के दरबान और नौकर-चाकरों के मुंह की तरफ देखकर अपने लापता पागल मित्र के लिए शर्म से उसका सिर झुक गया। परिचित नौकरों से वह पहले की तरह शीतल भाव से कुशल तक न पूछ सका और घर के भीतर घुसते समय उससे पांव उठाए नहीं उठे। सारे संसार के सामने असहाय आशा को महेन्द्र जाहिर तौर से जिस दारुण अपमान में झोंककर चला गया है, जो अपमान नारी के चरमतम पर्दे को चुरा कर उसे समूचे संसार के कुतूहल से भरे कृपादृष्टि-वर्षण के बीच खड़ा कर देता है, उस अपमान के स्पष्ट उघड़ेपन में बिहारी कुण्ठित-व्यथित आशा को देखेगा कैसे?

किन्तु इन सब बातों के सोचने-विचारने और संकोच करने का अब अवसर नहीं रहा। बिहारी के घर के भीतर प्रवेश करते ही आशा ने बड़ी तेज़ी से आकर उससे कहा, ''लालाजी, जल्दी आओ, जल्दी से चलकर मां को देखो, उन्हें बड़ी तकलीफ हो रही है।''

बिहारी के साथ आशा की प्रकट रूप से यही पहली बातचीत है। दु:ख के दिनों में

आंधी का सिर्फ एक ही मामूली-सा झोंका सारी रुकावटों को उड़ा ले जाता है, दूर-दूर रहने वालों को सहसा आने वाली बाढ़ एक सकड़ी नाव में इकट्ठा कर देती है।

बिहारी राजलक्ष्मी के कमरे में पहुंचा। राजलक्ष्मी अचानक श्वास-कष्ट के मारे अत्यन्त बेचैन हो उठी थीं, अब तकलीफ कुछ घट जाने से ज़रा जी में जी आया है। बिहारी ने प्रणाम करके उनके चरणों की धूल माथे से लगाई और उनका इशारा पाकर वह उनके पास बैठ गया। राजलक्ष्मी ने कहा, ''तू है तो अच्छी तरह? बहुत दिनों से मैंने तुझे देखा नहीं।''

बिहारी ने कहा, ''अपनी बीमारी की तुमने मुझे खबर क्यों नहीं दी, मां? फिर क्या मैं एक क्षण की भी देर कर सकता था?''

राजलक्ष्मी ने मीठे स्वर में कहा, ''सो क्या मैं नहीं जानती बेटा? तुझे सिर्फ अपने गर्भ में ही नहीं रखा, बाकी, तुझसे बढ़कर दुनिया में अपना मेरा कौन है बता!'' कहते-कहते उनकी आंखों से आंसू गिरने लगे।

बिहारी चट से उठकर आले में रखी हुई दवा की शीशियां वगैरह देखने के बहाने अपने को सम्हालने की कोशिश करने लगा। लौटकर जब वह राजलक्ष्मी की नाड़ी देखने लगा, तो उन्होंने कहा, ''मेरी नाड़ी तो रहने दे, तू अपनी नाड़ी का हाल बता। इतना दुबला कैसे हो गया?'' इतना कहकर राजलक्ष्मी अपना दुबला कमज़ोर हाथ उठाकर बिहारी के गले में फेरकर उसकी कमज़ोरी की परीक्षा करने लगीं।

बिहारी ने कहा, ''तुम्हारे हाथ का मछली का झोर बगैर खाए मेरी ये हड्डियां हरगिज़ नहीं भर सकतीं, मां! तुम जल्दी से अच्छी हो जाओ, मां, मैं तब तक रसोई की तैयारी कर रखूंगा।''

राजलक्ष्मी फीकी हंसी हंसकर कहने लगीं, ''हां, अब जल्दी तैयारी कर, बेटा, पर रसोई की नहीं।'' कहते हुए उन्होंने बिहारी का हाथ दबा लिया और कहा, ''बेटा, अब तू बहू ले आ। तेरी सम्हाल करने वाला कोई नहीं है। ओ मझली बहू, अब की तुम बिहारी का ब्याह करा दो। देखो न, लड़के की कैसी तो शकल हो गई है!''

अन्नपूर्णा ने कहा, ''तुम जल्दी से अच्छी हो जाओ, जीजी! यह तुम्हारा ही काम है। तुम्हीं सब करोगी-धरोगी। हम सब तो उसमें शामिल होकर खुशियां मनाएंगी।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''मुझे अब समय नहीं मिलने का, मझली बहू, बिहारी का भार तुम्हीं पर रहा। इसे सुखी बना देना। मैं इसका ऋण नहीं चुका सकी, पर भगवान इसका भला करेंगे।'' यह कहते हुए उन्होने अपना हाथ बिहारी के सिर पर फेर दिया।

आशा से अब रहा न गया, वह रोने के लिए बाहर चली गई। अन्नपूर्णा आंसुओं के भीतर से बिहारी के चेहरे की तरफ स्नेह भरी नज़र से देखने लगीं।

राजलक्ष्मी को सहसा किसी बात की याद हो आई, उन्होंने पुकारा, "बहू, ओ बहू!" और आशा के भीतर आते ही उससे कहा, "बहू, बिहारी के लिए तुमने खाने-पीने का इन्तजाम कर लिया?"

बिहारी ने कहा, "मां, तुम्हारे इस पेटू लड़के को अब सब पहचान गए हैं। ड्योढ़ी में घुसते ही मैंने देखा कि बामी दासी बड़ी-बड़ी अण्डे-वाली कवई मछलियां लिए रसोई की तरफ दौड़ी जा रही है। मैं समझ गया कि इस घर में अभी तक मेरी ख्याति मिटी नहीं है।" इतना कहकर वह हंसत हुआ आशा की तरफ देखने लगा।

आशा आज शरमाई नहीं। बिहारी की हंसी भरी बात को उसने स्नेह के साथ मुस्कराते हुए ग्रहण किया। बिहारी इस घर का कितना अपना है, आशा इस बात को पहले जानती ही नहीं थी। कितनी ही बार उसने बिहारी को बेकार का आने वाला समझकर उसका अनादर किया है और कितनी ही बार अपने व्यवहार से बिहारी के प्रति साफ-साफ बेरुखी प्रकट की है। आज उन सब गलतियों के लिए पछतावे के अधिकार से आशा की श्रद्धा और करुणा बिहारी की तरफ ज़ोरों से दौड़ने लगी।

राजलक्ष्मी ने कहा, "मझली बहू, महाराज के भरोसे रसोई का काम मत छोड़ देना, आज की रसोई तुम अपनी देखरेख में कराना। देखना, आज बिहारी के मन की सब चीज़ें बननी चाहिए। हमारा लड़का पूर्व बंगाल का है, चटपटे मिर्च-मसाले का पूरा ध्यान रखना!"

बिहारी ने कहा, "मां, तुम्हारी मां तो थीं विक्रमपुर की, तुम नदिया ज़िले के शरीफ खानदान के लड़के को पूर्व बंगाल का कैसे कह रही हो! यह तो मुझसे नहीं सहा जाएगा।"

इस बात को लेकर बहुत देर तक मज़ाक होता रहा और बहुत दिन बाद महेन्द्र के घर का दुख का भार मानो आज हलका हो गया।

किन्तु बातचीत में किसी तरफ से किसी ने महेन्द्र का नाम नहीं लिया। पहले राजलक्ष्मी की बिहारी के साथ महेन्द्र की ही बातें हुआ करती थीं और इस बात को लेकर खुद महेन्द्र ने मां की कितनी ही बार हंसी उड़ाई है, किन्तु आज उन्हीं राजलक्ष्मी के मुंह से महेन्द्र का नाम एक बार भी न सुनकर बिहारी भीतर ही भीतर भौंचक्का रह गया।

राजलक्ष्मी की ज़रा आंख झपकते ही बिहारी ने बाहर आकर अन्नपूर्णा से कहा, "मां की बीमारी तो सहज नहीं मालूम होती, चाची!"

अन्नपूर्णा ने कहा, "सो तो दीख ही रहा है।" इतना कहकर वे जंगले के पास बैठ गईं और फिर बहुत देर तक चुप रहकर बोलीं, "एक बार तू किसी तरह महेन्द्र को नहीं बुला सकेगा? अब तो देर करना उचित नहीं, बेटा!"

बिहारी कुछ देर निरुत्तर रहकर बोला, "तुम जैसी आज्ञा दोगी, मैं वैसा ही

करूंगा। उनका पता-ठिकाना किसी को मालूम है?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "ठीक पता तो किसी को नहीं मालूम, पता लगाना पड़ेगा। हां एक बात तुझसे और कहती हूं, बिहारी, तू ज़रा आशा के मुंह की तरफ देख। देखते ही समझ जाएगा, उसकी छाती में कैसा मौत देने वाला तीर चुभा हुआ है।"

बिहारी मन ही मन ताज़ा हंसी हंसकर सोचने लगा, 'दूसरों का उद्धार करने तो मै जाऊंगा, भगवान्, पर मेरा उद्धार कौन करेगा?' उसने कहा, "विनोदिनी के आकर्षण से हमेशा उन्हें बचाए रखूं, ऐसा मन्त्र क्या मैं जानता हूं, चाची? मां की बीमारी में वे दो दिन के लिए शान्त होकर रह सकते हैं, किन्तु फिर वे उस तरफ नहीं मुड़ेंगे, यह कौन कह सकता है!"

इतने में मैले कपड़ों में आशा आधा घूंघट काढ़े धीरे से आई और अपनी मौसी के पैरों के पास बैठ गई। वह जानती थी कि इन दोनों में राजलक्ष्मी की बीमारी के बारे में बातचीत हो रही होगी, इसलिए वह उत्सुकता के साथ सुनने चली आई। पतिव्रता आशा के चेहरे पर खामोश दुःख की सूनी झलक देखकर बिहारी के मन में एक अनोखा भक्ति का संचार हुआ।

बिहारी ने राजलक्ष्मी के खाने और दवा के बारे में आशा के साथ बातचीत करके जब उसे विदा किया, तब एक लम्बी सांस छोड़ते हुए अन्नपूर्णा से कहा, "महेन्द्र का मैं उद्धार करूंगा ही।"

इसके बाद उसने बैंक में जाकर पता लगा लिया कि कुछ दिनों से महेन्द्र का लेन-देन इलाहाबाद ब्रांच से चालू हुआ है।

४९

हावड़ा स्टेशन पर विनोदिनी अपनी इच्छा से इण्टर क्लास के ज़नाने डिब्बे में बैठ गई। महेन्द्र ने कहा, "यह क्या कर रही हो? मैंने तुम्हारे लिए सेकण्ड क्लास का टिकट लिया है।"

विनोदिनी ने कहा, "ज़रूरत क्या है सेकण्ड क्लास की? मुझे यहीं ज्यादा आराम रहेगा।"

महेन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। विनोदिनी स्वभाव से ही शौकीन थी। पहले ग़रीबी का कोई लक्षण ही उसे अच्छा नहीं लगता था। अपनी सांसारिक दीनता को वह अपमानजनक ही समझती थी।

महेन्द्र समझता था कि उसके घर के अमीरी चाल-चलन, विलास के सामान और समाज में धनाढ्य के रूप में ख्याति के गौरव ने ही किसी समय विनोदिनी का मन उसकी ओर आकर्षित किया था और इस कल्पना ने उसके मन को बेहद उत्तेजित

कर दिया था कि वह महसा ही उस धन-सम्पदा की. सब तरह के आराम और गौरव की मालिक हो सकती है, किन्तु आज जब उसका महेन्द्र पर प्रभुत्व प्राप्त करने का समय आया बिना मांगे ही जब वह महेन्द्र की सारी धन-सम्पदा अपने इस्तेमाल में ला सकती थी, तब क्यों वह ऐसी असहाय उपेक्षा के साथ बेहद अक्खड़ भाव से तकलीफ और शर्म पहुंचाने वाली गरीबी स्वीकार किए ले रही है?

महेन्द्र के प्रति अपनी निर्भरता को विनोदिनी यथासम्भव कम किए रखना चाहती है। जिस पगलाए महेन्द्र ने विनोदिनी को उसके स्वाभाविक आश्रय-स्थल से हमेशा के लिए अलग कर दिया है. उस महेन्द्र के हाथ से वह ऐसा कुछ भी नहीं चाहती जो उसके सर्वनाश के मूल्यस्वरूप गिना जा सके।

विनोदिनी जब महेन्द्र के घर में थी तब उसके व्यवहार में वैधव्य-व्रत की कठोरता विशेष कुछ नहीं थी, किन्तु इतने दिन बाद वह अपने को सब प्रकार के भोगों से अलग कर रही है। अब वह एक वक्त खाती है. मोटे कपड़े पहनती है और उसका वह बेकार का हंसी मज़ाक अब कहां चला गया? अब तो वह ऐसी खामोश, ऐसी ढकी हुई ऐसी दूर और ऐसी भीषण हो उठी है कि महेन्द्र को उससे एक साधारण सी बात भी ज़ोर से करने की हिम्मत नहीं पड़ती। महेन्द्र चकित होकर, क्रुद्ध होकर बार-बार यही सोचने लगा कि 'विनोदिनी ने पहले तो मुझे इतनी कोशिश से दुर्लभ फल की तरह इतनी ऊंची डाली से तोड़ लिया और अब वह उसे बिना सूंघे ही इस तरह दूर फेंक दे रही है, इसका कारण क्या है?'

महेन्द्र ने पूछा, "तो अब कहां का टिकट करवाऊं, बताओ?"

विनोदिनी ने कहा, "पश्चिम की तरफ जहां खुशी हो चलो। कल सवेरे जहां गाड़ी ठहरेगी, वहीं उतर जाना है।"

इस तरह का घूमना महेन्द्र के लिए अच्छा नहीं हो सकता। आराम में खलल पड़ना उसके लिए कष्टदायक है। बड़े शहर में अच्छी जगह न रहना उसके लिए एक मुसीबत है। वह देख-भालकर तलाश करके ठीक इन्तज़ाम करने वाला आदमी ही नहीं। इसलिए वह बड़े गुस्सैल अनमने मन से गाड़ी में सवार हुआ, फिर थोड़ी देर बाद बार-बार उसे भय होने लगा कि विनोदिनी उससे बगैर कहे-सुने ही कहीं बीच में ही न उतर पड़े।

विनोदिनी इसी प्रकार शनि ग्रह की तरह खुद घूमने लगी और साथ-साथ महेन्द्र को भी घुमाने लगी। कहीं भी महेन्द्र को ज़रा आराम नहीं करने देती। विनोदिनी में एक खास गुण यह था कि वह बहुत जल्दी लोगों से हिल-मिल सकती है, इसलिए जल्दी ही वह गाड़ी की सहयात्रिनियों से मेल-जोल कर लेती थी। जहां जाने की उसकी इच्छा होती, वहां के सब हालचाल वह पहले से ही जान लेती थी। यात्रीशाला में ठहरती और जहां जो कुछ देखने का होता, देख लिया करती। इस

तरह महेन्द्र विनोदिनी के लिए अपनी आवश्यकता देखकर प्रतिदिन अपने को मरे हुए महसूस करने लगा। टिकट खरीद देने के सिवा उसका और कोई काम ही न था। बाकी समय में उसकी आदत उसके डंक मारा करती और वह अपनी आदत को। शुरू-शुरू में कुछ दिनों तक वह विनोदिनी के साथ-साथ रास्ते-रास्ते घूमता रहा था, किन्तु बाद में धीरे-धीरे उसके लिए असह्य हो उठा। अब तो वह खा-पीकर सोने की कोशिश किया करता है और विनोदिनी दिन-भर घूमा करती है। इसके पहले इस बात की कभी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि मां का लाड़ला महेन्द्र किसी दिन इस तरह इधर से उधर मारा मारा फिरा करेगा।

एक दिन इलाहाबाद स्टेशन पर दोनों जने गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। किसी आकस्मिक कारण से गाड़ी आने में देर हो रही थी। इस बीच में विनोदिनी और-और गाड़ियों के यात्रियों को घूम-फिरकर देख रही थी। पश्चिम में घूमते-घूमते और चारों तरफ देखते-देखते अचानक कहीं कोई दिखाई दे जाएगा शायद यही उसे आशा थी। कम से कम बन्द गली में लोगों से खाली घर में निश्चल प्रयत्न से अपने को प्रतिदिन दबाकर मारने की अपेक्षा इस रोज की खोज-बीन की आदत में, इस खुले मार्ग के जन-कोलाहल में, अधिक शान्ति है।

अचानक स्टेशन की एक कांच की ढक्कनदार सूचना-पेटिका पर दृष्टि पड़ते ही विनोदिनी चौंक पड़ी। डाकखाने की उस पेटी में, जिन लोगों का ठीक पता नही चलता, उनके पत्र प्रदर्शित किए जाते हैं। विनोदिनी ने देखा कि उसमें एक पत्र बिहारी के नाम का भी है। 'बिहारीलाल' नाम कोई असाधारण नहीं और उस पत्र का बिहारी विनोदिनी का अपना बिहारी ही हो ऐसा समझने का कोई कारण नहीं था, फिर भी, बिहारी का पूरा नाम देखकर उसके मन में अपने एकमात्र बिहारी के सिवा और किसी का सन्देह ही नहीं हुआ। पत्र पर लिखे हुए पते को उसने याद कर लिया और फिर जिस बेंच पर महेन्द्र बेहद मुरझाए चेहरे से बैठा था उसपर जाकर बैठ गई और उससे बोली, "मैं तो कुछ दिन इलाहाबाद में ही रहूंगी।"

विनोदिनी महेन्द्र को अपनी इच्छा के अनुसार चला रही है, किन्तु उसके भूखे-प्यासे दिल को ज़रा भी खुराक नही दे रही, इसी से महेन्द्र का पौरुषाभिमान प्रतिदिन घायल हो-होकर उसके दिल में विद्रोह पैदा कर रहा था। इलाहाबाद में कुछ दिन रहकर ज़रा आराम कर ले तो वह जी जाए, किन्तु इच्छा के अनुकूल होने पर भी विनोदिनी की खामखयाली पर राय देने में सहसा उसका मन विद्रोही हो उठा। उसने कुछ गुस्से से कहा, "जब चलने के लिए निकल ही पड़े हैं, तब चलेंगे ही, रुकेंगे नहीं।"

विनोदिनी ने कहा, "मैं नहीं जाऊंगी।"

महेन्द्र ने कहा, "तो तुम अकेली रहो, मैं जाता हूं।"

विनोदिनी ने कहा, "अच्छी बात है।" और उसी वक्त इशारे से कुली बुलाकर अपने सामान के साथ वह स्टेशन से बाहर चल दी।

महेन्द्र अपने पुरुष के धर्म अधिकार को लिए बेंच पर बैठा रहा। जब तक विनोदिनी दीखती रही, तब तक वह स्थिर होकर बैठा रहा। विनोदिनी ने जब एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा और सीधी बाहर निकल गई, तब वह जल्दी से कुलियों के सर पर अपना सामान लादकर लपकता हुआ उसके पीछे-पीछे चल दिया।

बाहर जाकर उसने देखा, विनोदिनी एक घोड़ा-गाड़ी में बैठ चुकी है। महेन्द्र मुंह से कुछ बोला नहीं, गाड़ी की छत पर अपना सामान रखवाकर खुद कोच-बक्स पर बैठ गया। अपने अहंकार को छोटा करके गाड़ी के भीतर विनोदिनी के सामने बैठने लायक उसका मुंह ही नहीं रहा।

किन्तु गाड़ी तो चलती ही चली आ रही है।! करीब एक घण्टा हो चुका। धीरे-धीरे शहर की बस्ती छूट गई, और चारों तरफ खेत दिखाई देने लगे। कोचवान से कुछ पूछने में महेन्द्र को शर्म मालूम होने लगी। कारण, इससे वह समझ जाएगा कि भीतर जो मालकिन बैठी है, उसने इस अनावश्यक पुरुष से इतनी भी सलाह नहीं की कि कहां जाना है। महेन्द्र अपने रूठे अभिमान को भीतर ही भीतर हज़म करके चुपचाप कोच-बक्स पर बैठा रहा।

गाड़ी सुनसान यमुना के किनारे एक शानदार बगीचे के भीतर जाकर ठहरी। महेन्द्र आश्चर्य से दंग रह गया। सोचने लगा, 'यह किसका बगीचा है, इस बगीचे का ठिकाना विनोदिनी को कैसे मालूम हुआ?'

बगीचे के भीतर का मकान बन्द था। कई बार पुकारने के बाद एक बूढ़ा दरबान बाहर निकल गया। विनोदिनी के प्रश्न के उत्तर देते हुए उसने कहा, "बगीचे के मालिक यहां के बड़े रईसों में से हैं। उनका मकान यहां से बहुत ज्यादा दूर नहीं है। आप लोग उनकी मंजूरी ले आइए, फिर आप शौक से यहां रह सकते हैं।"

विनोदिनी महेन्द्र के मुंह की तरफ देखने लगी। महेन्द्र का मन इस मनोहर स्थान को देखकर मुग्ध और लोभी हो रहा था। लम्बे समय के बाद कुछ दिन स्थिति की सम्भावना देखकर वह खुश हो उठा। विनोदिनी से बोला, "तो चलो, वहीं चलें। तुम बाहर गाड़ी में बैठी रहना, मैं भीतर जाकर किराया वगैरह तय करके रहने की मंजूरी ले आऊंगा।"

विनोदिनी ने कहा, "मुझसे अब घूमा नहीं जाएगा। तुम जाओ, तब तक मैं यहां आराम करूं। डरने की कोई बात नहीं।"

महेन्द्र गाड़ी लेकर चला गया। विनोदिनी उस बूढ़े ब्राह्मण दरबान को अपने पास

बुलाकर उससे बाल-बच्चों के बारे में पूछ-ताछ करने लगी। बात करते-करते जब उससे सुना कि उसकी स्त्री भी मर चुकी है तब वह यह कहकर सहानुभूति प्रकट करने लगी कि ''अरे रे, तब तो तुम्हें बड़ी भारी तकलीफ होती रहेगी। बोलो भला, इस उम्र में तुम अकेले रह गए! तुम्हारी देख-भाल करने वाला कोई भी नहीं!'' इसके बाद बातचीत के सिलसिले में विनोदिनी ने पूछा, ''बिहारी बाबू यहां रहते थे न?''

बूढ़े ने कहा, ''हां, कुछ दिन रहे तो थे यहां। तो आप उन्हें जानती हैं क्या?''

विनोदिनी ने कहा, ''मेरे तो वे रिश्तेदार हैं।''

विनोदिनी को दरबान के मुंह से बिहारी का जो कुछ विवरण और वर्णन मालूम हुआ, उससे उसके मन में कोई संदेह नहीं रहा कि वह उसी का बिहारी है। उसने बूढ़े से कहकर वे कमरे खुलवाकर देखे, जिनमें बिहारी सोता था और बैठता था। बिहारी के चले जाने के बाद से वे कमरे बन्द पड़े थे, इससे उसे ऐसा लगने लगा कि मानो न दिखाई पड़ने वाले बिहारी का चलना-फिरना अब भी उन कमरों में जमा हुआ है, हवा उसे अभी भी उड़ाकर ले नहीं जा सकी है। विनोदिनी ने घ्राण से उसे सूंघकर अपना हृदय भर लिया, स्तब्ध हवा के स्पर्श से अपने सर्वांग को पुलकित कर लिया, किन्तु बिहारी कहां गया है, इसका पता वह नहीं लगा सकी। हो सकता है कि वह फिर यहां आवे, किन्तु स्पष्ट कुछ नहीं जान सकी। दरबान ने यह आश्वासन दिया कि वह अपने मालिक से पूछकर बताएगा।

इतने में पेशगी किराया देकर और रहने की मंजूरी लेकर महेन्द्र वापस आ गया।

५०

हिमालय शिखर जिस यमुना को कभी खत्म न होने वाली बर्फ की बहती हुई जल-धारा दे रहा है और युग-युग के कवियों ने मिलकर जिस यमुना में कवित्व का झरना बहाया है, वह कभी खत्म न होने वाला हमेशा रहने वाला है। इसकी कल-ध्वनि में न जाने कितने विचित्र छन्द गूंज रहे हैं और इसकी लहरों के खेल में न जाने कितने युगों का खुशी से कांपना भावावेग डोल रहा है, कौन कह सकता है!

शाम के झुटपुटे में महेन्द्र उस यमुना के तट पर आकर जब बैठा, तब घने प्रेम के आवेश ने उसकी दृष्टि में, उसकी सांस में, उसकी नसों, उसकी हड्डियों में गहरा मोह-रस का प्रवाह फैला दिया। आकाश में सूर्यास्त किरणों की स्वर्ण-वीणा पीड़ा की मदहोशी में एक कभी न सुने गए संगीत में झंकार कर उठी।

दूर तक फैले हुए सूने बालू-तट पर विचित्र रंगों की छटा में दिन धीरे-धीरे समाप्त हो गया। महेन्द्र मानो काव्य-लोक में पहुंच गया और अर्ध-मुंदे नेत्रों से वृन्दावन के गोधूलि-जाल में अपने-अपने घर को लौटने वाली गायों का रंभाना

सुनने लगा।

वर्षा के बादलों से आकाश छा गया। अपरिचित स्थान का अंधेरा केवल काले रंग का पर्दा ही नहीं होता, किन्तु विचित्र रहस्य से पूर्ण होता है। उसमें जो थोड़ी-सी चमक अथवा परछाईं दिखाई देती है, वह अनजान-अनकही भाषा में बातें करती है। उस पार की रेती की अस्पष्ट-सी सफेदी ने, निस्तरंग जल की काली स्याही सी कालिमा ने, बगीचे के घन-पल्लव विशाल निम्ब के वृक्ष की, इकट्ठी खामोशी ने पेड़ों से खाली मैले धूल भरे तट की बांकी रेखा ने, सब कुछ ने, सफेद आषाढ़ की शाम के उस झुटपुटे में तरह-तरह के अनिश्चित अव्यक्त आकारों में एक साथ मिलकर महेन्द्र को मानो चारों तरफ से घेरकर बन्दी बना लिया।

महेन्द्र को 'पदावली-साहित्य' में वर्णित 'वर्षाभिसार' की याद उठ आई। अभिसारिका घर से चल पड़ी है। यमुना के उस तट पर वह अकेली आकर खड़ी हुई है, किन्तु पार कैसे होगी? 'पार करो जी, मोहि पार करो', महेन्द्र के हृदय के भीतर बार-बार यही एक पुकार आ-आकर आघात करने लगी, 'पार करो जी, मोहि पार करो।'

नदी के उस पार बहुत दूर अंधेरे में खड़ी है वह अभिसारिका, किन्तु फिर भी महेन्द्र ने उसे स्पष्ट देख लिया। उसका कोई काल नहीं, उसकी कोई उम्र नहीं, चिरकालीन गोप-बाला है वह, किन्तु फिर भी महेन्द्र उसे पहचान गया। विनोदिनी है वह, अपने सम्पूर्ण विरह, सम्पूर्ण पीड़ा, सम्पूर्ण यौवन-भार को लेकर वह उस काल से यात्रा करके, न जाने कितने गीत और कितने छन्दों में होती हुई आज के काल में आ पहुंची है। आज के इस सुनसान यमुना-तट के ऊपर के आकाश में उसी की तो आवाज सुनाई दे रही है, 'पार करो जी, मोहि पार करो!' पार पहुंचाने वाली नाव के लिए वह अंधेरे में और कब तक इस तरह अकेली खड़ी रहेगी? 'पार करो जी, मोहि पार करो!'

बादलों के ज़रा फटते ही आकाश में कृष्णपक्ष की तृतीया का चांद निकल आया। उजाले के माया-मन्त्र से वह नदी और नदी-तट, वह आकाश और आकाश का ओर-छोर मानो इस पृथ्वी से बिलकुल बाहर चला गया। मानो अब मृत्यु का कोई बन्धन ही न रहा। मानो काल की समूची निरंतरता टूट गई, अतीत काल का सारा हास खो गया, भविष्यत काल का सारा अच्छा बुरा डूब गया, केवल-मात्र यह चांदी की धारा सा बढ़ता वर्तमान काल ही यमुना और यमुना के तट के बीच महेन्द्र और विनोदिनी को लिए हुए विश्व-विधान के बाहर चिरस्थायी हो रहा।

महेन्द्र मतवाला हो उठा। विनोदिनी आज उसे अस्वीकार कर देगी, चमकती हुई रात के इस सूने स्वर्ग खण्ड को लक्ष्मी के रूप में सम्पूर्ण नहीं करेगी, इस बात की वह कल्पना ही न कर सका। वह उसी क्षण उठकर विनोदिनी की खोज में बंगले की तरफ चल दिया।

शयन-कक्ष में जाकर उसने देखा, सारा घर फूलों की सुगन्ध से भर उठा है। खुले हुए झरोखे से ज्योति का प्रकाश साफ बिस्तर पर आकर पड़ रहा है। विनोदिनी ने बगीचे से फूल चुनकर उनसे मालाएं गूंथकर जूड़े में लपेटी हैं, गले में पहनी हैं, करधनी की तरह कमर से बांधी हैं, फूलों से सजी आज वह बसन्त ऋतु की पुष्प-भार से झुकी हुई जमीन पर लेटी हुई लता की तरह चांदनी के साफ बिस्तर पर पड़ी हुई है।

महेन्द्र का मोह दूना हो उठा। उसने रूंधे गले से कहा, "विनोद, मैं यमुना-किनारे तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठा था। तुम यहां प्रतीक्षा कर रही हो। आकाश के चांद ने मुझे यह समाचार दिया और मैं चला आया।"

इतना कहकर महेन्द्र बिस्तर पर बैठने के लिए आगे बढ़ा।

विनोदिनी चौंककर बड़ी तेज़ी से उठ बैठी और अपना दाहिना हाथ हिलाती हुई बोली, "जाओ, तुम जाओ। इस बिछौने पर मत बैठना।"

तेज़ रफ्तार से बहती हुई पाल-शुदा नाव सहसा बालू चर से टकराकर जहां की तहां रुक गई। महेन्द्र भौंचक्क होकर खड़ा का खड़ा ही रह गया। बहुत देर तक उसके मुंह से कोई बात ही नहीं निकली। और विनोदिनी इस डर से कि कहीं महेन्द्र उसका कहा न माने, बिछौने से उठकर उसके सामने आ खड़ी हुई।

महेन्द्र ने कहा, "तो फिर तुमने किसके लिए यह शृंगार किया है? यहां पड़ी-पड़ी तुम किसकी प्रतीक्षा कर रही थीं?"

विनोदिनी ने दोनों हाथों से अपनी छाती को दबाते हुए कहा, "जिसके लिए "शृंगार किया है, वह मेरे दिल के भीतर है।"

महेन्द्र ने कहा, "कौन है वह, बिहारी?"

विनोदिनी ने कहा, "उनका नाम तुम अपने मुंह से मत निकालो।"

"उसीके लिए तुम पश्चिम में घूमती-फिरती हो?"

"हां, उन्हीं के लिए।"

"उसीके लिए तुम यहां प्रतीक्षा कर रही थीं?"

"हां, उन्हीं के लिए।"

"उसका पता मालूम कर लिया है?"

"नहीं, किन्तु जैसे भी होगा, मैं उनका पता लगाकर ही रहूंगी।"

"किन्तु मैं तुम्हें हरगिज़ नहीं लगाने दूंगा।"

"न लगाने दोगे तो न सही, किन्तु याद रखना, मेरे हृदय से उन्हें तुम किसी भी तरह से नहीं निकाल सकोगे।" इतना कहकर विनोदिनी ने आंखें मींचकर अपने दिल में फिर एक बार बिहारी का अनुभव कर लिया।

महेन्द्र उस फूलों से सजी विरह-विधुर मूर्ति विनोदिनी के द्वारा एक ही साथ प्रबल

वेग से उसकी तरफ खिचा और अस्वीकृत होकर अचानक भीषण हो उठा और अपनी मुट्ठी उठाकर कहने लगा, ''छुरी से चीरकर मैं तुम्हारी छाती के भीतर से उसे निकाल बाहर करूंगा।''

विनोदिनी ने अविचलित मुख से कहा, ''तुम्हारे प्रेम की अपेक्षा तुम्हारी छुरी मेरे दिल में आसानी से घुस जाएगी।''

''तुम मुझसे डरती क्यों नहीं? यहां तुम्हारा रक्षक कौन है?''

''तुम मेरे रक्षक हो। तुम खुद अपने-आपसे मेरी रक्षा करोगे।''

''इतनी श्रद्धा, इतना विश्वास, क्या अब भी तुम्हारे अन्दर बाकी है?''

''इतना अगर न होता, तो मैं आत्महत्या करके मर जाती, तुम्हारे साथ नहीं निकलती।''

''फिर मर क्यों नहीं गई? इतने-से विश्वास की फांसी मेरे गले में डालकर मुझे देश-देशान्तर में क्यों घसीटती फिरती हो? तुम्हारे मर जाने से कितना मंगल होता, ज़रा सोच तो देखो!''

''मैं सब जानती हूं, किन्तु जब तक बिहारी की आशा है, तब तक मैं मर नहीं सकती।''

''किन्तु जब तक तुम नहीं मरतीं, तब तक मेरी आशा भी नहीं मर सकती। और उसके बिना मरे मैं भी छुटकारा नहीं पा सकता। आज से मैं समूचे अन्तरमन से भगवान् से कामना करूंगा कि तुम मरो। तुम मेरी भी न होना और बिहारी की भी न होना। तुम जाओ। मुझे छुट्टी दो। मेरी मां रो रही है, मेरी स्त्री रो रही है। उनके आंसू मुझे दूर से जला रहे हैं। जब तक तुम नहीं मरतीं, जब तक तुम मेरी और संसार के और सबों की आशा के पीछे नहीं चली जातीं, तब तक मुझे उनके आंसू पोंछने का अवसर नहीं मिलने का।''

इतना कहकर महेन्द्र दौड़ता हुआ बाहर चला गया। विनोदिनी अकेली पड़ी अपने चारों तरफ जो मोह-जाल रच रही थी, उसे वह चूर-चूर कर गया।

विनोदिनी चुपचाप खड़ी-खड़ी बाहर की तरफ देखती रही। आकाशभरी चांदनी बिल्कुल सूनी हो गई। उसका सारा का सारा सुधारस क्षण में कहां बिला गया? सामने का वह क्यारियों वाला बगीचा, उसके आगे का वह बालू-तट, उसके आगे की यमुना, उसके आगे की उस पार की अस्फुटता, सब कुछ मानो एक बड़े कागज़ पर पेन्सिल से अंकित चित्र मात्र है, सब कुछ नीरस और निरर्थक है।

महेन्द्र को विनोदिनी ने कैसे प्रबल वेग से अपनी तरफ खींचा है और प्रचण्ड आंधी बनकर कैसे वह उसे जड़ से उखाड़ लाई है, इस बात का अहसास करके आज उसका हृदय और भी ज़्यादा अशान्त हो उठा। विनोदिनी सोचने लगी, 'मुझमें तो ये सभी शक्तियां हैं, फिर क्यों नहीं बिहारी पूर्णिमा-रात्रि के हिलोरें लेते समुद्र की तरह

मेरे सामने आकर गिर पड़ता है? क्यों एक अनावश्यक प्रेम का प्रबल आघात प्रतिदिन मेरे ध्यान में आकर हो रहा है? और एक फूट पड़ने वाली चीख बार-बार आकर क्यों मेरे मन की चीख को पूर्ण अवकाश नहीं दे रही? उसने जो इस तरह से एक प्रचण्ड द्वन्द्व को जगा रखा है, उसे लेकर मैं क्या करूंगी।'

आज दिन फूलों की मालाओं से विनोदिनी ने अपने को सजाया था, उनपर महेन्द्र की मुग्ध नज़र पड़ जाने से उसने उन सबको तोड़-मसलकर अलग फेंक दिया। वह सोचने लगी, उसकी सारी शक्ति बेकार है, उसकी सारी कोशिशें बेकार हैं, उसका जीवन बेकार है, यह जंगल, यह चांदनी, यह यमुना-तट, यह अपूर्व सुन्दर संसार, सब कुछ बेकार है, बेकार है।

विनोदिनी की आंखें फट गईं और उनमें से आंसू निकल पड़े। आखिर वह अपने संपूर्ण बल और आकांक्षा को लिए हुए किस पत्थर को ढकेल रही है? उसका दिल रक्त में बह गया, किन्तु उसका अनदेखा सूची में सबसे आगे का सबूत टस से मस नहीं हुआ।

५१

महेन्द्र को रात-भर नींद नहीं आई और अन्त में थका-टूटा शरीर जब निढालहो गया, तब भोर के वक्त उसकी आंख लग गई। काफी दिन चढ़ने के बाद आठ-नौ बजे उसकी आंख खुली तो वह भड़-भड़ाकर उठ बैठा। गत रात्रि की कोई एक असमाप्त पीड़ा मानो नींद के भीतर ही भीतर बह रही थी। सचेत होते ही महेन्द्र उसकी व्यथा महसूस करने लगा। कुछ देर बाद ही रात की सारी घटना उसके मन में स्पष्ट होकर जाग उठी। सवेरे की सूर्य-किरणों में अपनी प्यासी नींद की थकान से उसे समस्त जगत् और जीवन अत्यन्त नीरस मालूम होने लगा। घर छोड़ने की ग्लानि, धर्म त्यागने का गंभीर दुख और अपने इस भटके हुए जीवन का सम्पूर्ण अशान्ति भार महेन्द्र किसके लिए वहन कर रहा है? मोहावेश खाली सवेरे के प्रकाश में महेन्द्र को ऐसा लगने लगा कि वह विनोदिनी से प्रेम नहीं करता। सड़क की तरफ उसने आंख उठाकर देखा कि सारा जाग्रत संसार व्यस्तता के साथ अपने काम में जुट पड़ा है और उसी क्षण महेन्द्र की दृष्टि के आगे सम्पूर्ण आत्मगौरव को कीचड़ में डुबोकर एक विमुख नारी के चरणों में निकम्मे जीवन को प्रतिदिन बांधे रखने की जो मूर्खता थी वह साफ हो उठी।

असल में प्रबल आवेग के बहाव के बाद दिल में एक तरह का दुख आ जाता है, और थका दिल तब अपनी अनुभूति के विषय को कुछ समय के लिए दूर हटाए रखना चाहता है। भाव-समुद्र के इस भाटे के समय तले का सारा का सारा दबा हुआ कीचड़

बाहर निकल आता है, जो मोह लाता था उससे वितृष्णा हो जाती है। महेन्द्र किसलिए अपने को इस तरह अपमानित कर रहा है, सो आज वह नहीं समझ सका। आज वह अपने मन में कहने लगा, 'मैं सब तरह से विनोदिनी से श्रेष्ठ हूं, फिर भी आज मैं सब तरह का छोटापन और धुतकार स्वीकार करके घिनौने भिखारी की तरह उसके पीछे-पीछे सारी रात दौड़ता फिर रहा हूं! ऐसा अनोखा पागलपन किस शैतान ने मेरे दिमाग में भर दिया!'

तब महेन्द्र इस धिक्कारे गए मोह-चक्र से अपने को छुड़ाकर घर जाने के लिए बेचैन हो उठा। जो शांति, जो प्रेम और जो स्नेह उसके पूर्व-जीवन में था, आज वही उसे दुर्लभतम अमृत-सा मालूम होने लगा। बिहारी का बचपन से आज तक अटल खड़ा भाई-चारा उसे आज महामूल्य मालूम होने लगा। वह मन ही मन कहने लगा, 'जो वास्तव में गंभीर और स्थायी है, उसमें बिना कोशिश के, बिना बाधा के अपने को पूर्ण तरह मग्न रखा जा सकता है, इसी से हम उसके गौरव को नहीं समझ पाते और जो चंचल छलना-मात्र है, जिसकी तृप्ति में भी ज़रा-सा सुख नहीं, वह पीछे से खदेड़-खदेड़कर हमें घुड़दौड़ के घोड़े की तरह दौड़ाती रहती है, इसीलिए उसे हम कामना की वस्तु समझते हैं।'

महेन्द्र मन ही मन कह उठा, 'आज ही मैं घर लौट जाऊंगा। विनोदिनी जहां भी रहना चाहेगी, वहां उसके रहने की व्यवस्था करके मैं मुक्त होऊंगा।' ये अन्तिम शब्द, 'मैं मुक्त होऊंगा,' उसके मुंह से दृढ़ता के स्वर में निकल पड़े और उससे उसके मन में एक अपूर्व आनन्द का जन्म हुआ। इतने दिनों से लगातार जिस दुविधा के भार को वह ढोता आ रहा था, वह हलका हो आया। इतने दिनों से, एक क्षण में जो उसे अत्यन्त अप्रीतिकर मालूम होता था और दूसरे क्षण उसे करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ता था जोर के साथ उससे 'ना' या 'हां' करते नहीं बनता था, उसके मनोमन में जो आदेश उठता था। अब जैसे ही उसने दृढ़ कण्ठ से कहा कि 'मैं मुक्त होऊंगा', वैसे ही उसके मन की सारी दुविधाएं दूर हो गई और उसी क्षण दुविधा के झूले में झूलता हुआ उसका पीड़ित दिल एक सहारा पाकर खुश होकर उसका सम्मान करने लगा।

महेन्द्र उसी वक्त उठकर हाथ-मुंह धोकर विनोदिनी से मिलने चल दिया। जाकर देखा कि उसके कमरे का दरवाज़ा बन्द है। उसने दरवाज़ा खटखटाते हुए कहा, "सो रही हो क्या?"

विनोदिनी ने कहा, "नहीं। अभी तुम जाओ।"

महेन्द्र ने कहा, "तुमसे मुझे एक खास बात करनी है। मैं ज़्यादा देर नहीं ठहरूंगा।"

विनोदिनी ने कहा, "बातें अब मुझसे नहीं सुनी जातीं। तुम जाओ, मुझे परेशान न

करो, मुझे ज़रा अकेले में रहने दो।"

और कोई समय होता, तो इस अस्वीकृति से महेन्द्र का आवेग और भी बढ़ जाता, किन्तु आज उसे बेहद घृणा मालूम होने लगी। वह सोचने लगा, 'इस मामूली एक स्त्री के लिए मैंने अपने को इतना हीन कर डाला है कि जब है तब इस तरह अनादर करके मुझे दुरदुरा देने का इसे अधिकार पैदा हो गया है! यह अधिकार इसका स्वाभाविक अधिकार नहीं है। मैंने ही इसे अधिकार देकर इसके गर्व को इस तरह अनुचित रूप से बढ़ा दिया है।' इस लांछना के बाद महेन्द्र ने अपने में श्रेष्ठता अनुभव करने की चेष्टा की और फिर अपने मन में कहने लगा, 'मैं विजयी होऊंगा, इसके बंधन को तोड़कर मैं चला जाऊंगा।'

खा-पीकर महेन्द्र रुपया लेने के लिए बैंक चला गया। वहां से रुपया लेकर वह आशा के लिए और मां के लिए कुछ अच्छी-अच्छी नई चीज़ें खरीदने के लिए बाज़ार में घूमने लगा।

अब फिर किसी ने विनोदिनी का दरवाज़ा खटखटाया। पहले तो वह झुंझला उठी और कुछ जवाब ही नहीं दिया, बाद में फिर बार-बार दरवाज़ा खटखटाए जाने पर वह झल्लाकर उठ बैठी और गुस्से में ज़ोर से किवाड़ खोलकर कहने लगी, "क्यों तुम मुझे बार-बार परेशान करने आते हो?" किन्तु बात पूरी कह भी न पाई कि उसने देखा, सामने बिहारी खड़ा है!

कमरे में महेन्द्र है या नहीं, यह देखने के लिए बिहारी ने एक बार चारों तरफ निगाह दौड़ाई। देखा कि घर-भर में सूखे हुए फूल और टूटी हुई मालाएं बिखरी पड़ी हैं। उसका मन उसी क्षण प्रबल वेग से उससे विमुख हो उठा। जब वह दूर था तब विनोदिनी की जीवन-यात्रा के सम्बन्ध में कोई शक भरा चित्र उसके मन में उगा न हो सो बात नहीं, किन्तु कल्पना की लीला ने उस चित्र को ढककर उसकी जगह एक उज्ज्वल मोहिनी छवि खड़ी कर दी थी। बिहारी जब बगीचे में प्रवेश कर रहा था तब उसका हृदय कांप रहा था। इस डर से कि कहीं उसकी कल्पना की प्रतिमा पर अचानक आघात न आ लगे, उसका मन सिकुड़ रहा था। अब विनोदिनी के शयनकक्ष के दरवाज़े पर आकर खड़े होते ही उसे वही आघात लगा।

दूर रहकर बिहारी ने किसी समय सोचा था कि वह अपने प्रेमाभिषेक से विनोदिनी के जीवन का सारा कीचड़ अनायास ही धो डालेगा, किन्तु पास आकर उसने देखा कि ऐसा करना सहज नहीं है। आज उसके मन में करुणा की पीड़ा कहां आई? सहसा घृणा की लहरों ने उठकर उसे विचलित कर डाला। बिहारी ने विनोदिनी को अत्यन्त मलिन रूप में देखा।

दूसरे ही क्षण बिहारी लौट पड़ा और 'महेन्द्र', 'महेन्द्र' पुकारने लगा। इस अपमान के बाद भी विनोदिनी ने बहुत ही नर्म और मीठे स्वर में कहा, "महेन्द्र यहां

नहीं है, शहर गया है।"

बिहारी जब जाने को हुआ तो विनोदिनी ने कहा, "बिहारी लालाजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, तुम्हें ज़रा बैठना होगा।"

बिहारी अनुनय-विनय कुछ भी न सुनने का तय कर चुका था, इस घृणा के दृश्य से वह इसी क्षण अपने को दूर ले जाना चाहता था, किन्तु विनोदिनी का याचना भरा स्वर सुनते ही मानो क्षण-भर के लिए उससे पैर उठाए नहीं उठे।

विनोदिनी ने कहा, "आज अगर तुम विमुख होकर इस तरह चले जाओगे तो मैं तुम्हारी सौगन्ध खाकर कहती हूं,मैं आत्महत्या करके मर जाऊंगी।"

तब बिहारी घूमकर खड़ा हो गया और बोला, "विनोदिनी, तुम अपने जीवन के साथ मुझे लपेटने की कोशिश क्यों करती हो, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? मैंने तो कभी तुम्हारी राह में रोड़े नहीं अटकाए, मैंने तो कभी तुम्हारे सुख-दुःख में किसी तरह का हस्तक्षेप नहीं किया!"

विनोदिनी ने कहा, "तुमने मुझपर कितना अधिकार कर लिया है यह बात एक बार तुमसे मैं कह चुकी हूं, किन्तु तुमने विश्वास नहीं किया। तो भी आज फिर मैं तुमसे इस विराग के मुंह पर वही बात कहती हूं। तुमने जो मुझे बिना कहे जताने का, लज्जा करके जताने का, समय नहीं दिया। तुमने मुझे ढकेलकर फेंक दिया है, तो भी तुम्हारे पांव छूकर कहती हूं, मैं तुम्हें...।"

बिहारी ने बीच में ही टोकते हुए कहा, "अब यह तुम मत कहो, उस बात को अब तुम ज़बान पर भी न लाओ। उसपर विश्वास करने का अब कोई रास्ता ही नहीं रह गया।"

"हो सकता है कि मेरी बात पर कोई नीच आदमी विश्वास न करे, किन्तु तुम जरूर करोगे। इसीलिए मैं तुमसे बैठने के लिए कह रही हूं।"

"मैं विश्वास करूं या न करूं, उससे किसी का क्या बनता-बिगड़ता है! तुम्हारा जीवन जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहेगा।"

"मैं जानती हूं कि तुम्हारा उससे कुछ भी बनेगा-बिगड़ेगा नहीं। मेरा भाग्य ही ऐसा है कि तुम्हारे सम्मान की रक्षा करके तुम्हारे पास खड़े होने का मेरे लिए कोई उपाय ही नहीं। हमेशा तुमसे मुझे दूर ही रहना पड़ेगा, किन्तु मेरा मन तुमसे सिर्फ इतनी-सी मांग को नहीं छोड़ सकता कि मैं कहीं भी रहूं, मुझे तुम ज़रा-सी मिठास के साथ याद करना। मैं जानती हूं, मेरे प्रति तुम्हारे मन में थोड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई थी, उसी को मैं अपने जीवन का एकमात्र सहारा बनाए रखूंगी। इसलिए आज तुम्हें मेरी सब बातें सुननी होंगी। मैं तुमसे हाथ जोड़कर कहती हूं, लालाजी, तुम ज़रा बैठ जाओ।"

"अच्छा, चलो।" कहकर बिहारी वहां से और कहीं जाने को हुआ।

विनोदिनी ने कहा, "लालाजी, तुम ज़ो अपने मन में समझ रहे हो, सो बात नहीं। इस घर को किसी कलंक ने छुआ नहीं। इसी घर में एक दिन तुम सोए थे। इस घर को मैंने तुम्हारे ही लिए छोड़ रखा है। ये फूल तुम्हारी ही पूजा करके आज सूखे पड़े हैं। तुम्हें यहीं बैठना होगा।"

यह सुनकर बिहारी का मन खिल उठा। वह कमरे के भीतर गया। विनोदिनी ने दोनों हाथों से उससे बिस्तर पर बैठने का अनुरोध किया। बिहारी पलंग पर जा बैठा और विनोदिनी उसके पैरों के पास नीचे बैठ गई। बिहारी व्यस्त हो उठा, विनोदिनी ने कहा, "लालाजी, तुम बैठे रहो। मेरे गले की सौगन्ध है तुम्हें, तुम उठना नहीं। मैं तुम्हारे पैरों के पास बैठने के भी योग्य नहीं। तुमने दया करके ही मुझे यह स्थान दिया है। दूर रहने पर भी इस अधिकार की मैं रक्षा करूंगी ही करूंगी।" इतना कहकर विनोदिनी कुछ देर तक चुप रही। उसके बाद अचानक चौंककर कह उठी, "तुम भोजन कर चुके हो क्या।"

बिहारी ने कहा, "मैं स्टेशन पर खा-पी आया हूं।"

विनोदिनी ने कहा, "मैंने गांव से तुम्हें जो पत्र लिखा था, उसे खोलकर बिना कुछ जवाब दिए ही तुमने महेन्द्र के हाथ वापस क्यों कर दिया था?"

बिहारी ने कहा, "तुम्हारा कोई पत्र मुझे नहीं मिला।"

विनोदिनी ने कहा, "अब की बार कलकत्ते में महेन्द्र से तुम्हारी भेंट हुई थी क्या?"

बिहारी ने कहा, "तुम्हें गांव पहुंचा आने के दूसरे दिन महेन्द्र मेरे घर पर गया था और उसके बाद ही मैं कलकत्ता छोड़कर इधर घूमने निकल पड़ा था। उससे फिर मेरी भेंट नहीं हुई।"

विनोदिनी ने फिर पूछा, 'उसके पहले और किसी दिन मेरी चिट्ठी बिना उत्तर दिए तुमने वापस कर दी थी?"

बिहारी ने कहा, "नहीं, ऐसा कभी नहीं हुआ।"

विनोदिनी स्तम्भित होकर बैठी रही। उसके बाद एक लम्बी सांस छोड़कर बोली, "अब मैं समझ गई। अब मैं अपनी सब बातें तुमसे कहती हूं। अगर विश्वास करो तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगी और अगर न करो, तो तुम्हें कोई दोष न दूंगी। मुझपर विश्वास करना कठिन है।"

बिहारी का हृदय उस समय गीला हो गया था। इस भक्ति-भार से विनम्र विनोदिनी की पूजा का वह किसी भी तरह अपमान न कर सका। उसने कहा, "भाभी, तुम्हें अब कुछ भी कहने की ज़रूरत नहीं, बिना कुछ सुने ही मैं तुम्हारा विश्वास करता हूं। मैं तुमसे नफ़रत नहीं कर सकता। अब तुम एक भी शब्द मत कहो।"

इतना सुनते ही विनोदिनी की आंखों से आंसू गिरने लगे, उसने बिहारी के पांवों की धूल माथे से लगा ली। बोली, "सब बातें बिना बताए मैं जी नहीं सकती। ज़रा धीरज रखके तुम्हें सुनना ही होगा। तुमने मुझे जो आदेश दिया था, उसे मैंने सिर-माथे लिया। यद्यपि तुमने मुझे एक पत्र भी नहीं दिया, फिर भी मैं अपने गांववालों की निन्दा और हंसी को सहती हुई गांव में ही अपना जीवन बिता देती, तुम्हारे स्नेह के बदले तुम्हारे शासन को ही अपना लेती, किन्तु विधाता को यह स्वीकार न था। मैंने जिस पाप को जगाया था, उसने मुझे निर्वासन में भी नहीं टिकने दिया। महेन्द्र ने गांव में जाकर, मेरे घर के दरवाज़े पर जाकर, मुझे सबके सामने लांछित किया। उस गांव में फिर मेरे लिए स्थान ही नहीं रहा। दूसरी बार फिर तुम्हारे आदेश के लिए मैंने तुम्हें बहुत खोजा, पर किसी भी तरह मैं तुम्हें पा न सकी। महेन्द्र ने तुम्हारे पीछे मेरी खुली हुई चिट्ठी तुम्हारे घर से वापस लाकर मुझे धोखा दिया। मैंने समझा कि तुमने मुझे बिलकुल ही त्याग दिया। इसके बाद मैं बिलकुल ही नष्ट हो सकती थी, किन्तु मालूम नहीं, तुममें क्या गुण है, तुम दूर रहकर भी रक्षा कर सकते हो। तुम्हें मैंने अपने मन में स्थान दिया है, इसी से मैं पवित्र हो गई हूं। एक दिन तुमने मुझे दूर करके अपना जो परिचय दिया है, तुम्हारा वही कठोर परिचय, कठोर सोने की तरह, कठोर माणिक की तरह, मेरे मन में बैठा है। उसने मुझे भारी कर दिया है। देव, आज मैं तुम्हारे इन चरणों को छूकर कहती हूं, मेरा वह मूल्य नष्ट नहीं हुआ है।"

बिहारी चुप बैठा रहा। विनोदिनी भी फिर कोई बात न कर सकी।

दोपहर का प्रकाश धीरे-धीरे मैला होता जा रहा था। इतने में महेन्द्र घर के द्वार के पास आकर बिहारी को देखकर चौंक पड़ा। विनोदिनी के प्रति उसके मन में जो एक उदासीनता पैदा हो रही थी वह ईर्ष्या की ताड़ना से दूर हो चली। विनोदिनी बिहारी के पैरों के पास खामोश बैठी हुई है, यह देखकर अस्वीकृत महेन्द्र के गर्व को बड़ी गहरी चोट पहुंची। अब उसे ज़रा भी सन्देह न रहा कि बिहारी का विनोदिनी के पास ज़रूर पत्र-व्यवहार चल रहा था और उसीका यह नतीजा है। अब तक बिहारी विमुख था, अब अगर वह खुद आकर थामे, तो विनोदिनी किसके रोके रुक सकती है? आज बिहारी को देखकर महेन्द्र इस बात को समझ गया कि वह विनोदिनी को छोड़ सकता है, किन्तु और किसीके हाथ नहीं छोड़ सकता।

बेकार गुस्से से तेज़ व्यंग्य के स्वर में महेन्द्र ने विनोदिनी से कहा, "तो अब रंगभूमि में महेन्द्र का प्रस्थान और बिहारी का प्रवेश है! दृश्य बहुत सुन्दर है तालियां पीटकर स्वागत करने को जी चाहता है, किन्तु आशा है कि यही शेष अंक का शेष दृश्य होगा। अब इसके बाद और कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा।"

विनोदिनी का चेहरा सुर्ख हो उठा। महेन्द्र का सहारा लेने के लिए, जबकि उसे

मजबूर होना पड़ा है, तब इस अपमान का उत्तर उसके पास कुछ भी नहीं है। वह बेचैन नज़र से सिर्फ एक बार बिहारी की तरफ देखकर रह गई।

बिहारी पलंग से उठा और आगे बढ़कर महेन्द्र से बोला, ''महेन्द्र, विनोदिनी का तुम कायरों की तरह अपमान न करो। तुम्हारा भलापन अगर तुम्हें न रोक सके, तो तुम्हें रोकने का अधिकार मुझे है।''

महेन्द्र हंस दिया, बोला, ''इस बीच में अधिकार भी तय हो गया! तो आज तुम्हारा नया नामकरण कर दिया जाए, विनोद-बिहारी''

बिहारी ने अपमान की मात्रा बढ़ते देख महेन्द्र का हाथ पकड़ लिया और कहा, ''सुनो, महेन्द्र, विनोदिनी से मैं विवाह करूंगा, मैं तुम्हें बताए देता हूं। इसलिए अब से तुम संभलकर बात करना।''

सुनकर महेन्द्र मारे विस्मय के सन्नाटे में आ गया और विनोदिनी चौंक उठी। उसकी छाती के भीतर का रक्त उथल-पुथल होने लगा।

बिहारी ने कहा, ''तुम्हें और एक समाचार देना है, तुम्हारी मां मृत्यु-शय्या पर पड़ी हैं, उनके जीने की कोई आशा नहीं। मैं आज रात की गाड़ी से ही चला जाऊंगा। विनोदिनी भी मेरे साथ जाएगी।''

विनोदिनी फिर चौंक उठी, बोली, ''बुआजी इतनी बीमार हैं?''

बिहारी ने कहा, ''अच्छी होने वाली बीमारी नहीं है वह। कब क्या हो जाए, कहा नहीं जा सकता।'' इसके बाद महेन्द्र और कोई बात न कहकर चुपचाप बाहर चला गया।

विनोदिनी ने बिहारी से कहा, ''जो बात तुमने अभी कही है, वह तुम्हारे मुंह से निकली कैसे? यह क्या मज़ाक कर रहे हो?''

बिहारी ने कहा, ''नहीं, मैं सच कह रहा हूं, तुमसे मैं विवाह करूंगा।''

''इस पापिष्ठा का उद्धार करने के लिए?''

''नहीं, मैं तुमसे प्रेम करता हूं, श्रद्धा करता हूं, इसलिए।''

''बस-बस, यही मेरे लिए बहुत बड़ा पुरस्कार है। इतना जो तुमने मुझे स्वीकार किया है, इससे ज्यादा मैं और कुछ भी नहीं चाहती। और मिले भी तो वह रहेगा नहीं धर्म उसे कभी बरदाश्त नहीं करेगा।''

''क्यों नहीं करेगा?''

''छी-छी, ऐसी बात मन में लाने में भी लज्जा मालूम होती है। मैं विधवा हूं, मैं निन्दिता हूं। सारे समाज के आगे मैं तुम्हें लाञ्छित करूं, यह कभी नहीं हो सकता। छी-छी, ऐसी बात फिर कभी तुम ज़बान पर मत लाना।''

''तो तुम मुझे त्याग दोगी?''

''त्यागने का अधिकार मुझे नहीं है। तुम गुप्त रूप से न जाने कितनों का कितना

भला करते रहते हो। तुम अपने किसी एक व्रत का कोई एक भार मुझपर छोड़ देना, उसी का निर्वाह करके मैं अपने को तुम्हारी सेविका समझकर जीवन बिता दूंगी, किन्तु छी-छी, विधवा से तुम विवाह करोगे! तुम्हारी उदारता के लिए सब कुछ सम्भव हो सकता है, किन्तु मैं अगर ऐसा काम करूं, तुम्हें समाज की दृष्टि में नष्ट कर दूं, तो इस जीवन में मैं कभी भी सिर नहीं उठा सकती।"

"किन्तु विनोदिनी, मैं तुमसे प्रेम करता हूं।"

"उस प्रेम के अधिकार से मैं आज सिर्फ एक साहस प्रकट करूंगी।" यह कहते हुए विनोदिनी ने ज़मीन से सिर छुआकर बिहारी को प्रणाम किया और उसके पांव की उंगलियां चूम लीं और फिर पैरों के पास बैठकर कहने लगी, "दूसरे जन्म में तुम्हें पाने के लिए मैं तपस्या करूंगी, इस जन्म में मैं और कुछ आशा नहीं रखती अपना और कुछ प्राप्य भी नहीं समझती। मैंने बड़ा दुःख दिया है और बड़ा दुःख पाया है। मुझे काफी सीख मिल चुकी है। उस सीख को अगर भूल जाती, तो मैं तुम्हें हीन बनाकर और भी हीन हो जाती। किन्तु तुम ऊंचे हो, इसीलिए आज मैं अपना माथा उठा सकी हूं। अपने इस सहारे को मैं धूल में नहीं मिला सकती।"

बिहारी गम्भीर होकर चुप बैठा रहा।

विनोदिनी ने हाथ जोड़कर कहा, "तुम गलती मत करो। मुझसे ब्याह करके तुम सुखी न हो सकोगे। तुम्हारा गौरव चला जाएगा और मैं भी अपना गौरव खो दूंगी। तुम सदा से निर्लिप्त हो, प्रसन्न हो। आज भी तुम वैसे ही बने रहो। मैं दूर रहकर तुम्हारा काम देखूंगी, तुम प्रसन्न होओ, तुम सुखी होओ।"

५२

महेन्द्र अपनी मां के कमरे में जाना ही चाहता था कि इतने में आशा जल्दी से बाहर निकल आई और बोली, "अभी तुम मां के पास मत जाओ।"

महेन्द्र ने पूछा, "क्यों?"

आशा ने कहा, "डाक्टर ने कहा है, अचानक मां के मन में सुख या दुःख किसी भी बात का धक्का लगने से तुरन्त खतरा हो सकता है।"

महेन्द्र ने कहा, "मैं एक बार चुपके से उनके सिरहाने के पास जाकर देख आऊंगा, उन्हें मालूम भी नहीं पड़ेगा।"

आशा ने कहा, "वे ज़रा-सा खटका होते ही चौंक उठती हैं। तुम्हारे घुसते ही उन्हें मालूम हो जाएगा।"

"तो तुम अब क्या चाहती हो?"

"पहले बिहारी लालाजी एक बार आकर देख जाएं। वे जैसी सलाह देंगे वैसा

किया जाएगा।"

कहते-कहते बिहारी आ गया। आशा ने उसे बुला भेजा था।

बिहारी ने कहा, "भाभी, तुमने मुझे बुलाया था? मां अच्छी तो हैं?"

बिहारी को देखकर आशा को मानो सहारा मिल गया। उसने कहा, "तुम्हारे चले जाने के बाद से वे और भी बेचैन हो उठी हैं। पहले दिन जब उन्होंने तुम्हें नहीं देखा, तो मुझसे पूछने लगीं, 'बिहारी कहां है।' मैंने कहा, 'वे एक खास काम से गए हैं, बृहस्पति को आने की बात है।' तब से वे रह-रहकर चौंक उठती हैं। मुंह से कुछ भी नहीं कहतीं, पर भीतर ही भीतर मालूम होता है किसी की बाट देख रही हैं। कल तुम्हारा तार पाकर मैंने उन्हें जता दिया था कि आज तुम आओगे। तुम्हें जो-जो चीज़ अच्छी लगती हैं वे सब चीज़ें मंगवाई हैं उन्होंने, सामने के बराण्डे में रसोई बनेगी, वे देखेंगी। डाक्टर की मनाही उन्होंने बिलकुल नहीं सुनी। कुछ देर पहले मुझे बुलाकर उन्होंने कहा था कि 'बहू, आज तुम अपने हाथ से रसोई बनाना, बिहारी को मैं अपने सामने बैठाकर खिलाऊंगी'।"

यह सुनकर बिहारी की आंखों में आंसू भर आए। उसने पूछा, "मां की तबीयत कैसी है?"

आशा ने कहा, "तुम एक बार खुद चलकर देख लो। मुझे तो लगता है, रोग बढ़ता ही जाता है।"

बिहारी कमरे के भीतर चला गया। महेन्द्र बाहर खड़ा-खड़ा आश्चर्य करने लगा, आशा ने अनायास ही घर का काम-काज ग्रहण कर लिया है! उसने उसे भीतर जाने से कितनी स्वाभाविकता से रोक दिया! न झिझक किया न अभिमान! महेन्द्र का बल आज कितना घट गया है! आज वह अपराधी है, वह चुपचाप बाहर खड़ा रहा, मां के कमरे में भी न घुस सका।

उस पर यह भी एक बड़े आश्चर्य की बात है कि बिहारी के साथ आशा कैसी बेहिचक बात करने लगी है। सब सलाह उसी से होती है, वही आज घर का एकमात्र रक्षक है, सबका भला चाहने वाला है, मित्र है। उसकी गतिविधि सब जगह है, उसी के उपदेश से सब चल रहा है। महेन्द्र कुछ दिनों के लिए जिस जगह को छोड़कर चला गया था, वापस आकर देखता है कि वह जगह ठीक पहले जैसी नहीं रही।

बिहारी के भीतर घुसते ही राजलक्ष्मी ने अपनी करुण नज़र बिहारी के मुंह पर रखते हुए कहा, "आ गया, बेटा!"

बिहारी ने कहा, "हां, मां, आ गया।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "तेरा काम पूरा हो गया?" इतना कहकर वे टकटकी लगाकर उसके मुंह की तरफ देखने लगीं।

बिहारी प्रफुल्ल मुख से बोला, "हां, मां, मेरा काम पूरा हो गया, अब मुझे कोई

चिन्ता नहीं।" इतना कहकर उसने एक बार बाहर की तरफ देखा।

राजलक्ष्मी ने कहा, "आज मेरी बहू रानी तेरे लिए अपने हाथ से रसोई बनाएगी, मैं यहीं से पड़ी-पड़ी बताती रहूंगी। डाक्टर मना करते हैं, पर अब मनाही किसलिए, बेटा! मैं क्या जी भरकर तुम लोगों को एक बार अपने सामने बिठाकर खिला भी न जाऊं?"

बिहारी ने कहा, "इसमें डाक्टर की मनाही का तो कोई कारण नहीं मालूम होता मुझे। मां, तुम नहीं बताओगी तो काम कैसे चलेगा? बचपन से ही तुम्हारे हाथ की रसोई हम लोगों को अच्छी लगती आई है और महेन भइया का तो पश्चिम की दाल-रोटी खाते-खाते जी ऊब गया होगा। आज तुम्हारी बहू रानी के हाथ का मछली का झोर खाकर उनका कायापलट हो जाएगा। आज हम दोनों भाई बचपन की तरह होड़ लगाकर खाएंगे। देखें आज तुम्हारी बहू रानी कहां तक खिला सकती हैं!"

यद्यपि राजलक्ष्मी समझ गई थीं कि बिहारी महेन्द्र को अपने साथ लेता आया है, फिर भी उसका नाम सुनते ही उनके दिल का धड़कना क्षण-भर के लिए बढ़ गया और सांस लेने में कष्ट होने लगा।

कष्ट कुछ कम होने पर बिहारी ने कहा, "पश्चिम जाकर महेन भइया का स्वास्थ्य तो कुछ अच्छा हो गया है। सफर की वजह से चेहरे पर आज कुछ थकान ज़रूर है, नहाने-खाने के बाद ही सब ठीक हो जाएगा।"

राजलक्ष्मी फिर भी महेन्द्र के सम्बन्ध में कुछ नहीं बोलीं! और तब बिहारी कहने लगा, "मां, महेन भइया बाहर खड़े हैं, तुम्हारे बुलाए बिना उनसे आते नहीं बन रहा है।"

राजलक्ष्मी मुंह से कुछ न कहकर दरवाज़े की तरफ देखने लगीं। देखते ही बिहारी पुकार उठा, "महेन भइया, भीतर आओ।"

महेन्द्र ने धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश किया। राजलक्ष्मी इस डर से कि कहीं सहसा उनका दिल धड़कना बन्द न हो जाए, महेन्द्र के मुंह की तरफ तत्काल देख न सकीं। आधी-आधी आंखे मीचे रहीं। महेन्द्र मां के बिस्तर की तरफ देखते ही चौंक उठा। मानो किसी ने उसे तमाचा मार दिया हो।

महेन्द्र मां के पावों में सिर रखकर पांव पकड़े पड़ा रहा। दिल की धड़कन से राजलक्ष्मी का सारा शरीर कांप उठा। कुछ देर बाद अन्नपूर्णा ने धीरे से कहा, "जीजी, महेन को तुम उठने के लिए कहो, नहीं तो वह उठेगा नहीं।"

राजलक्ष्मी ने मुश्किल से मुंह से शब्द निकालते हुए कहा, "महेन, उठ।"

महेन्द्र का नाम पुकारते ही बहुत दिन बाद उनकी आंखों से झरझर आंसू झरने लगे। भीतर के आंसुओं ने बाहर निकलकर उनके दिल की पीड़ा को कुछ हलका कर

दिया। तब महेन्द्र उठा और ज़मीन पर घुटने टेककर पलंग की पाटी पर छाती रखकर अपनी मां के पास आकर बैठ गया। राजलक्ष्मी ने मुश्किल से करवट बदलकर दोनों हाथों से महेन्द्र का सिर अपनी तरफ खींचकर उसके माथे को सूंघा और चूम लिया। महेन्द्र गद्गद कण्ठ से बोला, ''मां, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिए हैं, अब मुझे माफ कर दो।''

दिल शान्त होने पर राजलक्ष्मी ने कहा, ''ऐसी बात तू न कह, महेन, तुझे माफ किए बिना क्या मैं जी सकती हूं! बहू, बहू! कहां गई बहू?'' आशा बगल के कमरे में खाना बना रही थी। अन्नपूर्णा उसे बुला लाई।

तब राजलक्ष्मी ने महेन्द्र को ज़मीन से उठाकर पलंग पर बैठने के लिए इशारा किया। महेन्द्र के पलंग पर बैठ जाने पर राजलक्ष्मी ने आशा को उसके पास बैठने के लिए जगह दिखाते हुए कहा, ''बहू, तुम यहां बैठो! आज मैं तुम दोनों को एक बार एकसाथ बैठाकर देखूंगी, इसीसे मेरा सब दुख जाता रहेगा, बहू! बेटी, अब मुझसे तुम शर्माओ मत और महेन से भी अपने मन में किसी तरह का अभिमान न रखकर एक बार यहां बैठ जाओ, आज मुझे अपनी आंखें ठण्डी कर लेने दो, बेटी!''

तब आशा घूंघट काढ़े लाज के साथ धीरे-धीरे धड़कते दिल से महेन्द्र के पास आकर बैठ गई। राजलक्ष्मी ने अपने हाथ में आशा का दाहिना हाथ लेकर महेन्द्र के हाथ में रखते हुए कहा, ''मैं अपनी इस रानी बेटी को तेरे हाथ सौंपे जाती हूं मेरी एक बात याद रखना, ऐसी लक्ष्मी और कहीं भी तुझे नहीं मिलने की! मझली बहू, आओ, इन्हें एक बार आशीर्वाद दो, तुम्हारे पुण्य से इनका कल्याण हो।''

अन्नपूर्णा के सामने आकर खड़े होते ही दोनों ने आंसू भरी आंखों से उन्हें प्रणाम किया और पांव की धूल माथे से लगाई। अन्नपूर्णा ने दोनों का माथा चूमते हुए कहा, ''भगवान तुम लोगों का कल्याण करें।''

राजलक्ष्मी ने कहा, ''बिहारी, आओ बेटा, तुम भी महेन को क्षमा कर दो।''

बिहारी के उसी क्षण महेन्द्र के सामने जा खड़े होते ही महेन्द्र ने उठकर मज़बूत बांहों से उसे अपनी छाती से लगा लिया। राजलक्ष्मी बोलीं, ''महेन, मैं तुझे यही आशीर्वाद देती हूं कि बचपन से बिहारी तेरा जैसा मित्र रहा है, हमेशा वैसा ही बना रहे। इससे बढ़कर तेरा सौभाग्य और कुछ भी नहीं हो सकता।''

इतना कहकर राजलक्ष्मी बहुत अधिक थकान के कारण खामोश हो गई। बिहारी एक तेज़ दवा उनके मुंह के पास ले गया, तो उन्होंने उसका हाथ हटा दिया और कहा, ''अब दवा का क्या होगा, बेटा! अब मुझे भगवान का स्मरण करने दे, वे ही मुझे मेरे समस्त संसारदाह की आखिरी दवा देंगे। महेन, तुम लोग जाकर ज़रा आराम करो। बहू, जाओ, रसोई चढ़ाओ।''

शाम के वक्त बिहारी और महेन्द्र दोनों राजलक्ष्मी के सामने भोजन करने बैठे।

आशा पर परोसने का भार था, वह परोसने लगी।

महेन्द्र की छाती के भीतर से आंसू उमड़े आ रहे थे, उसके मुंह में कौर नहीं जाता था। राजलक्ष्मी उससे बार-बार कहने लगीं, "महेन, तू कुछ खा क्यों नहीं रहा है? अच्छी तरह खा, मैं देखूं।"

बिहारी ने कहा, "जानती हो, मां, महेन भइया हमेशा से ही ऐसे हैं, कुछ खा ही नहीं सकते। भाभी, छैने की कढ़ी ज़रा और देना, बड़ी अच्छी बनी है।"

राजलक्ष्मी प्रसन्न होकर ज़रा हंसती हुई बोलीं, "मैंने कहा था न, बिहारी को छैने की कढ़ी अच्छी लगती है। अरे, इतने से उसका क्या होगा, बहू, ज़रा अच्छी तरह परोसो।"

बिहारी ने कहा, "तुम्हारी यह बहू बड़ी कंजूस है, मां, हाथ से जल्दी कुछ निकलता ही नहीं।"

राजलक्ष्मी हंसती हुई बोलीं, "देखो तो बहू, बिहारी तुम्हारा ही नमक खाकर तुम्हारी ही बुराई कर रहा है!"

अब की बार आशा ने बिहारी की थाली में बहुत-सी कढ़ी परोस दी। बिहारी कहने लगा, "हाय-हाय, सिर्फ कढ़ी खिलाकर ही पेट भर दोगी मालूम होता है। बाकी की सब अच्छी-अच्छी चीजें भाई साहब की थाली में परोसी जाएंगी!"

आशा स्पष्ट स्वर में कह गई, "निन्दक का मुंह किसी भी तरह बन्द ही नहीं होना चाहता!"

बिहारी ने मृदु स्वर में कहा, "मिठाई देकर परीक्षा कर देखो, बन्द होता है या नहीं!"

दोनों मित्र एकसाथ बैठकर भोजन कर चुके तो राजलक्ष्मी को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने कहा, "बहू, अब तुम जल्दी से खा-पी लो।"

राजलक्ष्मी के आदेश से आशा जब खाने चली गई, तो उन्होंने महेन्द्र से कहा, "महेन, जा तू, आराम कर जाके।"

महेन्द्र ने कहा, "अभी से सो जाऊं जाकर?"

महेन्द्र ने तय किया था कि आज वह मां की सेवा करेगा। किन्तु राजलक्ष्मी ने ऐसा नहीं करने दिया। उन्होंने कहा, "तू रास्ते का थका हुआ है, जा, सो जाकर।"

आशा खा-पीकर पंखा हाथ में लिए राजलक्ष्मी के सिरहाने बैठने लगी तो उन्होंने धीरे से कहा, "बहू, महेन्द्र के बिस्तर वगैरह ठीक से हुए कि नहीं, ज़रा देख तो आओ। वह अकेला होगा।"

आशा मारे शर्म के गड़-गड़ गई और किसी तरह कमरे से बाहर निकलकर ऊपर चली गई। राजलक्ष्मी के पास अन्नपूर्णा और बिहारी रह गए। राजलक्ष्मी ने बिहारी से पूछा, "तुझसे एक बात पूछती हूं, बेटा! तू बता सकता है, विनोदिनी का

क्या हुआ? अब वो कहां है?"

बिहारी ने कहा, "कलकत्ते में ही है।"

राजलक्ष्मी सूनी नज़र से बिहारी से कुछ पूछने लगीं। बिहारी समझ गया। बोला, "विनोदिनी के बारे में अब तुम्हें कोई डर नहीं, मां।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "उसने मुझे बड़े दुःख दिए हैं, बिहारी, फिर भी मैं उसे भीतर से चाहती हूं।"

बिहारी ने कहा, "वह भी भीतर से तुम्हें बहुत चाहती है, मां।"

राजलक्ष्मी बोलीं, "मुझे भी ऐसा मालूम होता है। दोष-गुण सभी में होते हैं, पर वो मुझे चाहती ज़रूर थी, वैसी सेवा कोई कपट से नहीं कर सकता।"

बिहारी बोला, "तुम्हारी सेवा करने के लिए वह बेचैन हो रही है।"

राजलक्ष्मी ने एक गहरी सांस ली और कहा, "महेन्द्र वगैरह तो अब सोने चले गए हैं। रात को उसे एक बार यहां ले आने में क्या हर्ज है?"

बिहारी ने कहा, "मां, वो तो बाहर वाले घर में छिपी बैठी है। मैंने बहुत कहा, 'पर उसने आज दिन-भर पानी तक नहीं छुआ। उसने प्रतिज्ञा की है कि जब तक तुम उसे बुलाके माफ नहीं कर दोगी, तब तक वह अन्न-जल कुछ भी नहीं छुएगी।"

राजलक्ष्मी चंचल हो उठीं, बोलीं, "दिन-भर से उपवास किए बैठी है! अब तक तैंने मुझसे कहा भी नहीं! जा, बुला ला उसे, बुला जल्दी।"

विनोदिनी ने धीरे-धीरे राजलक्ष्मी के कमरे में प्रवेश किया। उसे देखते ही वे बोल उठीं, "छी-छी, बहू, यह तुमने क्या किया! दिन-भर से उपवास किए बैठी हो। जाओ, जाओ, पहले खा-पी आओ, पीछे बात होगी।"

विनोदिनी ने राजलक्ष्मी के पांव की धूल माथे से लगाई और कहा, "पहले तुम मुझ पापिन को माफ कर दो, बुआजी, तब मैं खाऊंगी।"

राजलक्ष्मी ने कहा, "मैंने तुझे माफ कर दिया, बेटी, माफ कर दिया। मेरा अब किसी पर क्रोध नहीं है।" और फिर विनोदिनी का दाहिना हाथ पकड़कर बोलीं "बहू, तुमसे किसीका बुरा न हो और तुम भी सुखी रहो, यही मेरा आशीर्वाद है।"

विनोदिनी ने कहा, "तुम्हारा आशीर्वाद झूठा नहीं होगा, बुआजी! मैं तुम्हारे पांव छूकर कहती हूं, मुझसे अब संसार में किसी का भी बुरा न होगा।" अन्नपूर्णा के पांव लगकर विनोदिनी खाने चली गई।

जब वह खाकर वापस आई तब राजलक्ष्मी ने उससे कहा, "बहू, तो अब तुम जा रही हो?"

विनोदिनी ने कहा, "बुआजी, मैं तुम्हारी सेवा करना चाहती हूं। ईश्वर साक्षी है, अब मुझसे तुम किसी भी बुरे की आशंका मत करो।"

राजलक्ष्मी बिहारी के मुंह की ओर देखने लगीं। बिहारी ने ज़रा सोचकर कहा,

"इन्हें तुम अपने पास रखो, मां, अब कोई हर्ज नहीं।"

रात को बिहारी, विनोदिनी और अन्नपूर्णा तीनों ने मिलकर राजलक्ष्मी की सेवा-सुश्रूषा की।

उधर आशा इस शर्म के मारे कि रात-भर वह सास के पास न आ सकी, पौ फटते ही उठ बैठी। महेन्द्र को सोता हुआ छोड़कर झटपट हाथ-मुंह धोकर, कपड़े बदलकर नीचे चली आई। उस समय कुछ-कुछ अंधेरा था। राजलक्ष्मी के कमरे के पास आते ही उसने जो कुछ देखा, उससे वह दंग रह गई। सोचने लगी, 'यह क्या सपना देख रही हूं!'

विनोदिनी स्पिरिट का लैम्प जलाकर गर्म पानी कर रही थी। बिहारी रात को सो नहीं सका था, उसके लिए चाय बनेगी।

आशा को देखते ही विनोदिनी उठ खड़ी हुई। बोली, "आज मैं अपने सारे अपराधों के साथ तुम्हारा सहारा ले रही हूं और कोई मुझे यहां से नहीं हटा सकता, किन्तु अगर तुम कहो कि 'जाओ', तो मुझे इसी घड़ी चला जाना होगा।"

आशा कुछ जवाब न दे सकी। उसका मन क्या कह रहा था, सो भी वह न समझ सकी। वह विचलित-सी हो रही।

विनोदिनी बोली, "मुझे तुम कभी भी माफ नहीं कर सकोगी—उसकी कोशिश भी मत करना। किन्तु अब मुझसे बिलकुल डरना मत। जितने दिन बुआजी को ज़रूरत होगी उतने दिन मुझे ज़रा काम करने दो, उसके बाद मैं चली जाऊंगी।"

कल राजलक्ष्मी ने जब आशा का हाथ लेकर महेन्द्र के हाथ में दिया था तब आशा ने अपने मन से सम्पूर्ण अभिमान पोंछकर सम्पूर्ण रूप से महेन्द्र को आत्मसमर्पण कर दिया था। किन्तु आज विनोदिनी को सामने देखकर उसके टूटे प्रेम ने शांति मानने से इनकार कर दिया। आशा के मन में यह बात लहरों की तरह बार-बार उठने लगी कि 'इसे उन्होंने एक दिन चाहा था, और अब भी अगर चाहते हों तो आश्चर्य नहीं! कुछ ही देर बाद उनकी आंख खुलेगी, फिर वे विनोदिनी को देखेंगे। किस नज़र से देखेंगे, कौन जाने!' कल रात को आशा ने अपने सम्पूर्ण घर-संसार को कांटों से परे देखा था, और आज तड़के ही उठकर देखा कि कांटे का झाड़ उसके घर के आंगन में ही मौजूद है! संसार में सुख का स्थान ही सबसे ज़्यादा संकीर्ण होता है, कहीं भी उसे पूरी तरह बिना बाधा रखने की फुर्सत नहीं।

आशा अपने हृदय-भार को लिए हुए ही भीतर गई और बेहद लज्जा के साथ बोली, "मौसी, तुम सारी रात जागती रही हो, जाओ, थोड़ा सो लो।"

अन्नपूर्णा ने आशा के मुंह की तरफ एक बार अच्छी तरह देखा और फिर वे सोने न जाकर आशा को अपने कमरे में ले गईं। अन्नपूर्णा ने कहा, "चुन्नी, अगर तू सुखी होना चाहती है, तो बीती बातों को याद मत कर। दूसरों को दोषी मानने में जितना

सुख है, दोष याद रखने में उससे बहुत ज़्यादा दुःख होता है।"

आशा ने कहा, "मौसी, मैं अपने मन में किसी बात को पालकर नहीं रखना चाहती, मैं भूलना ही चाहती हूं, पर भुलाए भूलती जो नहीं!"

अन्नपूर्णा ने कहा, "बेटी, तू ठीक कहती है। उपदेश देना सहज है, उपाय बता देना ही कठिन है, फिर भी मैं तुझे एक उपाय बताए देती हूं। कम से कम बाहर से इस भाव की रक्षा करनी ही होगी कि भूल गई हूं। पहले बाहर से भूलना शुरू करना, फिर भीतर से भी भूल जाएगी। इस बात को याद रखना, बेटी, तू अगर खुद न भूली तो दूसरों को भी याद दिलाती रहेगी। तू अपनी इच्छा से न भूल सके, तो मैं तुझे आज्ञा देती हूं, विनोदिनी के साथ तू ऐसा व्यवहार कर कि जैसे उसने तेरा कोई बुरा किया ही न हो और उससे तेरे बुरे की कोई आशंका ही नहीं।"

आशा ने नम्र मुख से कहा, "मुझे क्या करना होगा, बताओ?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "विनोदिनी अभी बिहारी के लिए चाय बना रही है। तू दूध, चीनी, प्याला सब ले जा। दोनों जनी मिलकर काम करो।"

आशा आदेश-पालन के लिए उठने लगी। अन्नपूर्णा ने कहा, "यह तो सहज है, किन्तु मेरी एक बात और सुननी होगी, वह और भी कठिन है। उसका पालन तुझे करना ही होगा। बीच-बीच में महेन्द्र के साथ विनोदिनी की भेंट होगी ही, तब तेरे मन में क्या होगा, सो मैं समझ सकती हूं, किन्तु उस समय तू छिपकर, या कनखियों से भी महेन्द्र का या विनोदिनी का भाव देखने की कोशिश न करना। छाती फट जाने पर भी इसमें तुझे अडिग रहना होगा। महेन्द्र को यह मालूम होना चाहिए कि तू उसपर सन्देह नहीं करती, शोक नहीं करती, तेरे मन में कोई डर नहीं है, चिन्ता नहीं है। जोड़ टूटने के पहले जैसा था, जोड़ लगने के बाद फिर ठीक वैसा ही हो गया है। टूटने का निशान तक मिट गया है। महेन्द्र अथवा और कोई भी तेरा मुंह देखकर अपने को अपराधी न समझने पावे। चुन्नी, यह मेरा अनुरोध या उपदेश नहीं है, यह तेरी मौसी की आज्ञा है। मैं जब काशी चली जाऊंगी, तब भी मेरे पीछे तू एक दिन के लिए भी कभी मेरी बात को मत भूलना।"

आशा दूध-प्याले वगैरह लेकर विनोदिनी के पास पहुंच गई और बोली, "पानी गरम हो गया क्या? मैं दूध लाई हूं।"

विनोदिनी ने चकित होकर आशा के मुंह की ओर देखा और कहा, "बिहारी लालाजी बराण्डे में बैठे हैं, चाय तुम उनके पास भिजवा देना। मैं तब तक बुआजी के लिए मुंह-हाथ धोने की तैयारी कर रखूं। वे अब उठने ही वाली हैं।"

विनोदिनी चाय लेकर बिहारी के पास नहीं गई। बिहारी ने उसका प्रेम स्वीकार करके उसे जो अधिकार दिया है उस अधिकार को इच्छा के अनुसार काम में लाने में उसे संकोच मालूम होने लगा। अधिकार की अपनी एक मर्यादा होती है, उस मर्यादा

की रक्षा के लिए अधिकार-प्रयोग को संभाले रखना पड़ता है। जितना मिले उतना पाने के लिए खींचातानी करना कंगाल को ही शोभा दे सकता है। भोग को सीमित और कम करने में ही सम्पदा का सच्चा गौरव है। अब बिहारी यदि स्वयं न बुलावे तो किसी एक बहाने से विनोदिनी उसके पास नहीं जा सकती।

दोनों में बात हो रही थी कि इतने में महेन्द्र आ पहुंचा। आशा का दिल यद्यपि उसी क्षण कांप उठा, फिर भी उसने अपने को संभाल कर स्वाभाविक स्वर में महेन्द्र से कहा, "तुम इतनी जल्दी कैसे उठ बैठे? मैं तो इस डर से खिड़की-किवाड़ सब बन्द कर आई थी कि कहीं धूप लगने से तुम्हारी नींद न उचट जाए।"

विनोदिनी के सामने ही आशा को ऐसे सहज-स्वाभाविक भाव से बात करते देख महेन्द्र की छाती पर से मानो एक बड़ा भारी पत्थर-सा उतर गया। उसने खिले मन से कहा, "आंख खुलते ही मैं मां को देखने चला आया। मां अभी क्या सो रही हैं?"

आशा ने कहा, "हां, अभी सो रही हैं, अभी तुम मत जाना। बिहारी लालाजी ने कहा है, आज उनकी तबीयत कुछ अच्छी है। बहुत दिन बाद कल रात-भर उन्हें अच्छी तरह नींद आई है।"

महेन्द्र ने निश्चिन्त होकर पूछा, "चाची कहां हैं?"

आशा ने इशारे से उनका कमरा दिखा दिया। आशा की इस दृढ़ता और संयम को देखकर विनोदिनी भी आश्चर्य में रह गई। महेन्द्र ने पुकारा, "चाची!"

अन्नपूर्णा भोर में ही नहा-धो ली थी और पूजा में बैठना ही चाहती थीं कि इतने में महेन्द्र की आवाज़ सुनकर बोलीं, "आ महेन, आ।"

महेन्द्र ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा, "चाची, मैं पापी हूं, तुम्हारे पास बैठने में मुझे शर्म मालूम होती है।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "छी-छी, ऐसी बात मुंह से नहीं निकालते, बेटा! बच्चे धूल-मिट्टी में भी खेलते हैं और मां की गोद में भी बैठते हैं।"

महेन्द्र ने कहा, "पर मेरी यह धूल-मिट्टी अब किसी तरह पुंछ नहीं सकती।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "दो-एक बार झाड़ते ही सब झड़ जाएगी, बेटा! यह एक तरह से अच्छा ही हुआ। अपने अच्छेपन का तुझे अहंकार हो गया था, अपने पर तुझे बहुत ज़्यादा विश्वास था। पाप की आंधी ने सिर्फ तेरे उस घमंड को तोड़ दिया है और कोई बुरा नहीं किया।"

महेन्द्र ने कहा, "चाची, अब मैं तुम्हें नहीं छोड़ने का, तुम्हारे चले जाने से ही मेरी ऐसी दुर्गति हुई है।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "मैं यहां रहकर जिस दुर्गति को रोके रखती उस दुर्गति का एक बार हो जाना ही अच्छा रहा। अब तुझे मेरी कोई ज़रूरत नहीं होगी।"

इतने में द्वार के पास से आवाज़ आई, "चाची, पूजा करने बैठी हो क्या?"

अन्नपूर्णा बोली, "नहीं, तू आ।"

बिहारी कमरे में आ गया। इतने सवेरे महेन्द्र को जाग्रत देखकर उसने कहा, "महेन भैया, आज तुमने अपने जीवन में शायद पहला सूर्योदय देखा है!"

महेन्द्र ने कहा, "हां, बिहारी, आज मेरे जीवन में यह पहला सूर्योदय है। चाची, बिहारी को शायद तुमसे कुछ सलाह करनी है, मैं जाऊं।"

बिहारी हंस दिया, बोला, "न हो तो, तुम्हें भी कैबिनेट का मिनिस्टर बना लिया जाता है। तुमसे मैंने कभी कोई बात छिपाई नहीं। अगर एतराज़ न करो, तो आज भी न छिपाऊंगा।"

महेन्द्र ने कहा, "मैं एतराज़ करूंगा! पर हां, अब मैं तुमसे दावा नहीं कर सकता। तुम अगर मुझसे कुछ न छिपाओ, तो मैं शायद अपने पर फिर से श्रद्धा कर सकूंगा।"

आजकल महेन्द्र के सामने सब बात बिना संकोच के कहना कठिन हो गया है। बिहारी का मुंह रुक-सा आया, फिर भी उसने ज़ोर लगाकर कहा, "मैं विनोदिनी से विवाह करूंगा, ऐसी एक बात उठी थी, उस बात को पूरी करने के लिए चाची के पास आया हूं।"

महेन्द्र अत्यन्त संकुचित हो उठा। अन्नपूर्णा चकित होकर कह उठीं, "अब तू यह कैसी बात कर रहा है, बिहारी!"

महेन्द्र ने प्रबल शक्ति का प्रयोग करके अपना संकोच दूर कर दिया, बोला, "बिहारी, अब उसकी कोई ज़रूरत नहीं रही।"

अन्नपूर्णा बोलीं, "इस प्रस्ताव से विनोदिनी का भी कोई सम्बन्ध है क्या?"

बिहारी ने कहा, "बिल्कुल नहीं।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "वो क्या इस पर राज़ी होगी?"

महेन्द्र बोल उठा, "विनोदिनी क्यों नहीं राज़ी होगी, चाची? मुझे मालूम है, वह एकाग्र मन से बिहारी की भक्ति करती है। ऐसा सहारा क्या वह अपनी मर्जी से छोड़ सकती है?"

बिहारी ने कहा, "महेन भैया, मैंने विनोदिनी से विवाह का प्रस्ताव किया था, उसने लज्जा के साथ उसे अस्वीकार कर दिया है।"

सुनकर महेन्द्र चुप रह गया।

५३

कष्ट के उतार-चढ़ाव में किसी तरह राजलक्ष्मी के दो-तीन दिन गुज़र गए। एक दिन सवेरे उनका कष्ट बहुत कुछ कम हो गया, और उनके चेहरे पर प्रसन्नता की झलक दिखाई दी। उस दिन उन्होंने महेन्द्र को बुलाकर कहा, "अब मेरे ज़्यादा दिन

नहीं रह गए, बेटा, पर अब मैं सुख से मरूंगी। अब मुझे कोई भी दुःख नहीं है। तू जब छोटा था तब तुझे लेकर मुझे कितना आनन्द था, मैं कह नहीं सकती। आज उसी आनन्द से मेरी छाती भर उठी है। तू मेरा गोद का लड़का है, मेरे हृदय का धन है, तेरी सारी बलाएं लेकर मैं चली जा रही हूं, यह मेरे लिए सबसे बड़ा सुख है।" इतना कहकर वे महेन्द्र के मुंह पर देह पर हाथ फेरने लगीं। महेन्द्र का रोना रुक नहीं पाया और बह निकला। राजलक्ष्मी ने कहा, "रो मत, बेटा! लक्ष्मी घर में रही। बहू को मेरी चाभी दे देना। सब कुछ मैंने सम्हालकर रख दिया है, तुम लोगों की गृहस्थी में किसी चीज का अभाव नहीं होगा। एक बात मैं और कहती हू, महेन, मेरे मरने से पहले किसी से कुछ मत कहना। मेरे बकस में दो हजार रुपये के नोट अलग किए हुए रखे हैं। उन्हें मै विनोदिनी को दिए जाती हूं। वो विधवा, अकेली है, उन रुपयों के ब्याज से उसका गुज़ारा हो जाएगा, पर उसे तू अपनी गृहस्थी में मत रखना। तुझसे मेरा इतना अनुरोध रहा।"

इसके बाद फिर उन्होंने बिहारी को बुलवाया और कहा, "बेटा बिहारी, कल महेन्द्र कह रहा था कि तैंने देश के गरीब भाइयों के इलाज के लिए एक बगीचा लिया है। भगवान तुझे दीर्घजीवी बनाकर गरीबों का हित करें। मेरे ब्याह के समय ससुरजी ने मुझे एक गांव दिया था, वो गांव मैं तुझे दिए जाती हूं। उसे तू गरीबों के काम में लगाना, उससे मेरे ससुर को पुण्य की प्राप्ति होगी।"

५४

राजलक्ष्मी की मृत्यु के बाद रीति के अनुसार उनका श्राद्ध भी हो गया। एक दिन महेन्द्र ने बिहारी से कहा, "भाई बिहारी, मैं डाक्टरी जानता हूं। तुमने जो काम शुरू किया है, उसमें मुझे भी शामिल कर लो। चुन्नी जिस ढंग की गृहिणी हो गई है, वह भी उसमें सहायता कर सकेगी। हम सब वहीं रहेंगे।"

बिहारी ने कहा, "महेन भैया, तुम ज़रा अच्छी तरह विचारकर देख लो, यह काम क्या तुम्हें हमेशा अच्छा लगेगा? वैराग्य के बहाव में कोई भी स्थायी भार अपने ऊपर न ले बैठना।"

महेन्द्र ने कहा, "बिहारी, तुम भी विचार देखो। मैंने अपना जीवन जैसा बना डाला है उसे आलस के साथ नहीं भोगा जा सकता। कर्म के द्वारा उसे अगर आगे न बढ़ाया गया, तो किसी दिन वह मुझे ही खींचकर दुख के गड्ढे में डाल देगा। तुम्हें अपने काम में मुझे स्थान देना ही होगा।" अन्त में यही बात तय हो गई।

इधर अन्नपूर्णा के काशी जाने के दिन निकट आ रहे थे। अन्नपूर्णा और बिहारी शान्त विषाद के साथ पहले की बातों की चर्चा कर रहे थे। इतने में विनोदिनी

दरवाज़े के पास आकर बोली, "चाचीजी, मैं भी ज़रा आकर बैठ सकती हूं?"

अन्नपूर्णा ने कहा, "हां, हां, आओ बेटी, बैठो।"

विनोदिनी के बैठने के बाद उससे दो-चार बात करके अन्नपूर्णा बिछौना उठाने के बहाने बराण्डे में चली गई। विनोदिनी ने बिहारी से कहा, "अब मेरे लिए तुम्हारा क्या आदेश है, बताओ!"

बिहारी ने कहा, "भाभी, तुम्हीं बताओ, अब तुम क्या करना चाहती हो?"

विनोदिनी ने कहा, "सुना है, गरीबों के इलाज के लिए तुमने गंगा के किनारे कहीं बगीचा लिया है। मैं वहां तुम्हारा ही कोई काम करना चाहती हूं और कुछ न हो तो, रसोई तो बना ही सकती हूं।"

बिहारी ने कहा, "भाभी, मैंने बहुत सोच देखा है। तरह-तरह की घटनाओं से हमारे जीवन-जाल में अनेक उलझनें पड़ गई हैं। अब एकान्त में बैठकर उन्हें सुलझाने के दिन आ गए हैं। पहले से सब बातें हमें साफ कर लेनी पड़ेंगी। अब दिल जो चाहता है, जो कुछ सहा है, उसके सम्पूर्ण दोहराव को, सम्पूर्ण हलचल को यदि शान्त न कियां गया, तो जीवन की समाप्ति के लिए प्रस्तुत नहीं हो सकूंगा। यदि हमारा सम्पूर्ण अतीत समय के अनुसार होता, तो संसार में एकमात्र तुम्हारे ही द्वारा मेरा जीवन सम्पूर्ण हो सकता था। अब तुमसे मुझे छूटना ही होगा। अब सख के लिए कोशिश करना बेकार है, अब तो मुझे धीर-सुस्त जीवन के टूटे-फूटे अंशों को जोड़ने का काम करना होगा।"

इतने में अन्नपूर्णा आ गई। विनोदिनी ने उनसे कहा, "मां, तुम्हें अपने चरणों में मुझे भी स्थान देना पड़ेगा। पापिन होने से तुम मुझे ठुकराना मत।"

अन्नपूर्णा ने कहा, "चलो, बेटी,तुम मेरे साथ चलो।"

अन्नपूर्णा और विनोदिनी के काशी जाने के दिन, किसी मौके से, बिहारी विनोदिनी से एकान्त में मिला। उसने कहा, "भाभी, तुम्हारी कोई निशानी मैं अपने पास रखना चाहता हूं।"

विनोदिनी ने कहा, "मेरे पास ऐसी कौन-सी चीज, है, जिसे तुम निशानी के तौर पर अपने पास रख सकते हो?"

बिहारी ने लज्जा और संकोच के साथ कहा, "अंग्रेजों में एक रिवाज है, वे अपने प्रियजनों की निशानी के बतौर उनके थोडे-से केश अपने पास रख लेते हैं। यदि तुम-"

विनोदिनी बोल उठी, "छी-छी, कैसी घृणा की बात है। मेरे केशों का तुम क्या करोगे? वह तो मृत वस्तु होगी। ऐसी अपवित्र चीज़ मेरी ऐसी क्या निशानी होगी, जिसे मैं तुम्हें दूं? मैं अभागिन हूं, तुम्हारे पास नहीं रह सकती। मैं ऐसी कोई चीज़ तुम्हें देना चाहती हूं, जो मेरी तरफ से तुम्हारा काम करेगी। बताओ, तुम लोगे

उस!'

बिहारी ने कहा, "हां लूगा।"

सुनते ही विनोदिनी ने उसी क्षण आंचल से दो हजार रुपये के नोट खोलकर बिहारी के हाथ में दे दिए। बिहारी गम्भीर भाव के साथ स्थिर दृष्टि से विनोदिनी के चेहरे की तरफ देखता रहा, फिर थोड़ी देर बाद बोला, "मैं क्या तुम्हें कुछ भी नहीं दे सकता?" विनोदिनी ने कहा, "तुम्हारी निशानी मेरे पास है। वह मेरे अंग का भूषण है, उसे कभी कोई छीन ही नहीं सकता। मुझे अब और किसी भी चीज की जरुरत नहीं।" इतना कहकर उसने अपनी कोहनी का वह निशान दिखा दिया, जो एक दिन बिहारी के धक्के से सीढ़ी पर गिरकर कट जाने से बन गया था।

बिहारी आश्चर्य से देखता रह गया। विनोदिनी ने कहा, "तुम्हें नहीं मालूम, यह तुम्हारे ही तिरस्कारपूर्ण आघात का निशान है और यह तुम्हारे ही योग्य है। इसे अब तुम भी वापस नहीं ले सकते।"

मौसी का उपदेश होते हुए भी आशा विनोदिनी के सम्बन्ध में अपने को बिना कांटे के न कर सकी। दोनों ने मिलकर राजलक्ष्मी की एकसाथ सेवा की है, पर आशा ने जब भी विनोदिनी को देखा है, तभी उसके दिल को चोट पहुंची है, उसके मुंह से सहज स्वभाव से बात नहीं निकली और हंसने की कोशिश ने तो और भी पीड़ा पहुंचाई है। विनोदिनी से साधारण-सी कोई सेवा ग्रहण करने में भी उसका समूचा मन विमुख होता रहा है। विनोदिनी के हाथ का लगा पान बहुधा उसे शिष्टता के नाते ग्रहण करना पड़ा है, किन्तु आड़ में जाकर उसने उसे फेंक दिया है। किन्तु आज जब विदाई का समय आया, मौसी को इस घर से दूसरी बार जाते देख उसका दिल जब आंसुओं से गीला हो आया, तब फिर विनोदिनी के प्रति भी उसके मन में दया उमड़ आई। जो हमेशा के लिए जा रहा हो उसे क्षमा न कर सके, ऐसे कठोर मन बहुत कम ही होंगे। आशा समझती है कि विनोदिनी महेन्द्र से प्रेम करती है। 'भला महेन्द्र को कौन नहीं चाहेगा?' महेन्द्र से प्रेम करना कैसा अनिवार्य है, आशा इस बात को अपने हृदय के भीतर से ही जानती है। अपने प्रेम की उस पीड़ा की अनुभूति से ही विनोदिनी पर आज उसे बहुत दया आने लगी। विनोदिनी महेन्द्र को हमेशा के लिए छोड़कर जा रही है, यह एक ऐसा असह्य दुःख है कि आशा बड़े से बड़े शत्रु के लिए भी इस दुःख की कामना नहीं कर सकती। ये सब बातें सोचते-सोचते आशा की आंखों में आंसू भर आए। किसी समय उसने जो विनोदिनी से प्यार किया था, उस प्यार ने उसके हृदय का स्पर्श करके उसे भिगो दिया। वह धीरे-धीरे विनोदिनी के पास जाकर बेहद करुणा के साथ, स्नेह के साथ, दुख के साथ मीठे स्वर में बोली, "बहन, तुम जा रही हो?"

विनोदिनी ने आशा की ठोड़ी छूकर कहा, "हां बहन, मेरे जाने का समय आ गया

हूँ। किसी दिन तुमने मुझसे प्यार किया था, अब सुख के दिनों में उस प्यार का कुछ अंश मेरे लिए भी रखना, बहन। और सब भूल जाना।"

इतने में महेन्द्र भी आ गया और विनोदिनी को प्रणाम करके बोला, "भाभी, मुझे क्षमा करना।" उसकी आंखों से आंसू की दो बूंदें ढलक पड़ीं।

विनोदिनी ने कहा, "तुम भी मुझे क्षमा करना, लालाजी, भगवान तुम दोनों को हमेशा सुखी रखे।"

प्रेमचंद रचनावली

सम्पूर्ण प्रेमचंद साहित्य

उपन्यास

गोदान	२०/-	कायाकल्प (दो भाग)	प्रत्येक १५/-
वरदान	१२/-	निर्मला	१२/-
प्रतिज्ञा	१२/-	रूठी रानी (व असरारे मआबिद)	१२/-
गबन	१८/-	सेवासदन	१८/-

कर्मभूमि (दो भाग) पहला भाग—१२/- दूसरा भाग—१५/-

प्रेमा (तथा हमखुर्मा व हमसवाब) १५/-

प्रेमाश्रम (दो भाग) प्रत्येक १५/-

रंगभूमि (दो भाग) प्रत्येक २०/-

कहानी संग्रह

कफन
नमक का दारोगा
बूढ़ी काकी
मंत्र
शतरंज के खिलाड़ी
दो भाई
मंदिर और मस्जिद
दुनिया का सबसे अनमोल रतन
पंच परमेश्वर
सद्गति
दो बैलों की कथा
पूस की रात
नरक का मार्ग
रानी सारंधा
बड़े बाबू
मिस पद्मा
सोहाग का शव

(प्रत्येक का मूल्य १२/-)

नाटक

कर्बला १५/-

संग्राम/प्रेम की वेदी १५/-

शिवानी

पूतोंवाली
कैंजा
मायापुरी
गैंडा
स्वयंसिद्धा
माणिक
श्मशान चम्पा
चौदह फेरे
विषकन्या
अपराधिनी
रतिविलाप
भैरवी
सुरंगमा
विवर्त्त
कृष्णावेणी

राम कथा पर आधारित

नरेन्द्र कोहली

दीक्षा
संघर्ष की ओर
पृष्ठभूमि
युद्ध
अवसर
साक्षात्कार
अभियान

आचार्य चतुरसेन

वयं रक्षाम:
मोती
गोली (नया संस्करण)
दादा
वैशाली की नगरवधू
हृदय की परख
धर्मोरक्षति
राज्याभिषेक
धर्मपुत्र
आभा
पतिता
सोमनाथ
सोना और खून - १ तूफान से पहले
सोना और खून - २ तूफान की छाया
सोना और खून - ३ तूफान
सोना और खून - ४ तूफान के बाद

महाभारत कथा पर आधारित उपन्यास

रामकुमार भ्रमर

आरंभ	असाध्य
अंकुर	असीम
आवाहन	अनुगत
अधिकार	१८ दिन
अग्रज	अन्त
आहुति	अनन्त

कृष्ण कथा पर आधारित उपन्यास

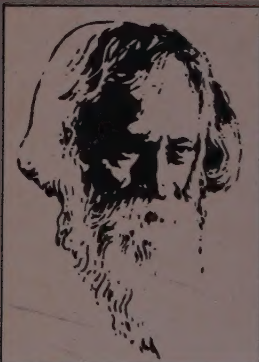
रामकुमार भ्रमर

कालचक्र
कारावास
कालिंदी के किनारे
कर्मयज्ञ

प्रत्येक का मूल्य १०/-

१२५वीं रवीन्द्र जन्म जयन्ती वर्ष में प्रकाशित
सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यास

आँख की किरकिरी



● विश्व के महान् साहित्यकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक ऐसे अग्रणी लेखक थे, जिन्हें संसार-भर में अपार ख्याति मिली और जिन्हें नोबल पुरस्कार जैसे सम्मान से विभूषित किया गया। उनकी अनेक कृतियां प्रमुख भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनूदित होकर चर्चित हुई।

★ 'आंख की किरकिरी' रवि बाबू का एक ऐसा गरिमामय उपन्यास है, जो आदमी के भीतर की जटिलताओं को तार-तार उधेड़कर समझाने का प्रयत्न करता है।

★ यह एक ऐसा मनोवैज्ञानिक सत्य है, जिसे मनुष्य की मूलभूत प्रवृत्तियों का खुला दस्तावेज़ कहा जा सकता है।

★ रोचक कथा हमें बताती है कि मानव के भीतर का पशु कब और कैसे जाग उठेगा और क्या कुछ कर बैठता है, इसका कुछ पता नहीं।

सरस्वती सीरीज़
हिन्द पॉकेट बुक्स

Rs. 15/-

ISBN-81-216-0004-9